रूपाजीवा

आधुनिक भारतीय समाज में गिरते हुए मानव-मूल्यों का प्रतीक 'रुपया' भी बीस वर्षों से अपना मूल्य लगातार खो रहा है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित एक मण्डी के जीवन पर आधारित इस उपन्यास में द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ से मानवता के उत्तरोत्तर गिरते हुए स्तर और व्यक्ति के सम्मानविहीन अस्तित्व का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। यह चित्र यथार्थ होते हुए भी कटु न होकर ममता और सहानुभूति से पूर्णतः आप्लावित है।

'रुपये' से ऊपर किसी भी व्यक्ति अथवा नैतिक-सामाजिक विधान का अस्तित्व स्वीकार न करने वाला सेठ गोरेमल, जारज बेटे सूरज की सत्यद्रष्टा, स्पष्टवक्ता माँ रूपा-बहू, ममतामयी मधू बुआ, नैतिक धारणाओं और अर्थ-चक्र के दो पाटों में पिसता हुआ सरल निश्छल चेतराम, हताश विद्रोही सूरज, भगवद्लीला से आविष्ट राजू पण्डित, क्रान्ति-कारी ईशरी फूफा और अन्य अनेक सजीव पात्रों में हम आज के मध्यवर्गीय समाज के विश्रृंखल जीवन की वास्तविक झाँकी देख सकते हैं। उपन्यास की चरम परिणति जिस करुणा-जनक वातावरण में हुई है वह हमें चिन्तन की पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है।

बदलते मानव-मूल्यों का एक सजीव चित्र

रूपाजीवा

लक्ष्मीनारायण लाल

प्रथम संस्करण, १९५९

मूल्य : छः रुपये

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक : श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली

उस सूरज को समर्पित,
जिसे चंदौसी में देखा-भर था
किन्तु आज तक कहीं मिल न सका !
आशा है कि उससे कभी भेंट अवश्य होगी।

पहला भाग

बड़ा रुपया

१

घर का दरवाज़ा पुराना था, लेकिन था बहुत ही मज़बूत—जैसे वर्षों सरसों का तेल पिये हुए। उसमें चारों ओर खुदा हुआ था—जै लाभ, शुभ। और ऊपर बीचों-बीच गणेशजी की मूर्ति उभरी हुई थी। दरवाज़े के ठीक ऊपर दीवार में एक छोटा-सा ताक था—उसमें भी गणेशजी की मूर्ति प्रतिष्ठापित थी और ताक के ऊपर एक कील के सहारे, लाल कपड़े में खूब कसकर बँधी हुई कोई चीज़ लटक रही थी।

दरवाज़े से बाईं ओर जो लम्बा-सा कमरा था, वहीं दुकान की बड़ी गद्दी लगी थी—आधे से ज़्यादा भाग में। शेष भाग में टाट बिछा था और पिछली दीवार के पास दो पुरानी तिजोरियाँ खड़ी थीं और एक छोटे-से तख़्त के ऊपर पुरानी बहियों का अम्बार लगा था। वहीं एक कोने से दूसरे कोने तक लटके हुए, लोहे के मज़बूत पाँच तारों में न जाने कब की पुरानी चिट्ठियाँ, काग़ज़-पत्तर, पुर्ज़े और रसीदें खुँसी हुई थीं। फिर भी इस भाग में थोड़ी-सी जगह अब भी बच जाती थी। और यहाँ कभी-कभी किसी खास व्यापारी या रिश्तेदार

का पलंग बिछ जाता था। सामने की दीवार में इस कमरे के बीचों-बीच एक दरवाज़ा था जो घर में खुलता था। यह प्रायः सदा बाहर-भीतर दोनों ओर से ताले लगाकर बन्द रहता था, बाहर-भीतर आने-जाने की केवल विशेष परिस्थितियों में ही यह खुलता था। अर्थात् यही बन्द दरवाज़ा वह गूँगा द्वार था जो घर और दुकान को एक कर देता था।

इस कमरे के आगे टिन से छाया हुआ लम्बा-चौड़ा बरामदा था। घर के मुख्य दरवाज़े की ओर यहाँ भी एक गद्दी लगी थी, जिसे आसानी के लिए छोटी गद्दी कहते थे। इसके पास ही एक तख़्ते पर पानी से भरे दो मिट्टी के घड़े, दो ताँबे के पात्र और एक सागर, आठ फूल के गिलास, नीम-बबूल की कुछ दातुनें, कुछ साफ़ मिट्टी और दो अँगोछे रखे रहते थे—यह सब दुकान पर आने-जाने वाले व्यापारी, सौदागर, सेठ-महाजन, पक्के-कच्चे आढ़तिये, ग्राहक और दलाल आदि की सेवा में। बरामदे का शेष भाग, तैयारी के माल से भरे हुए बोरों की छल्लियों से भरा रहता था।

बरामदे के आगे एक अच्छे क्षेत्रफल का खुला हुआ सहन था, जिसका घेरा लोहे के ऊँचे-ऊँचे सीकचों और काँटेदार जालियों से इस तरह खिंचा हुआ था कि सामने की सड़क का फुटपाथ तक उसके दामन से छू गया था।

इस सहन की भी अपनी माया थी। सुबह से शाम तक इसमें विभिन्न प्रकार के गल्लों की अजस्र धारा-सी बहती रहती थी। बीचों-बीच अनाज तौलने का लोहिया तराजू खड़ा था। किनारे-किनारे अनाज की ढेरियाँ, पल्लेदारों का हुजूम, अनाज साफ करने के बड़े-बड़े झन्ने और मज़दूरों के आने-जाने से वह पूरा सहन, वह दुकान और वह घर और वह पूरी बस्ती दिन-भर इस तरह लगती थी जैसे दूर देश का कोई मेला—शोर-भरा, धूल-भरा और गति-भरा।

और मक्खियाँ कितनी थीं यहाँ! उफ़ हद से ज़्यादा! घर-बाहर

और समूची बस्ती में ये जैसे छाई हुई थीं। ज़्यादा नहीं, केवल एक घण्टे के लिए दिन में कोई बिना हाथ-पैर हिलाये-डुलाये बैठा रह जाय तो मक्खियाँ उसकी सूरत बदल सकती थीं। और बस्ती को बड़ा नाज़ भी था अपनी इन मक्खियों पर। कहते थे लोग—'जहाँ गुड़ आटा घी वहीं मक्खियाँ जी!'

लेकिन उस घर में मक्खियों का स्वागत कम था। चौके में जालियाँ, मालिक और मालकिन के घर में जालियाँ; फिर भी उनके लिए मार्ग की क्या कमी—जितना ही खुला था, उतना ही मक्खियों के लिए काफ़ी था।

घर के पिछवाड़े एक खिड़की थी—ठाकुरद्वारे की गली में खुलने वाली। खिड़की के उस अन्तिम कमरे में भी केवल उतनी ही जगह बची थी कि कोई आ-जा सके। वैसे इस कमरे में खाली बोरे रहते थे, और दूसरी ओर टूटी कुरसियाँ और खाटें भर रखी थीं।

बाहर से देखने में यह घर और दुकान दोनों एक थे, एक ही में थे, लेकिन वस्तुतः दोनों की सत्ताएँ अलग-अलग थीं। दुकान ही सब-कुछ थी, घर तो जैसे उसका केवल गोदाम-मात्र था। दुकान ही प्रभु था जैसे, घर तो केवल दास था। और इस सूत्र में भी अन्तर यह था कि दोनों जैसे एक-दूसरे से अविच्छिन्न थे, स्वतन्त्र, निर्विकार—जैसे एक-दूसरे से रूठे हुए, एक-दूसरे से उपेक्षित।

बन्द दरवाज़े के भीतर घर सो रहा था, लेकिन दरवाज़े के बाहर, दुकान की गद्दी, गद्दी का टेलीफोन, व्यापार और व्यापार का नियन्ता, जैसे सब जग रहे थे।

और वहाँ, जहाँ बन्द दरवाज़े के भीतर घर सो रहा था, आँगन के बड़े कमरे में न जाने कब से कोई नन्हा-सा बच्चा चीख रहा था, जैसे पूरे घर में उसे कोई सुनने वाला ही न था। दो बच्चियाँ थीं, वे अलग

कमरे में सो रही थीं। मालिक था, वह बाहर दुकान पर इतनी रात तक अपना काम भुगता रहा था।

शेष मंगूदादी बची, जो बहुत देर से अपने कमरे में जगी बैठी थी। बच्चा जैसे दम तोड़कर रो रहा था, और करुणा से दादी का कलेजा सुलग रहा था।

अपने को बहुत रोका, मन को अनेक तरह से घोंटा-पीसा, पर जी न माना। दौड़ी अन्त में। बहू का कमरा बन्द था। जंगले से देखना चाहा, भीतर अन्धकार था और दादी की आँखों से अब आँसू झर आये, फिर कुछ और भी न दीखा। पर सत्य में अद्भुत शक्ति थी। उसने देख लिया, जैसे अन्धकार और आँसू भ्रम हों, निरे झूठे; और सत्य ने सत्य को बाँध लिया—बच्चा माँ के पलंग से नीचे गिरा था।

मंगूदादी का माथा ठनका। बुझी हुई आँखों में कुछ दीप्त हो आया।

"ऐसी माँ की कोख में लगे आग; साँपिन···।"

और घायल हिरनी की भाँति दादी बन्द दरवाज़े पर चक्कर काटने लगी।

कुछ न सूझा तो मंगूदादी तेज़ी से बाहर भागी—दुकान पर। व्यापार का नशा और नशे की थकान ने चेतराम को बड़ी गद्दी पर ही सुला दिया था। दादी आकर फूट पड़ी चेतराम पर।

"सुनता है तू! हे रे! ओ रामू!"

चेतराम ने दूसरी करवट बदल ली, और बड़बड़ाने लगा, "नहीं, नहीं, यह भाव नहीं, मद्दी है मद्दी···ओं···ओं····ना।"

दादी ने आवेश में चेतराम की दाईं बाँह भींचकर कहा, "तोय बड़ौ नशा व्यापार कों! आग लगो!"

"क्या है? क्या है री माँ?" चेतराम हड़बड़ा उठा, कमर से धोती सँभालने लगा।

"आग लगी है तेरे घर में !"

मंगूदादी उसकी बाँह थामे उठ खड़ी हुई, और न जाने किस बल से उसे खींचती हुई भीतर ले जाने लगी। आँगन में ला छोड़ा। अब तक घबराकर चेतराम बिलकुल निष्प्रभ हो चुका था। बस एकटक दादी को देखता रहा। दादी ने संकेत किया, फिर डरते-डरते कहा, "बहरो है का ?" चेतराम को तब भी कुछ न सूझा। दादी ने झुँझलाकर उसे बन्द दरवाज़े के पास ला खींचा। फिर दादी का सारा बल जैसे चुक गया, दम उभर आया; कराहती हुई वहीं बैठ गई और झुकी-झुकी न जाने किस बूते से अपने कमरे में भागी।

चेतराम जग गया। होश हुआ, तब सुना जैसे बन्द कमरे में उसने सब-कुछ देख लिया। पीछे हटकर बन्द दरवाज़े पर इतनी ज़ोर का धक्का दिया कि स्वयं लड़खड़ा गया। जंगले से पुकारने लगा। कई बार घूमा-दौड़ा, कमर से धोती कसी, पर हुआ कुछ नहीं। तब तक बच्चे का गला रुँधकर बैठ गया।

कुछ क्षण बाद कमरा खुला, जैसे यूँ ही अपने-आप खुल गया। चेतराम ने बच्चे को अंक में कस लिया। और कुछ मूक क्षणों में उस कमरे के अन्धकार से बच्चे की टूटती साँसों की एक ऐसी अस्फुट वाणी फूट आई, जैसे कोई भयभीत, मस्त अपनी अव्यक्त साँसों से किसीको उलाहना दे रहा हो।

"बत्ती जलाओ रूपाबहू !···सुनती हो कि नहीं ?···रूपा !" रूपा बहू मुँह ढककर लेटी रही—लेटी रही। चेतराम के अंक में बच्चा अपने क्षीण, कोमल बल से इस तरह लिपटा रहा जैसे उसे भय हो कि कहीं वह उस अंक से भी न गिर जाय।

चेतराम ने बढ़कर बिजली जला दी। कमरे में सब-कुछ साफ़ हो आया—पलंग, पलंग पर सोई हुई माँ, पलंग के नीचे की पक्की ज़मीन, बच्चे के नन्हे माथे की चोट, रात का खिंचा हुआ सन्नाटा और बच्चे की बुझी, फिर भी टूटती हुई क्षीण सुबकियाँ।

चेतराम की आवाज़ गीली होकर भारी हो आई, "बच्चे की माँ, इधर देख, प्रकाश में। देखती क्यों नहीं ?"

वह जैसे सो गई थी, उसमें कोई प्रतिक्रिया न हुई। चेतराम ठगा-सा खड़ा रहा।

फिर वह बच्चे से ही बातें करने लगा, "चोट लग गई ?···लग गई न चोट !"

कहते-कहते वह आँगन में आया। नक्षत्र-भरे आकाश में वह ग़रीब, चाँद ढूँढ़ने लगा, जो कभी का डूब गया था। एक बड़े-से नक्षत्र को जैसे उँगली में बाँध उसने तुतलाकर कहा, "मेले बेटे ! वह देख चन्दा मामा !···देख न, सो गया ? अच्छा, सो जा !"

तभी फूलती साँसों के बीच से दादी की आवाज़ आई, "आँगन में लिये घूम रहो है रे ! तू को शीत-ठण्ड को डर ना रहो ?"

"पेट फाड़ के तू ही रख ले न ! बड़ी चोंचले दिखाने आई !" स्वर को क्रोध से पीसती हुई अपने कमरे से रूपा बोली, "बुला ले न अपने कमरे में ! डाल दे जादू !"

उसी क्षण चेतराम रूपाबहू के सामने जा खड़ा हुआ। आहत स्वर में बोला, "यह सब क्या है ? क्यों ऐसी हो जाती हो तुम ? वह हमारी माँ है, यह हमारा पुत्र है और तुम इस घर की लक्ष्मी हो रूपा—माँ और लक्ष्मी दोनों ! सोचो, जो तुम कहती-करती हो, उसे सोचती भी हो ?"

"क्या ? क्या ? क्या नहीं चाहिए ? क्या बकते हो ?" रूपाबहू अपने-आप में मथ-सी उठी, जैसे वह स्वयं के प्रति भी होश में न हो।

चेतराम का सिर झुक गया, जैसे वह समूचा कहीं गड़ गया हो। पूरे बल से उसने कहा, "कोई ऐसे बोलता है ? कितनी अजीब बात है, माँ पलंग पर बेसुध सोये और उसके अंक का बच्चा यहीं नीचे गिरकर रोते-रोते दम तोड़ दे !"

"ओ हो ! जैसे मर ही तो गया !"

"और कैसे मरते हैं ?"

"पता नहीं !"

"तुम तो लड़ बैठती हो !" चेतराम ने स्वर को एकदम गिरा लिया, "छोड़ो यह किस्सा ! लो, बच्चे को थामो—पाँखुरी जैसा माथा और यह चोट ! झट से इस पर अपने अंक का दूध गारो और कण्ठ सींचो इसका !"

पर उतनी शीघ्रता से माँ की बाँहें न उठीं। चेतराम ने आग्रह से बच्चे को माँ की गोद में थमा दिया। बच्चा निःशक्त हो, बेसुध हो रहा था।

"चुप क्यों बैठी हो ? तुम्हारी छाती में दूध नहीं है क्या ? कैसी माँ हो ?" चेतराम चीख उठा।

रूपाबहू ने श्राप की तरह कुछ बुदबुदाकर बच्चे के खुले मुँह पर दूध दे मारा, "ले, मरा जा रहा है !"

चेतराम खड़ा देखता रहा—लाज, शरम, हया, सब खुला देखता रहा। लेकिन बच्चे का दूध पीना देखकर वह सब-कुछ भूल गया—मुस्करा आया। रूपा के गिरे हुए आँचल से चेतराम ने वह गोद ढक दी, जिसके नीचे वह शिशु छिप गया।

फिर उसने बहुत स्नेह घोलकर, जैसे परिहास करते हुए कहा, "ओ सपूत की माँ ! ओ मेरे मूलधन की तिजोरी और टकसाल !" कहते-कहते उसके मुख पर निश्छल मुस्कान बरस आई और वह हँस पड़ा—कमरे की सारी उदासी पी गया।

तब रूपाबहू ने चेतराम को ऐसी आँखों से देखा, जिसमें वह अपनी ओर से क्रोध भर रही थी, पर उसमें कुछ और ही उभर आया—कोई अव्यक्त वेदना, कोई अदृश्य व्यथा।

चेतराम ने मानो आशीष-भरे स्वर से कहा, "सो जाओ ! सो जाओ अब, इसी तरह गोद में छिपाये सो जाओ ! सुबह गढ़ी के हनुमान को सवा सेर लड्डू चढ़वा देना, हाँ !"

भाव में आकर उसने रूपाबहू के सिर को थाम धीरे से पलंग पर लिटा दिया। कई क्षण तक चुप खड़ा रहा, फिर माँ के आँचल को उठा बच्चे को झाँका और खिलखिलाकर हँस पड़ा। "देखा, दूध पीते-पीते सो गया। अब इसके सिर से तुम अपना आँचल न उठाना। यह आँचल प्रभु की छाया है। जिस बच्चे को यह छाँव न मिली, समझो कि वह जड़ रह गया!"

"रहने दो यह चिकनी-चुपड़ी!" रूपाबहू ने झुँझलाकर कहा, "ये चोंचले जाओ अपनी माँ को दिखाओ···मैं पक गई।"

"पक गई?"

चेतराम चुप हो गया। मन बाँधकर बोला, "किससे पक गई? मुझसे या मेरी माँ से?···कि इस घर से?···क्यों, कैसे पक गई हो? क्यों ऐसी बात मुँह से निकालती हो?"

वह कुछ न बोली, जैसे उसके पास केवल प्रश्न थे, कहीं भी कोई उत्तर न था। चेतराम खड़ा रहा। थककर चुपचाप आँगन में चला आया—माँ के पास चला गया।

मंगूदादी के सीने पर दमे का वेग अभी पत्थर मार रहा था—वह दबी जा रही थी। चेतराम झुककर उसे शान्त करने लगा।

उदासी से बोला, "सोचता हूँ माँ, कुछ दिनों के लिए मधू को बुला लूँ, बिना उसके काम ही चलता न दीखे!"

मंगूदादी ने पूरी शक्ति से विरोध किया। साँस के ज्वार-भाटों के बीच से उसने कहा, "मेरी बेटी कूँ मत ला इस घर में, नहीं-नहीं, मत ला!"

"क्या हो गया है तुम सबको?" चेतराम के स्वर में ग्लानि भर आई, "घर है कि···"

आगे कुछ न कहा गया। दादी चुप थी। सूनी दृष्टि से वह चेतराम

को देखती रही। इतने में बाहर से हिरनू की बड़ी तेज़ पुकार आई "लालाजी, ओ लालाजी, फोन की घंटी!"

सुनते ही चेतराम बेतहाशा दौड़ा—टूटकर फोन उठा लिया और उसमें पूरी आवाज़ से हलो-हलो की पुकार भरने लगा।

फोन से ज़रा-सा मुँह हटाकर हिरनू से कहा, "जा, भागकर मुनीम को बुला ला—रामचन्दर को!"

फिर चौंककर कान और मुख से फोन को कस लिया, "जी लाला-जी! गेहूँ में मद्दी है—दो पैसे की। सरसों का भाव ठीक है—जी हाँ वहीं। अपने पास इस बखत ढाई सौ मन होगा जी···इसे भी देखूँगा। हो जायगा पूरा हिसाब! जी, बड़े ज़ोरों का काम है। ख़ूब गरम है बाज़ार! बस, राम-राम लालाजी! जै रामजी की! और कोई आज्ञा! जी, सब राजी-खुशी···अजी उसकी का पूछो हो!"

मुनीमजी सामने से आ रहे थे। बायें हाथ में टोपी थी, दायें हाथ से आँख मल रहे थे, जैसे अभी नींद ही में चले आ रहे थे।

चेतराम थकी-सी मुस्कान के साथ मसनद के सहारे गद्दी पर फैल गया। जाँघें नंगी करके उन पर हथेलियाँ फेरने लगा। सम स्वर में बोला, "आओ बाबू रामचन्दर! मेरे पास आ जाओ। बैठो। गोरेमल का दिल्ली से फोन आया है—अभी-अभी आया है। दुकान का पूरा हिसाब माँगा है—बिक्री, नगद, कमीशन सब। सरसों के लिए भी पूछा है, कुल कितना है गोदाम में?"

चेतराम ने आँखें बन्द कर लीं और तकिये में सिर गड़ाकर कहा, "गोरेमल सदा यही सोचते रहते हैं कि हमें व्यापार नहीं आता। आम-दनी-लाभ, आमदनी-लाभ; यह सब ईश्वर के हाथ में है कि···।"

सहसा फिर घंटी हुई। चेतराम ने उछलकर फोन थाम लिया, "जी! हाँ जी! हलो! हलो!···जी···हाँ-हाँ गेहूँ का सौदा···बिलकुल नपा लो···जो आज्ञा! हाँ, हाँ हुकुम करो! हाँ, हाँ क्यों नहीं, क्यों नहीं! जी, यह भी कोई बात हुई! हाँ, हाँ पक्की बात! हम तो

ईमान और मेहनत की खाते हैं चौधरीजी ! बस, बेफिकर रहो जी''' यह गोरेलाल-चेतराम की फरम है जी ! और कोई सेवा !'''जी, राम-राम जी !"

चेतराम का चेहरा सूरजमुखी की भाँति एकाएक खिल आया। हँसकर लम्बी साँस ली।

"रामचन्दर बाबू ! बम्बई से सौदा हुआ है !"

मुनीम की सारी नींद चली गई, सिर पर टोपी रखते हुए बोले, "लालाजी, गुड़ की हुई ?"

"नहीं जी, गुड़ की कौन करै है, गेहूँ का सौदा पटा है।"

मुनीमजी ने अपनी टोपी पीछे खिसका ली और बड़े तपाक से बोले, "कित्ता रहा ?"

"एक हज़ार मन !" चेतराम ने गद्दी से नीचे आकर एक बीड़ी सुलगा ली, "देखो बाबू रामचन्दर, कच्ची वही में खाता बाँध लो— बम्बई वाले का। फोन में घंटी देकर झट हापुड़ मिलवाओ। लाहौर-अमृतसर का तो भाव खुला ही हुआ है।"

"जी, हापुड़ से फिर चारों ओर का पता ले लेता हूँ, हाथ-कंगन को आरसी क्या !"

फोन को बाँधे मुनीमजी बहुत ही इतमीनान से पलथी मारकर बैठ गए। चेतराम ने बीड़ी खत्म कर दी। उरली तरफ, बुढ़िया तिजौरी से 'सुखसागर' की पोथी निकालकर मन-ही-मन बाँचने बैठे। एक पृष्ठ से आगे जी न लगा, मुस्कराकर रामचन्दर से बोले, "मुनीमजी, ये अंगरेज़ भी क्या हैं ! देखो न, इन लोगों ने फोन क्या बनाया है ! इसी गद्दी पर सारा हिन्दुस्तान बुला लो। साक्षात् भगवान् की शक्ति है इनमें ! मैं तो सोचता हूँ, महाभारत की लड़ाई में अगर यह फोन होता तो कृष्ण भगवान् को कुरुक्षेत्र के मैदान में न जाना पड़ता।"

मुनीमजी ने कहा, "सच है लालाजी ! फिर भी नहीं देखते हमारे देश वाले, इन अंग्रेज़ों को बाहर निकालना चाहते हैं। कहते हैं, अपने

देश में अपना राज !" उसी क्षण फिर फोन की घंटी बजी । मुनीमजी हापुड़ से बातें करने लगे, और इतने ऊँचे स्वर से बोलने लगे कि पूरी दुकान गूँज उठी ।

चेतराम फिर पढ़ने लगा । पढ़ते-पढ़ते ऊँघने को आया । सिर पर मुनीम की आवाज़, और न जाने कब चेतराम ठीक उसी स्थिति में खर्राटे भरने लगा ।

सुबह हुई । चेतराम ने नहा-धोकर सवासेर लड्डू लिया । घर में गया । बच्चा माँ के अंक से लगा अब तक सो रहा था । लड्डू के भरे दोने को उसके माथे पर छुलाया और धीरे से बाहर निकल आया ।

चौराहे पर आते ही चेतराम की भेंट चौधरी छेदामल से हुई । चौधरी की बाईं हथेली पर बाजरे की दस रोटियाँ रखी थीं । वह भी हनुमान गढ़ी की ओर जा रहे थे । गली, मुहल्ले और सड़क को पार करते-करते चौधरी छेदामल के आगे-पीछे कम-से-कम तीस कुत्तों का झुण्ड साथ चल रहा था । आश्रम तक पहुँचकर पाँच रोटियों के टुकड़े कुत्तों को खिला दिए ।

चेतराम ने हनुमान गढ़ी में प्रसाद चढ़ाकर अपने मस्तक पर सिन्दूर लगवाया, बच्चों के लिए आशीर्वाद लिया, फिर तेज़ी से घर की ओर लौटा ।

उसने देखा, चौधरी छेदामल कुत्तों के झुण्ड के साथ आगे-आगे चले जा रहे थे । चेतराम अपने मन में सोचने लगा, छेदामल की उमर तक पहुँचकर वह भी नित्य कुत्तों को रोटियाँ बाँटेगा—बाजरे की नहीं, गेहूँ की ।

चेतराम की अवस्था पैंतालीस से अधिक न होगी—भरा-पूरा बदन, निकले हुए गाल, गेहुँआ रंग, आँखें बड़ी-बड़ी, पर माथा बहुत तंग, जैसे जन्म के समय धरती पर गिरते ही वह संयोगवश दब

गया हो ।

वह जब अपने घर के चौराहे पर आया, और लड़ते हुए कुत्तों के झुण्ड के साथ चौधरी छेदामल अपनी गली की ओर मुड़ा, चेतराम की कल्पना और सजीव हो आई—'जब मैं साठ वर्ष का होऊँगा, मेरा लल्ला जवान हो जायगा । 'फरम' सँभालेगा, मैं धर्म करूँगा, वह व्यापार को तिगना कर लेगा ।'

सोचते-सोचते जब वह अपने घर के आँगन में गया, उसने देखा, उसकी दोनों बच्चियाँ—सीता और गौरी—दादी के संग ताज़े पराँठों का नाश्ता कर रही थीं ।

चेतराम ने दोनों बच्चियों को प्रसाद दिया । उनके माथे पर हनुमान का तिलक लगाने लगा—इसी बीच दादी ने रहस्य-भरे शब्दों में कहा, "सुना !...कमरे में मुँह फुलाये बैठी है, न बाहर न भीतर ! न धोना न नहाना । मैं कहे दे रहूँ हूँ, जे ऐब बच्चे पै. जायगो, हाँ !"

चेतराम कमरे में गया । रूपाबहू उदास फर्श पर बैठी थी—बेहद गम्भीर और श्रान्त । चेतराम उसे बुलाता रहा, पर वह बोली नहीं । भगवान् का प्रसाद तक न स्वीकार किया ।

बच्चे के माथे पर तिलक लगाकर चेतराम रूपाबहू के सामने आ खड़ा हुआ । समवेद्य-स्वर से बोला, "जब तुम कुछ बताओगी नहीं तो मैं क्या करूँ ! कुछ बोलोगी भी ?....और ऐसी भी क्या बात, जो तुम्हें ऐसा बनाए । जो भी तुम्हारी शिकायत हो, दुःख-दर्द हो, मुझसे कहो, मैं न पूरा करूँ तो कसूरवार ।"

चेतराम चुप हो गया । घूमकर फिर सोते हुए बच्चे की ओर देखा और उसके ऊपर झुक गया । उसके फूल जैसे नन्हे शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरता रहा और उसके माथे की चोट देख मुस्कराता रहा । एकाएक उसे ध्यान आया कि अभी तक बच्चे के माथे पर तेल नहीं रखा गया । बढ़कर हथेली में तेल लिया और बड़े स्नेह से उसके

माथे पर रखने लगा। उसी क्षण बच्चा जग गया और रोने लगा।

झट चेतराम ने उसे गोद में ले लिया, माँ के पास आया, दुलार से बोला, "लो अपने लल्ला को! दूध पिलाओ!"

माँ मूर्तिवत बैठी रही।

"रुलाओ नहीं इसे! लो···इस तरह लो!"

और बच्चे को बरबस उसके अंक में डाल दिया। तब माँ की दृष्टि ऊपर उठी। कई बार उसने भरी दृष्टि से चेतराम की ओर देखा। चेतराम देख रहा था; बच्चा अपनी पूरी ताक़त से माँ का दूध पी रहा था और माँ जैसे कहीं शून्य में गड़ी थी।

चेतराम ने सहसा देखा, रूपा जैसे निःशब्द रो रही हो। लालाजी के होश उड़ गए। बातें, प्रश्न कण्ठ में ही सूख गए।

"क्यों, क्या बात है? भगवान् की कसम, तुम मुझे बताओ।" रूपाबहू तब भी चुप थी।

चेतराम ने जैसे अपने-आपसे कहा, "बच्चे को गोद में लेकर रोती हो! यह पूत चिराग़ है हमारा! इसकी छठी-बरही से तो मेरा जी ही नहीं भरा है। अभी तो इसके नाम पर बहुत-कुछ करने को जी है! कुण्डली बनवाऊँगा, एक दूध वाली गऊ दान करूँगा। गुरुधाम चलेंगे इसे लेकर—गुरु बाबा से इसका नाम रखवाऊँगा! फिर पूरी बस्ती के साहूकारों को एक भोज दूँगा!"

रूपाबहू को असह्य हो गया। क्रोध से बोल उठी, "बको मत! भाग जा यहाँ से। ले जा यह बच्चा—मुझे नहीं चाहिए—इसे अपने संग रख।"

चेतराम को काटो तो खून नहीं। वह चुप बच्चे को देखता रहा। माँ ने उसे गोद से अलग कर ज़मीन पर लुढ़का दिया था। चेतराम ने अंक में उठा लिया। इस बीच कई बार रूपा की दृष्टि ऊपर उठी—कुछ ढूँढने चली, किसी आलम्बन को पाने के लिए हिम्मत बाँधने लगी। एक बार उसकी दृष्टि चेतराम से मिली—वे आँखें, वह दृष्टि,

अवसाद और विरक्तिपूर्ण, और सबके ऊपर किसी अज्ञात वेदना के लाल डोरे।

चेतराम का गला भर आया। बच्चा उसके अंक से चिपका पड़ा था।

"क्यों? क्यों ऐसा कहती हो? मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ, ऐसा न कह!"

और उसकी दाईं बाँह पकड़ चेतराम ने उसे उठा लिया। वह उठकर दीवार से लग गई। चेतराम पास गया। कन्धे को छुआ। रूपा ने उसे क्रोध से झटक दिया और फूटकर रोने लगी—निःशब्द, गतिहीन। लेकिन वह हर सिसकी के साथ सिर से पैर तक कँपकँपा उठती थी।

चेतराम विनीत स्वर में बोला, "क्या बात है रूपा? मेरी सौगन्ध···।" धीरे-धीरे उसका स्वर गम्भीर हो आया, "मुझे बताओ क्यों नहीं? उस सबके लिए मैं हूँ।"

"तू है!" रूपाबहू ठगी-सी रह गई, "तू है!···तू कुछ नहीं है! भाग जा यहाँ से! ले जा इस बच्चे को!"

"यह बच्चा ही नहीं रूपाबहू, यह हमारा सर्वस्व है, मूल, ब्याज और स्वर्ग, सब-कुछ। इसके हाथ देखो, कितने लम्बे-लम्बे हैं! माथा देखो, कितना चौड़ा है।"

"पर तेरा हो भी!" रूपा के मुख से एकाएक निकल गया। और वह सिर थामकर पूरी शक्ति से मानो दीवार में चिपक गई, जिससे वह चीखने न लगे, दहाड़ मारकर रोये नहीं।

चेतराम ने अपना दायाँ हाथ उसके काँपते हुए कन्धे पर रख दिया, "लो क्या हुआ पगली? इतनी-सी बात!···लो थामो बच्चे को! यह कुलदीप है हमारा!"

चेतराम पूरे मन से मुस्करा उठा और उसके बुझे मुख पर ज्योति बरस आई। स्नेह से बोला, "मैं समझूँ हूँ कि क्या बात है! भला

यह भी कोई बात हुई !"

कन्धे से पकड़े हुए चेतराम ने उसे पलंग पर ला बिठाया, बच्चे को गोद में रखने लगा, "हूँ, निरी बच्ची हो जाती हो ! नासमझ कहीं की ! जो तुमसे पैदा हुआ वह मेरा क्यों नहीं ?···बचपना करती हो ! खबरदार, अगर यह बात मन में रखी, हाँ !···यह सब अपने मन से निकाल दो···बेकार का वहम है यह !"

चेतराम शिशुवत् मुस्करा आया, "मैं समझूँ हूँ कि क्या बात है !"

रूपा का मुख उतना ही निस्तेज हो रहा था, मानो आँखों से सब-कुछ बरस गया हो। चेतराम ने देखा, माँ बच्चे को प्यार से बाँहों में कसे हुए अपलक उसे देख रही थी, जैसे वह अपने को उससे बाँध रही हो।

चेतराम झुककर बच्चे को गुदगुदाने लगा, "ओ मेले बेटे ! हँसो··· हँशो जला-सा। माँ को नमश्ते कलो। इस तलह हाथ जोलकर। हाँ, शाबाश !"

हँसते-हँसते उसने बच्चे को उठा लिया। रूपा की आँखें अपलक उठी रहीं।

चेतराम ने दुलार से कहा, "जाओ कुल्ला-दातुन करो। नहा डालो अभी ! जाओ···भागकर जाओ जल्दी से !"

यह कहते-कहते चेतराम ने रूपा को चौखट से बाहर कर दिया। स्वयं आँगन में चला आया—सीता और गौरी के बीच पलथी मारकर बैठ गया।

सीता पाँच साल की थी—बिलकुल माँ को पड़ी थी—कंचन जैसा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, खूब स्वस्थ। गौरी पिता को पड़ी थी—वही रंग, वही माथा। वह तीन साल की थी और सीता की अपेक्षा नट-खट थी।

इतने में बाहर से दलालों की सम्मिलित पुकार आई। सब छोड़ चेतराम बाहर दौड़ा। दुकान पर छीतरमल, गिरधारी और दयाराम आ बैठे थे। ये तीनों चेतराम के कच्चे आढ़तिये थे। तीनों कुल मिला-

कर एक हज़ार मन गेहूँ के सौदे की बात करने आये थे।

उस बीच शम्भू, नैनूमल और श्यामलाल की दलाली थी। ये तीनों गद्दी के नीचे फर्श के बिछावन पर बैठे।

सौदे की बात हो ही रही थी कि गद्दी पर 'वीर अर्जुन' नामक दैनिक अखबार आया। सब-के-सब उसके तीसरे पृष्ठ पर झुक गए। अमृतसर और लायलपुर के गेहूँ के भाव में तीन आने की मद्दी थी। दिल्ली के बाज़ार में तीन रुपये चौदह आने के भाव थे।

अमृतसर और लायलपुर के भाव से चेतराम ने उन आढ़तियों से एक हज़ार मन गेहूँ का उसी क्षण सौदा कर लिया।

आढ़तिये और दलाल चले गए तब चेतराम ने 'वीर अर्जुन' को नये सिरे से देखना शुरू किया। गांधीजी का असहयोग-आन्दोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। सरकार की घोषणा हो गई कि हिन्दुस्तान को स्वराज मिलेगा, लेकिन वह किस्तों में दिया जायगा। 'और हर किस्त के लिए सरकार बलिदान लेगी,' चेतराम ने मन-ही-मन में कहा, 'जैसे जलियाँवाला बाग।' फिर वह उठा। ताक से गणेशजी की मूर्ति को उठाकर अपने माथे लगाया—कलमदान से उसका स्पर्श किया और बही बही, पक्की बही से छुलाकर फिर उसी स्थान पर उसे रख दिया।

आठ बजते-बजते गद्दी पर दोनों मुनीम आ गए—रामचन्दर और सीताराम। हिरनू, मनोरथ और होरी—दुकान के ये तीनों नौकर भी आ गए। हिरनू केवल दुकान का सेवक था—दुकान पर सबको पानी पिलाता, हर दलाल, हर आढ़तिये, हर आये हुए व्यापारी की सेवा में उपस्थित रहता। मनोरथ दुकान से बाज़ार, बाज़ार से मण्डी, मण्डी से बैंक, बैंक से तारघर आदि, बस्ती की मंज़िलों पर दौड़ने-धूपने का उत्तरदायी था। होरी लोहे के ऊँचे तराजू का मालिक और मज़दूर, पल्लेदारों का मुनीम था।

दरवाज़े से दाईं ओर, पूरे बरामदे और सामने सड़क तक के पूरे

सहन में चेतराम की दुकान फैली थी।

इस बस्ती के संसार में मार्च से लेकर मई, जून और जुलाई के अन्त तक के दिन इसके व्यापार के दिन होते थे, जिसे यहाँ 'क्रॉप सीज़न' कहते थे।

उस समय जून के अन्तिम दिन थे। दुकान में बेहद काम फैला था। सुबह से रात के एक बजे तक किसी को साँस लेने तक की फ़ुरसत न होती थी। अनाज की ढेरियों से कहीं एक इंच तक की जगह न थी। गद्दी से बाईं ओर का बरामदा, सामने का पूरा सहन अनाज से पटा पड़ा था।

दुकान के परली ओर सरजू सुनार का दोमंज़िला मकान था। नीचे के चार कमरे और आँगन के भाग को पिछले वर्ष से चेतराम ने साढ़े तेरह रुपये महीने किराये पर ले रखा था। इस पूरी जगह को उसने गोदाम बनाया था, और आजकल वे गोदाम भी भर चुके थे।

सहसा चेतराम ने कहा, "बाबू रामचन्दर··· ओ मुनीमजी, आज दो बजे तक काग़ज़ तैयार होने हैं—हिसाब के साथ आज ही लाला गोरेमल के पास चिट्ठी भेजनी होगी।"

चेतराम ने छीतरमल-गिरधारीदास, कच्चे आढ़तियों, को फोन किया, "सो देखो जी, गल्ला मेरे यहाँ न भेजना, मैं अपना आदमी भेज रहा हूँ, पूरा गल्ला तुलाकर अपने सहन में रखो, वहीं से पूरा गल्ला स्टेशन चला जायगा।" फोन रखकर चेतराम ने दूसरे मुनीम सीताराम से कहा, "मुनीमजी, दौड़कर स्टेशन जाओ, आज छब्बीस तारीख हो गई—'वैगन' का इन्तज़ाम हो गया होगा—एक बम्बई के लिए, एक हैदराबाद के लिए—जाओ, देखो जल्दी! मालबाबू से मेरा राम-राम कहियो, हाँ!"

भीतर से मंगूदादी ने हीरा के हाथ चेतराम के नाश्ते के लिए डेढ़ पाव दूध और थोड़ा-सा गुड़ भेजा। दूध पीने के बाद चेतराम के सामने अनेक काग़ज़-पत्र फैलने लगे—हुंडियाँ तैयार करने के लिए,

पर्चे भरने के लिए, कुछ पर हस्ताक्षर के लिए। और पत्र तो अनेक बिखरे थे, उत्तर पाने के लिए।

सहन धीरे-धीरे मज़दूरों और पल्लेदारों से गूँजने लगा। सड़क पर ठेलों की भीड़ जमा हुई और काम का तूफ़ान आने लगा। एक ओर अनाज की तुलाई आरम्भ हुई, दूसरी ओर बोरे भरे जाने लगे और ठेलों पर अनाज के बोरों की छल्लियाँ बनने लगीं। दूसरी ओर अन्य आढ़तियों से गेहूँ की धारा बह-बहकर यहाँ थमने लगी।

सरजू सुनार गोपालन मुहल्ले का कट्टर आर्यसमाजी था। इम्पीरियल बैंक और सेण्ट्रल बैंक के बीचोंबीच स्थापित आर्य कन्या पाठशाला के निर्माण में सरजू के पिता काशीसाहु का प्रमुख हाथ था। प्रमुख अध्यापिका श्रीमती चमेलीदेवी विशारदा के कक्ष में आज भी काशीसाहु का चित्र सबसे अधिक सम्मान से लगा हुआ है।

सरजू के दिन अपेक्षाकृत आज बहुत अच्छे नहीं हैं, कारण कि वह बेचारा दो-दो बार रावलपिंडी और लाहौरी सोने की ईंटों के बाज़ार में बुरी तरह मुँह की खा गया था; फिर भी, वह आज भी आर्य कन्या पाठशाला का ऑनरेरी सेक्रेटरी है और चाहे जैसे भी हो, वह पाठशाला को सदा चन्दा देता है।

आज दोपहर के समय उसके घर में बेटे हीरालाल का मुण्डन-संस्कार हो रहा था। यज्ञ के उपरान्त सरजूसाहु के आँगन में उपस्थित अनेक स्त्री-पुरुषों के बीच बस्ती के आचार्य शिवसहाय सक्सेनाजी का अत्यन्त मनोरंजक भाषण चल रहा था—"आज आर्य संस्कृति खतरे में पड़ गई है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारा समाज आज भयानक-से-भयानक कुप्रथाओं में फँस चुका है। विशेषकर नारी-समाज, जो हमारे राष्ट्र और आर्य संस्कृति का नियन्ता है, कर्णधार है, वह आज परदा-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और अनेकानेक सामा-

जिक पतनों से गुज़र रहा है। इसी बस्ती को ले लीजिए, आज एकसौ सैंतीस विधवाएँ इन घरों में कैदियों की तरह बन्द हैं और अपनी मृत्यु का पथ जोह रही हैं, विवश हैं, सब-कुछ होते हुए भी वे अनाथ हैं, पशु-तुल्य हैं। इसका कारण क्या है—स्त्री-अशिक्षा, बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह। अहा हा! कितना अच्छा किसी कवि ने व्यंग्य किया है—

'यदि स्त्रियाँ शिक्षा पातीं तो 'परदा सिस्टम' होता दूर,
और शिक्षिता हो वे धारण क्यों करतीं चूड़ी-सिन्दूर?
बाल-विवाह रोक हम देते यदि हमको मिलते अधिकार,
वृद्ध-विवाह का किन्तु देश में कर देते हम खूब प्रचार।
क्योंकि साठ के होकर के भी दूलहा अभी बनेंगे हम,
किसी बालिका से विवाह कर रस में कभी सनेंगे हम।'

यह है आज हमारे समाज की वस्तुस्थिति।"

सब काम छोड़कर दौड़ा हुआ वहाँ चेतराम भी आया। लेकिन उस समय सक्सेनाजी से यह सुनकर, कि बीड़ी-सिगरेट पीना कितनी लज्जा की बात है, सिर पर जुल्फें, मुँह में पान, कलाई में घड़ी, आज का पुरुष दिनोंदिन ज़नाना बनता चला जा रहा है, चेतराम की हिम्मत पस्त हो गई। उसके मुँह में पान भरा था, कुरते की जेब में बीड़ी-माचिस, सिर पर थोड़ी-सी ज़ुल्फ भी थी, जिसमें कढ़ी माँग को उसने तत्काल ही बिगाड़ लिया। मुँह को कड़ाई से बन्द किये हुए उसने इधर-उधर देखा। श्रोताओं में अधिकांश स्त्रियाँ ही थीं, जिनमें राजू पंडित की बीमार पत्नी शारदा भी मौजूद थी। चेतराम उन स्त्रियों में पता नहीं क्या ढूँढ़ता रहा। उसे लग रहा था, उनमें जैसे कहीं रूपा भी आ बैठी है। रूपा कहती थी, उसके नाना आर्यसमाजी थे, उसकी माँ आर्यसमाजी हैं और वह स्वयं आर्यसमाज के प्रशंसकों में है, फिर भी न जाने क्यों वह इतनी निष्ठावान वैष्णव है।

चेतराम अपने बेटे के माथे पर लगाने के लिए सरजूसाहु के यज्ञ

से पवित्र भभूत लेने आया था, लेकिन जल्दी से कोई मौका नहीं निकाल पा रहा था। उधर उसे दुकान पर बेहद देर हो रही थी, दो बुलावे आ चुके थे।

२

चेतराम के घर के पीछे जो गली थी, वह पूरी-की-पूरी लाल पत्थरों से चुनी थी। कारण, इस गली में प्रीतमदास का अपनी पत्नी की पुण्य-स्मृति में बनवाया हुआ ठाकुरजी का एक मन्दिर था। इसका पूरा फर्श असली संगमरमर का बना था और दीवारों में चारों ओर इक्यावन गिन्नियाँ जड़ी थीं। इसके पुजारी थे पंडित राजनाथ, जो राजू पंडित के नाम से पुकारे जाते थे। वह पुजारी कम, भक्त अधिक और सबसे अधिक गृहस्थ थे।

ठाकुरद्वारे के सहन ही में इनका मकान था। इनके पिता धमूं पंडित एक प्रसिद्ध वैद्य थे। बड़ी ख्याति और मर्यादा थी उनकी। हाथ में तो बेहद यश था; जिस रोगी को छू देते, उसे मृत्यु से बचा लेते! यहाँ से दिल्ली तक यह निमन्त्रित होते थे।

दिल्ली में एक बार सेठ गोरेमल को भयानक संग्रहणी हुई थी। उस समय इन्होंने ही उसकी प्राण-रक्षा की थी। धमूं पंडित ने वहाँ पूरे दो महीने रहकर औषधि की थी।

उस दिन वैद्यजी की सेठ के यहाँ से विदाई होने को थी। वह भीतर दीवानखाने में बैठे थे। दोपहर का समय था। गोरेमल अपनी गद्दी पर गाव तकिये के सहारे पड़ा था। एकाएक, घूँघट किये हुए, परदे के पीछे गोरेमल की पत्नी आई और छूटते ही सुबुक-सुबुककर रोने लगी—रोती रही। वैद्यजी हैरान थे। बार-बार प्रश्न-भरी दृष्टि से सेठ गोरेमल की दृष्टि देखते और मुँह से कुछ भी न फूट पाता।

कुछ क्षण बाद गोरेमल ने उदासी से कहना शुरू किया, "हम पै तीन लड़कियाँ थीं। बड़ी का विवाह हमने छः हज़ार पाँच सौ रुपया खर्च करके लाहौर के एक सेठ के यहाँ किया। वह ब्याह के दूसरे ही महीने चल बसी। दूसरी की शादी हमने जयपुर की—पहले से दूनी अच्छी शादी। पर मेरी वह भी लड़की न रही—गौने के पूर्व ही ..."

गोरेमल का स्वर सहसा टूट गया। परदे के पीछे से गोरेमल की पत्नी ने भरे कण्ठ से कहा, "ईश्वर ने मुझे लड़कियाँ ही दीं; उन्हीं को मैंने अपना पुत्र समझा। लेकिन भगवान् को यह भी न स्वीकार! दो चल बसीं।"

यह कहते-कहते सेठानी रो पड़ी। तब गोरेमल बोला, "पण्डितजी, अब हमारे एक ही लड़की शेष है। हम चाहते हैं, इसका ब्याह अपनी बिरादरी में किसी सामान्य घर में करें। मेरी यह लाड़ली तो ज़िन्दा रहे—फूले-फले। आपसे प्रार्थना है वैद्यजी, जिस तरह आपने मुझे इस भयानक रोग से छुड़ाया, उसी तरह आप मुझे इस चिन्ता से मुक्त करें। आप पर हमें पूरा भरोसा है, पूरा विश्वास है; जहाँ आप उचित समझें इसके लिए घर निश्चित कर दीजिये। यह समझिये कि यह कन्या आप ही की है।"

धर्मू पंडित की दृष्टि फैलती गई और उसके पूरे विस्तार में धीरे-धीरे चेतराम की आकृति भरती गई, जैसे साक्षात् वह सामने आ खड़ा हुआ—हाथ फैलाये। और उसी क्षण धर्मू पण्डित ने मन में ब्याह के मन्त्र पढ़ गोरेमल की कन्या का ब्याह चेतराम से कर दिया।

जो भावों में बना, निश्चित हुआ—सत्य वही हो गया।

इस तरह चेतराम इतने बड़े घर ब्याहा गया। बस्ती वाले यह सब देखकर हैरान हो गए—भाग्य फले तो ऐसे, रूप का घूँघट डाले लक्ष्मी स्वयं डोले पर चढ़कर आँगन में आये।

चेतराम के बाबा के समय से उसके यहाँ कपड़े की दुकानदारी थी। उसमें भी बहुत लाभ न था। चेतराम के पिता छेदीराम ने एक बार

कपड़े की दुकान को बन्द कर कच्चे आढ़तिये का काम किया था। पूँजी न होने के कारण उसमें भी उसे घाटा हुआ था और ऐसा घाटा हुआ था कि उसके धक्के से छेदीराम इस संसार से चल बसा। मरते समय चेतराम से कह गया, "देख बेटा, सन्तोष से बड़ी कोई चीज़ नहीं है। जो ईश्वर दे उसके अलावा और इच्छा मत कर। फिर से दुकान कर—वह भी केवल हल्दी, मिर्च और नमक की—पुश्त-दर-पुश्त बेखतरे बैठ-कर खाये जा। थोड़ी आमदनी, थोड़ा खतरा।"

पिता की मृत्यु के समय चेतराम की अवस्था सोलह वर्ष की थी। तब से वह हल्दी, मिर्च और नमक की दुकान खोलकर बैठा था और बीस वर्ष की अवस्था तक बैठा रहा। इस चार वर्ष की दुकानदारी में खाने-पीने के अलावा ईश्वर की कृपा से उसने छः हजार रुपये जोड़ लिए।

धर्मू पंडित को संग लेकर तब वह गया-जगन्नाथजी पिंड करने पहुँचा। बाप को पिंड देकर जब वह बस्ती लौटा तो धर्मू पंडित को व्यास-गद्दी पर बिठा उसने अपनी दुकान पर भागवत की कथा सुनी। यज्ञ हुआ और कर्म-धर्म-लाभ-शुभ और पिता-पितरों के नाम पर ढाई-सौ ब्राह्मणों को पक्का भोज दिया।

जिस समय पूजा के अवसर पर धर्मू पंडित का शास्त्र-विधान यह बताता कि चेतराम के बायें उसकी सुहागन होनी चाहिए, उस समय चेतराम की आँखें डबडबा आतीं। यज्ञ के समय जब पंडित ने चेतराम के बायें गोबर की स्त्री-प्रतिमा बनवाकर रखवाई और राम-जानकी की वह कथा कह सुनाई कि किस तरह जानकी-बनवास के समय अयोध्या में राम ने स्वर्ण की जानकी बनवाकर अपने राजसूय-यज्ञ के अनुष्ठान को पूरा किया, उस समय चेतराम निःशब्द रो पड़ा था।

चेतराम के ये निष्कलंक, अबोध आँसू धर्मू पंडित की चेतना में जम-से गए थे।

ईश्वर ने अपनी असंख्य बाहुओं से चेतराम का यह अनुष्ठान उस

दिन पूर्ण किया, जब धर्मू पंडित के माध्यम से रूपा का डोला उसके द्वार पर उतरा। लोग कहते हैं, धर्मू पंडित ने अपनी गाँठ से सात रुपये के पैसे उसके डोले पर बरसाये थे। चेतराम की माँ ने ढाई तोले सोने की नथ देकर बहू का मुख देखा था।

चेतराम के भाग्य को लक्ष्मी ने छू दिया। आँगन में इतने बड़े वर की, इतनी रूपवती सुहागन उतरी और द्वार की दुकान ही बदल गई। सेठ गोरेमल ने वहाँ अपनी पूँजी से एक फर्म खोल दी—'गोरेमल चेतराम, बैंकर्स एण्ड कमीशन एजेण्ट्स'। चेतराम वर्किङ्ग पार्टनर हुआ, जिसे बिना पूँजी के रुपये में छः आने की पार्टनरशिप मिली।

इस तरह एक दिन चेतराम, चेतराम से लालाजी हो गया, लालाजी से सेठजी बन गया।

यह सब तो हुआ, बड़े-से-बड़े मांगलिक कार्य हुए। जिस-जिसने रूपा को देखा, सब मुग्ध हो गए; जिसने देखा, कुछ देकर देखा, खाली हाथ नहीं।

घर में रूपा लक्ष्मी की भाँति पूजी गई—यह सब हुआ। पर उस सबके बीच कहीं यह भी हुआ : जिस दिन, प्रथम बार सिनीबहू की दृष्टि चेतराम से एक हुई उसे सन्तोष न हुआ। न जाने कोई भाव-भरा कोना जैसे अपने-आप धँस गया। लेकिन बीच में शक्तिमय धर्म जो था—पति की ओर का, पिता की ओर का और सबसे अधिक शरीर का धर्म; इस सबने सिनीबहू को बाँधा, उसके भावों में न जाने क्या-क्या भर दिया। उसकी दृष्टि का असन्तोष, मन का कोई अभाव—यह सब भर गया—भरा रहा। और वह धर्म तथा चेतराम के अतिरिक्त अनुराग से विस्मृति में खो गया।

विस्मृति! अन्तराल!

सिनीबहू, गोरेमल की केवल सन्तान—लाड़ली, मरी नहीं, जी गई, जीती रही और इस जीने की प्रक्रिया में वह माँ हुई। पहली लड़की सीता, दूसरी लड़की गौरी।

राजनाथ धर्मू पंडित का अकेला पुत्र था। बड़े लाड़-प्यार से उसे पाला था। उनकी बड़ी साध थी कि पुत्र संस्कृत और ज्योतिष का बहुत बड़ा विद्वान् निकले। इसके लिए उन्होंने राजू को बृन्दावन और हरिद्वार तक के गुरुकुलों में भेजा, पर वह था कि भागता ही रहा; कहीं वह टिकता ही न था। इस तरह वह संस्कृत और ज्योतिष के स्थान पर स्थानीय स्कूल में केवल आठवीं कक्षा तक हिन्दी और अँग्रेज़ी ही पढ़ सका। फिर घर बैठ गया। इस समय तक राजू की अवस्था पच्चीस वर्ष की हो चली थी। धर्मू पंडित उसके भविष्य को लेकर बहुत ही चिन्तित रहा करते थे।

उस समय तक ठाकुर के मन्दिर का पुजारी भी कोई और था। धर्मू पंडित ने अन्त में हारकर एक नई स्कीम बनाई। बड़ी दौड़-धूप और नाना प्रयत्नों के बाद मन्दिर के पुजारी को निकलवाकर उन्होंने अपने पुत्र राजनाथ को पुजारी के स्थान पर वहाँ स्थापित किया।

और चेतराम के ब्याह के बाद धर्मू पंडित ने राजू का भी ब्याह कर डाला। इतनी मनोकामनाओं की पूर्ति के बाद एक ही दिन की बीमारी में धर्मू पंडित का एकाएक स्वर्गवास हुआ।

पिता की मृत्यु के बाद यद्यपि राजू पैंतीस वर्ष का हट्टा-कट्टा आदमी बन चला था, फिर भी उसे कुछ न सूझता था।

तब चेतराम ने अपना धर्म समझकर राजू पंडित की अनेक प्रकार से सहायता की थी। धर्मू पंडित की सोलहीं और बर्षी में चेतराम ने खुले हाथ राजू की मदद की थी।

इसके उपरान्त राजू पंडित का आत्म-उत्साह उभरा—जैसे पहली बार उनकी आत्मा जगी। आठों पहर ठाकुरजी के मन्दिर में लगाने लगे। कुछ मन्त्र कंठस्थ कर डाले, कुछ भजन और कीर्तन-पद याद कर लिए। मथुरा, बृन्दावन जाकर पुजारियों की नकल कर लाए। 'रामायण', 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत' की कथाएँ जान लीं। 'सुखसागर', 'विश्राम सागर', 'नारदमोह', 'गोपी-संवाद', 'राजयोग', 'सांख्ययोग',

'भृगुसंहिता', 'भक्ति-रहस्य', 'निर्गुन पंथ', 'हनुमान चालीसा' और अनेक पोथियाँ खरीद लीं; और इतनी अथाह पूँजी के साथ उन्होंने ठाकुरजी के मन्दिर में पूजा आरम्भ की कि वे तत्काल ही बस्ती में चमक गए और गोपालन मुहल्ले में तो पुज गए। प्रातः, दोपहर और सन्ध्या तीन बार ठाकुरजी की झाँकी बदलने लगे, बड़ी धूम से आरती के शंख और घंटियाँ बजने लगीं और सिद्ध हो गया कि राजू पंडित बस्ती के सब पुजारियों और आस्तिकों में श्रेष्ठ हैं।

इसका फल यह हुआ कि राजू पंडित गली-मुहल्लों में पुजने लगे। ठाकुरजी पर कई तरह से वर्षा होने लगी—चढ़ावे के रूप में, आरती और भोग के रूप में तथा ठाकुरजी के वस्त्रों और आभूषणों के रूप में।

पहले यह केवल चेतराम के घर की पुरोहिती और उसकी दुकान की गद्दी की पूजा करते, अब इनका क्षेत्र बढ़ गया। अपने गोपालन मुहल्ले के अतिरिक्त बड़ा दरवाज़ा, किराना मुहल्ला और महाजन टोला तक यह पुजने लगे।

इसके साथ-ही-साथ राजू पंडित का रूप-विन्यास भी निखरा। कलाई में सोने की चेन वाली घड़ी, क्योंकि ठाकुरजी को समय पर भोग और आरती की समस्या थी; शरीर पर रेशमी, ऊनी अँचला और उसी के अनुरूप दुपट्टा, जो कि शास्त्र कहता था, पैर में रबर या कपड़े के जूते, जिससे गोवध-निषेध का धर्म पलता था। इन सब बाह्य विधानों से राजू पंडित का व्यक्तित्व ठाकुरजी की मूर्ति से लेकर बस्ती की गलियों तक सम्मान पाने लगा।

जिस वर्ष धमू पंडित का स्वर्गवास हुआ था, उसी के डेढ़ वर्ष बाद राजू पंडित के घर में एक घटना हुई। उनकी पत्नी को, जो सदा कुछ-न-कुछ बीमार रहा करती थी, बच्ची हुई और वह अपने साथ माँ पर ज्वर ले आई—सौरी का ज्वर। तब से राजू पंडित की पत्नी आज तक घर में बीमार पड़ी है। दो-एक महीने तक ज्वर की अनेक दवाइयाँ हुईं; तीसरे महीने मुरादाबाद ले जाकर राजू पंडित ने उसे बड़े

डॉक्टर को दिखाया था। डॉक्टर ने फेफड़े की जाँच की और उसे क्षय-रोग घोषित किया।

तो राजू पंडित की पत्नी शारदा घर में क्षय-रोग से बीमार पड़ी थी। अब उसकी कोई विशेष औषधि न हो पाती थी, क्योंकि राजू पंडित अपनी व्यस्तता के कारण घर में बहुत ही कम आ पाते थे और जब कुछ क्षण के लिए आते भी थे, तो न जाने किस ताव में भरे रहते थे। बुढ़िया माँ को कोई आज्ञा देते तो उसके पीछे जैसे कोई आवेश भरा रहता था। जब शारदा अपनी बुझी हुई दृष्टि से उन्हें ताकती या कराहती हुई उनसे कुछ अपने मन की बात कहती, तो राजू पंडित झट कहते, "सब ठाकुरजी की माया है, वह जैसे चाहें वैसे रखें, आदमी का उनके सामने क्या चारा! राम-राम कहो शारदा, व्यर्थ की बातें मत किया करो—रामनाम सत्य है, वही पति है, वही जीवन है, संसार तो माया है, इसके पीछे क्यों पड़ती हो?" बेचारी शारदा चुप हो जाती, सिर झुका लेती, आँखें आँचल में गाड़ लेती और राजू पंडित अपने मन में कहते, 'ससुरी कहीं की, न जीने में न मरने में, हड्डी की भाँति गले में आ फँसी।'

इस तरह राजू पंडित के घर में ढाई इकाइयाँ थीं—बुढ़िया माँ, रोगी पत्नी और गरीब बच्ची, जो माँ का मुँह देखती और बुढ़िया दादी के आश्रय में पलती। बेचारे राजू पंडित को ठाकुरजी ने बाहर से जितनी सम्पत्ति दी थी, मान और यश दिया था, भीतर घर में उतनी ही विरक्ति दी थी, जैसे यह विरक्ति ईश्वर की दृष्टि से राजू पंडित की भक्ति और अध्यात्म के लिए आवश्यक थी।

२

गोरेमल को चैतराम ने उसी दिन दुकान का हिसाब भेज दिया। गुड़ का सारा ब्यौरा समझा दिया, फोन पर भी उन्हें उत्तर दे दिये गए,

पर गोरेमल को शान्ति न मिली। तब से उसने कई बार फोन किये और चेतराम को परेशान कर डाला।

इसमें कोई विशेष बात न थी; गोरेमल का स्वभाव ही ऐसा था। उसे किसी चीज़ पर जल्दी विश्वास ही नहीं होता और ऊपर से शक्की मिजाज़ का भी था। था तो लखपती और खूब कारोबार फैला रखा था, लेकिन था व्यापार के मामलों में अव्वल दरजे का पिस्सू। अपने सामने तो वह किसीको गिनता ही न था। सब मामलों में, जीवन के हर पक्ष में उसके निश्चित सिद्धान्त थे; उसमें किसी का प्रभाव पड़ना, उसमें विकास या परिवर्तन होना, असम्भव था।

वह एक से हज़ार बनाने में विश्वास करता था, सौ से हज़ार बनाने में नहीं। वह प्रायः चेतराम से असन्तुष्ट होकर कहता था, "लल्ला, अभी तूने जाना ही क्या? तुमने अब तक रुपये का स्वभाव ही नहीं जाना। लल्ला, रुपया गोल होता है—मतलब कि यह चलने वाला पहिया है—व्यापार इसकी धुरी है, और हम हैं इसकी गाड़ी को चलाने वाले। हम इसे जितना ही तेज़ चलायेंगे, रुपया उतना ही तेज़ चक्कर खायेगा—एक से हज़ार चक्कर, हज़ार से असंख्य।"

दुकान की जाँच-पड़ताल के लिए एक दिन बिना किसी सूचना के गोरेमल आ पहुँचा। दोपहर का समय था। जिस समय वह सीधे दुकान पर गया, सब-के-सब हड़बड़ा उठे, जैसे प्राइमरी स्कूल में एका-एक डिप्टी साहब का एक दौरा हो जाय। जो जहाँ था, एक क्षण के लिए वहीं थम गया।

जून के अन्तिम दिन और दोपहर का समय, ऊपर से जब कि दुकान पर खूब काम फैला था, अनाज के आने-जाने की दौड़, ठेले-गाड़ियों की भीड़ से बेहद गर्द उड़ रही थी। गोरेमल किसी अलग कमरे में आराम करने के बजाय वहीं दुकान में बैठा रहा। दोपहर से शाम तक सारा काम देखता रहा और राई-रत्ती के हिसाब पर मुनीमों का भेजा चाटता रहा।

रात के आठ बजे। दुकान पर भीड़ का काम समाप्त हुआ। केवल दलालों का आना-जाना बाकी रहा और फोन पर बातें करने का सिल-सिला बना रहा। उस समय गोरेमल ने चेतराम को अपने समीप बिठाया और असन्तोष के स्वर में बोला, "पिछले वर्ष से आज तक की रोकड़ बही देखने से साफ़ है कि हमारी फ़र्म में कोई विशेष लाभ नहीं। जहाँ थे हम वहीं रह गए। इसे व्यापार नहीं कहते लल्ला! हमें और मेहनत करनी होगी, सट्टे भी करने होंगे। ज़रा ग़ौर करने की बात है यह!"

गोरेमल जब चेतराम से बातें करता, तो चेतराम सिर झुकाए, मौन सारी बातें ही सुनता चलता—बीच में न कोई प्रश्न, न कोई उत्तर। बात यह थी कि कौन उलझे गोरेमल के दिमाग से। इसलिए गोरेमल जब फ़ुरसत देखता तो चेतराम के पीछे लगकर उससे अनवरत बातें करता। उन बातों में व्यवसाय के मेरुदण्ड से दुनिया की सारी सुनी-सुनाई राजनीति, इतिहास, धर्म और न जाने कितनी कल्पित और गढ़ी हुई, इधर-उधर की बातों से बेचारे सीधे-साधे चेतराम का माथा घूमने लगता था।

उस रात गोरेमल ने गद्दी पर बैठे-बैठे चेतराम से केवल एक घण्टा बातें कीं—कम इसलिए कीं कि वे रहस्य-भरी बातें उस फ़र्म के लिए बहुत ही आवश्यक थीं। गोरेमल ने चेतराम को बताया, "देखो चेतराम, समय बुरा आने वाला है। व्यापार के लिए बुरा नहीं, समय के लिए बुरा। बुरे समय में ही तो व्यापार फूलता-फलता है।"

गोरेमल ने बात और भी बल देकर दुहराई, "समय बुरा आने वाला है। मैं कहे देता हूँ चेतराम, चाहे तो नोट कर लो, तीन-तीन अख़बार पढ़वाता हूँ। मुझे मालूम है, ये अंग्रेज़ और यह गांधीजी का सत्याग्रह, यूरोप में लड़ाई की तैयारी और यहाँ स्वराज्य की माँग, स्वदेशी-आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार, गांधीजी के 'यंग इंडिया' का खुलासा मैंने अपने एक क्लर्क से सुना है। हाय-रे-हाय! वर की

बिलैया बाघन कूँ नज़ारा ! अरे ये अंगरेज़ हैं, पीसकर पी लेंगे, झोंक देंगे लड़ाई में सारे हिन्दुस्तान को। फिर चौकड़ी भूल जायगी। लेकिन इन बातों से हमारा कोई मतलब नहीं। मतलब सिर्फ़ इतना कि दूरन्देशी और अपना बिज़नेस, समझे चेतराम ? क्या समझे ? समझे ? क्या समझे ?

चेतराम के होश उड़ने लगे। वह बुरी तरह घबड़ा गया। गोरेमल ने हँसकर कहा, "घबड़ाओ नहीं, उसके लिए अभी से तैयारी करनी होगी। उस समय के लिए जो आज ही से तैयार होने लगेगा, वह समय उसके लिए सबसे उम्दा साबित होगा—समझो कि वह जियेगा और बाकी मारे जायँगे। यह ज़रा ग़ौर करने की बात है।"

उसी बीच फोन की घण्टी बजी। चेतराम घबड़ा गया था। फोन थामते ही उसकी घबड़ाहट क्षण-भर के लिए थम गई। कलकत्ता के व्यापारी ने फोन मिलाया था।

गोरेमल ने गम्भीरता से कहा, "करो सौदा चेतराम ! व्यापारी से कह दो कि हमारे पास सबसे उम्दा गेहूँ का स्टॉक है। हम एकमुश्त लाख-डेढ़ लाख मन गेहूँ का सौदा दे सकते हैं—कह दो चेतराम, ऐसा समय फिर न आयेगा—न यह भाव, न यह क्वालिटी। ग़ौर करने की बात है।" एक 'बैंगन' गेहूँ का सौदा तय हो गया।

गोरेमल ने कहा, "बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पटना, हैदराबाद, लाहौर और आसाम तक फैलते रहो चेतराम ! व्यापार का इतना खुला हुआ क्षेत्र आगे हाथ न आयेगा।"

उसी समय सामने से दो दलाल आये। गोरेमल ने अपनी बात बन्द कर दी। चेतराम दलालों से गेहूँ और दाल के भाव और सौदे की बात करने लगा।

गोरेमल ने गद्दी से उठते हुए कहा, "तब तक तुम गद्दी देखो, मैं भोजन कर आता हूँ। और तब तक अगर मुनीम आ जाय, तो तुम भी रोटी खाने झट आ जाना। यह सब ज़रा ग़ौर करने की

वाले हैं।"

गोरेमल जब ड्योढ़ी से आगे बढ़ा, तो उसे अपनी बेटी की सुधि आई। वह इस भाव से मन-ही-मन में गद्‌गद भी हो उठा कि उसकी बेटी को पुत्र हुआ है।

नाती की छठी में गोरेमल अपनी पत्नी के साथ यहाँ आया था, बरहो उसने अपनी ओर से दिल्ली में मनाई थी।

आँगन में पहुँचते ही देखा, बच्चा दादी की गोद में पड़ा सो रहा था। उसके माथे पर हाथ फेरकर गोरेमल ने गद्‌गद स्वर से कहा, "बड़ा ताजा बेटा है!" और बड़े स्नेह से बच्चे की माँ को आवाज़ दी, "कहाँ हो रूपा?"

बेटी बोली नहीं, चौके में से भोजन का थाल लेकर निकली और आँगन में आ बैठी। गोरेमल भोजन करने लगा। रूपा अपने कमरे में चली गई।

तब तक सामने से मधू निकली और उसने गोरेमल को नमस्ते की।

गोरेमल ने आश्चर्य से पूछा, "अरे! मधू कब आई?"

दादी बोली, "बहू से लल्ला सँभलतो न रहो, सो चेतराम ने याको बुला लियो है। याकू आजु एक माह हो रहो है।"

गोरेमल चुप रहा।

रूपा कमरे से आवेश में बोली, "तूही तो बड़ी सँभालती है! चुगलखोर कहीं की।"

उसी स्वर में वह आँगन में चली आई, और दादी की गोद से उसने बच्चे को छीन लिया। बच्चा रो पड़ा और बेतरह रोने लगा। मधू ने विनय से जब बच्चे को अपने अंक में लिया तब कहीं जाकर, बच्चा वश में आया।

गोरेमल जब खाकर उठा, उस समय बच्चा अपनी बूआ के अंक से लगकर सो गया था। उसी समय बाहर से चेतराम भी आया।

गोरेमल रूपावहू के सामने खड़ा कह रहा था, "रूपा, तू अब भी बच्ची ही रह गई ! दादी से इस तरह बातें की जाती हैं ! तू ही इस घर की मालकिन, तू ही इस पूत की माँ, तू ही सब-कुछ और तू इस तरह ! खबरदार, फिर कभी ऐसा बरताव न हो !"

दादी ने चुपचाप चेतराम को भोजन का थाल दिया। गोरेमल मधू बुआ के अंक में सोये हुए शिशु को साध और दुलार-भरी दृष्टि से देखकर फूला न समा रहा था।

दादी से पूछा, "बच्चे का क्या नाम रखा ?"

"बुआ ने कुछ रखो है," दादी ने कहा, "का रखो है रे मधू ?"

"मेरे भइया का नाम सूरज है।"

"सूरज ! ओहो सूरज !" गोरेमल बहुत प्रसन्न था।

फिर वह अपनी बेटी के पास गया। बेटी पलंग पर चुप रूठी-सी बैठी थी। गोरेमल ने उसके सिर को थपथपाया और स्नेह से कहा, "देख रे सिनी ! कितनी भाग्यवान थी तू ! ज़रा ग़ौर करने की बात है रे !"

"जी रही हूँ इसलिए भाग्यवान हूँ ?"

"वह तो है ही," गोरेमल ने उत्तर दिया, "तू हर तरह से भाग्यवान है। देख कितने चौड़े माथे का तेरा पुत्र है !"

रूपा ने आँसू-भरी आँखों से गोरेमल को देखा और अस्फुट स्वर में कुछ कटु स्वर निकालकर फिर सिर को झुका लिया।

मुँह में पान का बीड़ा लेकर गोरेमल चुपचाप बाहर चला गया। गद्दी पर गाव तकिये के सहारे जा लेटा। कुछ देर बाद चेतराम भी गद्दी पर गया।

गोरेमल ने कहा, "क्यों जी लाला, यह अपनी रुपिया का दिमाग क्यों इस तरह चढ़ा रखा है ? क्यों, क्या बात है ?"

"कोई बात नहीं," चेतराम ने बड़े अधिकार से उत्तर दिया, "यह घर-बार है, रूठना-मनाना तो लगा ही रहता है—वैसे बात कुछ नहीं

है, सब ठीक है।"

"तुम नालायक हो। औरत को अपने अधिकार में रखना चाहिए। उसकी एक मर्यादा होती है, उसे वह तोड़कर चले तो उसका सिर तोड़ दो। यह क्या बात? बड़े घर की बेटी है तो उसका मिजाज़ ही न मिले! घर में बहू-बेटियों का खाने-पीने का दुलार है, और कोई माफ़ी नहीं, समझे?"

चेतराम कान पर फोन थामे किसी अन्य व्यक्ति से कुछ उत्तर पाने की प्रतीक्षा में था। बीच-बीच में वह गोरेमल को इस दृष्टि से देख लेता था जैसे कह रहा हो—'लालाजी, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ?'

कुछ ही क्षण बाद गोरेमल का ध्यान बदल गया और उस पर फिर व्यापार का नशा छा गया। कहने लगा, "देखो चेतराम, बस्ती के सब कच्चे आढ़तियों से अपने सलूक बनाये रखो। अभी दो वर्ष तक रुपये को न सोचो, केवल अनाज को सोचो। खूब अनाज लो और फौरन व्यापारियों के हवाले करो—अनाज दो, रुपये लो। और सट्टे करने भी शुरू कर दो। डरते क्यों हो? भाव का सारा नक्शा, उसका सारा उतार-चढ़ाव तो मेरे दिमाग में है—तुम्हें कभी नुकसान नहीं हो सकता।"

"न जाने क्यों सट्टे से मेरा जी भागता है, लालाजी!" चेतराम ने दबे स्वर से कहा।

"तुममें हिम्मत नहीं है, यह कहो। तुम्हारा संस्कार बनिये का है, परचून का धंधा करते थे न!" गोरेमल ने गम्भीरता से कहा, "जिसके कंधे पर गोरेमल का हाथ हो वह डरे, हद हो गई! बदलो अपने संस्कार!"

गोरेमल बड़ी देर तक गम्भीर रहा। रात के ग्यारह बज रहे थे। चेतराम को नींद आने लगी थी। वह रह-रहकर गोरेमल का मुँह देखता और इस प्रतीक्षा में जी लगाये रहा कि गोरेमल को भी नींद आ जाय।

साढ़े ग्यारह बजते-बजते गोरेमल सामने मैदान के पलंग पर सोने गया। चेतराम फोन के पास बैठा रहा। तब तक गोरेमल ने उसे अपने पास बुलाया, "ज़रा बैठ जाओ! देखो, दो वर्ष तक तो हमें खुल-कर व्यापार करना है। उसके बाद हमें पैसों को खींचना होगा—सारी रकम अपनी मुट्ठी में। क्योंकि जब लड़ाई छिड़ेगी तो हमारे पास अनाज न होगा। लेकिन उस समय जिसके पास ठोस रकम होगी, वह तब भी फूले-फलेगा, समझे। बस, हमें इसी पैमाने और नज़र से सारे काम करने होंगे।"

चेतराम चुपचाप गद्दी की ओर जाने लगा। गोरेमल ने फिर टोका, "लाला, तुम सोते कहाँ हो?"

"गद्दी पर!"

"बहुत ठीक, 'क्रॉप सीज़न'-भर हर व्यापारी और आढ़तियें को गद्दी पर ही सोना चाहिए—न जाने कब कैसी फोन की घंटी बजे! बहुत ठीक, गद्दी पर ही सोना चाहिए और कभी-कभी भीतर भी सो लिया, यह क्या कि गद्दी सूनी और घर में बना परचूनी!"

चेतराम लजा गया। गद्दी के पास आया। नज़र बचाकर उसने एक बीड़ी जलाई और चुपचाप पीने लगा।

बीड़ी समाप्त करके जब वह गद्दी पर गया, थकान से चूर-चूर हो रहा था।

आँखें मूँद वह मसनद के सहारे निःस्पन्द लेटा रहा। ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था। क्षण ही भर में उसकी आँख लग गई और वह उड़ते हुए अस्पष्ट स्वप्नों में देखने लगा—संसार में युद्ध, देश में लड़ाई, बाज़ार बन्द, बस्ती में अभाव, घरों में लड़ाई और सब बन्दी। उसका बच्चा नौजवान होकर युद्ध के मोरचे पर जा रहा है।

चेतराम स्वप्न में डरकर जाग गया। हड़बड़ाकर गद्दी से उठा, सोते हुए गोरेमल को देखा। दीवार की घड़ी में एक बज रहा था।

माथे के पसीने को धोती से पोंछते हुए, दुकान से खोजकर उसने गेरू का एक टुकड़ा उठा लिया। गद्दी पर आया, पीछे दीवार के सामने खड़े होकर उसने गेरू से तीन बार लिखा—लाभ, ॐ शुभ, ॐ लाभ !

तीन दिन बाद गोरेसल दिल्ली चला गया। उस दिन दोपहरी में चेत-राम ने गद्दी पर ही अपनी सारी नींद पूरी की; बेख़बर सोता रहा। साढ़े पाँच बजे वह मुनीम द्वारा जगाया गया; लायलपुर से फ़ोन आया था।

उसी समय दुकान पर राजू पंडित दिखाई दिए। उनके दायें हाथ में पीले वस्त्र में लपेटा हुआ सम्भवतः कोई ग्रन्थ था। चेतराम ने आदर से उनका गद्दी पर स्वागत किया।

राजू पंडित ने अपने दायें हाथ को ऊपर उठाये रखा। पता चला कि वह कोई ग्रन्थ नहीं, बल्कि चेतराम के बच्चे की जन्म-पत्री थी, जोकि राजू पंडित ने सवा महीने में शोधकर बनाई थी।

उन्होंने चेतराम से कहा, "चलो, आँगन में चौक पुरवाओ, पहले जन्म-पत्री और बच्चे की पूजा होगी, फिर बच्चे की माँ और तुम्हें इसका फल सुनाऊँगा।"

एक क्षण रुककर उन्होंने स्वर में अतिरिक्त बल देकर कहा, जैसे विवश हो गए हों, "ऐसी जन्म-पत्री न मैंने आज तक बनाई है, न कहीं देखी है। क्या बात है, ऐसा राजयोग तो कहीं घटता ही नहीं !"

हर्ष से पागल होकर चेतराम घर गया। बच्चा अपनी बूआ की गोद में खेल रहा था। दादी आँगन में बैठी लोई-दीया बना रही थी और रूपावहू अपने कमरे में पान के बीड़े लगा रही थी।

सबके बीच में आकर वह बोला, "बच्चे की जन्म-पत्री बनकर आई है। झट आँगन में चौक पूरो। घी के दीप, कलश में जौ भरकर आम

के पत्ते और उस पर एक नारियल का गोला, और उस पर सवा गज़ रेशम का टुकड़ा।"

रूपा ने आँगन में आकर पूछा, "किसकी जन्म-पत्री ?"

"हमारे बच्चे की।"

"किसने बनाई है ?"

"पुजारी राजू पंडित ने। वह दुकान पर लिये बैठे हैं।"

"मुझे नहीं चाहिए वह जन्म-पत्री, कह दो उसमें आग लगा दें।"

चेतराम डर से काँप गया।

"कोई पूजा न होगी। राजू पंडित मेरी देहली पर पाँव नहीं रख सकता।"

चेतराम जड़वत् खड़ा रहा।

"वह झूठा है, उसे कुछ नहीं आता-जाता, पाखंडी कहीं का !" रूपाबहू के स्वर में कुछ अजीब कटुता थी।

चेतराम ने जैसे दया माँगते हुए कहा, "नहीं, हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। जिसे दुनिया माने, वह हमें मान्य होना चाहिए। इन बातों में क्या रखा है ! जन्म-पत्री तो ले लो।"

"नहीं चाहिए," रूपा ने ज़ोर देकर कहा।

"कम-से-कम जन्म-पत्री का फल तो सुन लो।"

"मुझे सब मालूम है, मुझे उसका बताया हुआ फल नहीं चाहिए।"

चेतराम विमूढ़-सा खड़ा देखता रह गया। आँगन की मधू बुआ, दादी, घर का कोना-कोना, सब चुप पड़े थे।

रूपाबहू ने कहा, "जन्म-पत्री की ही तुम्हें भूख है तो किसी और से बनवा लो और अकेले खूब जी भरकर उसके फल सुनो।"

"ज़रा सोचकर देखो, यह सब तुम क्या कह रही हो ?" चेतराम ने पीड़ा से कहा, "इस सबका क्या मतलब है, क्या प्रभाव होगा, कभी इसे सोचा भी है···ज़रा सोचो इसे !"

"सोचो जाकर तुम !"

"मैं तो सोचता ही हूँ, लेकिन···।"

रूपा उबल पड़ी, "जाकर तुम गद्दी पर सोचो, बड़े सोचने वाले हो !"

कटुता से भरकर रूपा अपने कमरे में लौट गई। चेतराम ठगा-सा कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गया।

उसका चेहरा उतर गया था। स्वयं चेतराम को अनुभव हुआ, उसका मुख इतना छोटा हो गया है कि वह राजू पंडित को दिखा नहीं सकता था।

छूटते ही राजू पंडित बोले, "चलूँ भीतर, हो गया सब प्रबन्ध ?"

चेतराम ने कहा, "घर में पता चला कि आज दिन अच्छा नहीं है। लाइये, जन्म-पत्री मैं लिये ले रहा हूँ; फल फिर कभी सुन लेंगे।"

राजू पंडित कातर दृष्टि से चेतराम का मुँह देखने लगे।

चेतराम ने सामने की सन्दूकची से कुछ मुट्ठी में लिया और चुपचाप उसे राजू पंडित की दाईं हथेली में भर दिया।

राजू पंडित ने देखा, उनकी मुट्ठी में इक्यावन रुपये हैं। उन्हें यह प्रतिदान अच्छा न लगा। बड़ी विनम्रता से रुपयों को लाला के हवाले करते हुए उन्होंने कहा, "उस बच्चे को यह जन्म-पत्री मेरी भेंट है, मैं इसके लिए किसी तरह की दक्षिणा नहीं ले सकता।"

"लेकिन यह कैसे हो सकता है ? जन्म-पत्री और कोई दक्षिणा नहीं ?"

"मैं बहुत संतुष्ट हूँ लाला ! समझिये कि मुझे दक्षिणा मिल गई है।"

और राजू पंडित ने जन्म-पत्री को लाला की अंजलि में रख दिया। चेतराम आत्मिक आह्लाद से पिघलता जा रहा था, पर उसके मन पर कहीं असन्तोष भी बरस रहा था। उसने आग्रह से कहा, "पंडितजी, कुछ तो आपको लेना ही होगा।"

"अच्छा तो यही सही, जाइये बहू के हाथ का एक बीड़ा पान लाइये।"

चेतराम बच्चों की तरह खुलकर हँस पड़ा। भीतर गया, लेकिन रूपा से कुछ कहने की उसकी हिम्मत न हुई। स्वयं पनडब्बे पर हाथ लगाया, देखा, भीतर एक बीड़ा पान लगा रखा है, उसे तश्तरी पर रख चेतराम बाहर आया। राजू पण्डित को पान देकर फिर शान्त रह गया।

जाते-जाते राजू पण्डित ने चेतराम से कहा, "लाला, मैंने अब तक बच्चे को नहीं देखा, खूब स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट है न ?"

"सब ठाकुरजी की कृपा है।" चेतराम गद्‌गद् हो रहा था।

"ठाकुरजी के दर्शन करा दो, उनकी आरती में बच्चे के माथे चढ़ा दूँगा। बहुत महात्म है इसका लालाजी, और आपका पुत्र ! ओ हो हो, क्या जन्म-पत्री पाई है—राजा जैसे संस्कार !"

राजू पण्डित के चले जाने के उपरान्त चेतराम का जी गद्दी पर न लगा। जन्म पत्री को हाथ में लिये वह ठाकुरद्वारे की ओर चला गया।

४

जुलाई के बीतते ही बस्ती का 'क्रॉप सीज़न' प्रायः समाप्त हो गया। वर्षा आरम्भ हुई और व्यापार की गरमी सर्द पड़ गई। बस्ती का ठलवार शुरू हुआ।

लेकिन चेतराम की दुकान पर ठलवार के दिनों में भी कार्य रहता था—थोड़ा-बहुत रोज़गार का, और कुछ चेतराम के स्वभाव के कारण भी। और उस स्वभाव के पीछे संस्कार डालने वाली शक्ति थी—गोरेमल का बेढब व्यक्तित्व। गोरेमल का विश्वास था कि 'हम बड़े व्यापारी और महाजन हैं तो क्या ठलवार के दिनों में बैठे-बैठे अपना खाएँ ? नहीं। इन दिनों जब अपनी दुकान के काम से फ़ुरसत मिले तो अपने आदमियों और अपनी मेहनत से बस्ती के चार-छः वकील, मुख़्तार, डॉक्टर, हकीम, मास्टर, प्रोफ़ेसर, थाना-पुलिस, डाकख़ाना-तार, स्टेशन,

तहसीलदार, एस० डी० ओ०, मुन्सिफ़ और रजिस्ट्रार आदि को घी, गेहूँ, दाल, चावल सप्लाई करो। व्यापार-का-व्यापार और ऊपर से मन-भर का एहसान। न जाने किसका कौन एहसान और जान-पहचान किस दिन, किस घड़ी काम आये! यह तो दुनियावी बैंक है, जब ज़रू-रत पड़े तब हाथ-के-हाथ नकद भुना लो।'

ऐसे ठलवार के दिनों में बस्ती के एक मुहल्ले में अगर मथुराजी की नौटङ्की चल रही होती, तो दूसरे में राधेश्याम का रामायण-पाठ होता। गोपालन मुहल्ले में अगर किसीकी दुकान पर श्रीमद्भागवत की व्यास-गद्दी लगी होती तो बड़े दरवाजा में कठपुतली का नाच हो रहा होता। किराना मुहल्ला में अगर किसी महात्मा का सत्संग चल रहा होता तो महाजन टोले के मैदान में छोटे-मोटे सरकस का तम्बू अवश्य लगा रहता।

ठलवार में इन तमाम कार्यक्रमों के ऊपर भादों-मास में मंदिर और ठाकुरद्वारों के झाँकी-समारोह इस बस्ती के जीवन-उत्साह के उदाहरण थे। उस समय, गली-मुहल्लों के अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम स्थगित कर दिये जाते और पूरी शक्ति के साथ लोग झाँकी निकालने में लग जाते थे। इसकी सफलता पर मुहल्लों के आत्म-सम्मान की जैसे होड़-सी लगती थी।

इस दिशा में अपने गोपालन मुहल्ले का नायक चेतराम ही समझा जाता था।

ठाकुरद्वारे में अगले दिन से झाँकी आरम्भ होने को थी। इस वर्ष रूपावहू ठाकुरजी के लिए नये वस्त्र न बना सकी, न कोई नया आभूषण या मुकुट ही दे सकी।

झाँकी सजाने और तरह-तरह के परदों के लिए रूपावहू की कीमती साड़ियाँ और जड़ाऊ वस्त्र जाते थे। कल शाम राजू पंडित ने बहू के पास आभूषण और वस्त्रों के लिए कहला भेजा था। बहू ने बात तक न की, कुछ सहयोग देने की बात तो दूर।

आज दोपहर, रूपाबहू के पास चेतराम आया। झाँकी की सजावट का प्रश्न उसने बहू के सामने रखा।

बहू आगबबूला हो गई, चेतराम से कोई तर्क न हुआ। वह दूसरी बार इस विषय में विनय तक न कर सका।

उलटे पाँव वह लौटकर ठाकुरद्वारे आया, राजू पंडित से बोला, "तुम्हारी पत्नी के भी तो ब्याह और काम-काज के धराऊ वस्त्र होंगे, इस वर्ष उन्हीं से क्यों न काम चलाया जाय ?"

राजू पण्डित बहुत देर तक चुप रहे, रुँधे कण्ठ से बोले, "तो इस वर्ष ठाकुरजी की झाँकी न होगी, झाँकी नहीं होगी !"

"क्यों, ऐसा क्यों ? ऐसा कभी नहीं हो सकता पुजारी ! क्या चेतराम···।"

"नहीं लाला ! छोड़ो इस वर्ष।"

चेतराम ने हँसकर पुजारी का कन्धा झकझोर दिया। उन्हें साथ लिये बाज़ार गया और अपनी आवश्यकतानुसार कुछ कपड़े तो उसने तुरन्त ख़रीद लिये, कुछ किराये पर लिये और महाजनटोले के मन्दिर की झाँकी बनाने वाले कारीगर को फोड़ा और सब-कुछ साथ लिये-दिये वह अपने ठाकुरद्वारे लौटा।

चेतराम के अथक प्रयास और परिश्रम से ठाकुरजी की इस वर्ष की झाँकी पिछले वर्षों से अगर अच्छी नहीं तो बुरी भी न थी, पर राजू पंडित का जी कुछ बुझा-बुझा-सा रह गया।

झाँकी का सप्ताह बीत गया, बस्ती का एक बहुत बड़ा समारोह अपने समस्त राग-रंगों के साथ मनाया गया, पर रूपाबहू एक दिन के लिए भी अपने घर से बाहर न निकली। कभी भूलकर भी आँगन, छत या खिड़की से बस्ती की ओर तक न झाँकी।

एक रोज़, ठाकुरद्वारे में सन्ध्या को आरती के समय राजू पंडित को छोड़ वहाँ कोई और न था। पिछवाड़े से मधू बुआ निकली और यों ही सहज ढंग से ठाकुरद्वारे में चली गई। अंक में लाड़ला शिशु भी

था। बुआ ने देखा, आरती समाप्त हो गई है और राजू पंडित आँख मूँदे एकाग्र मुद्रा में ठाकुर की प्रतिमा के सामने चुपचाप बैठा है।

बुआ ने देखा, राजू पंडित की बन्द आँखों से आँसू बरस रहे हैं। देखते ही वह नीचे उतरने लगी, तभी राजू ने उसे पुकारकर रोक लिया, जैसे सब-कुछ एक ही क्षण में भूलकर वह फिर मूल राजू हो गए। स्वयं बढ़कर बच्चे को बुआ के अंक से ले लिया और ठाकुर की प्रतिमा के सामने अस्फुट स्वर में सम्भवतः कुछ मन्त्र पढ़ने लगे। बुआ के अंक में बच्चे को वापस देकर वह फिर से ठाकुरजी की आरती करने लगे—बच्चे की ओर से ठाकुरजी की आरती की और उस घड़ी वह अपनी पूरी श्रद्धा और विनय से झूम-झूमकर कीर्तन करने लगे।

स्वयं बच्चे के माथे पर आरती उतारी, उसके ललाट पर अर्चना का तिलक लगाया, होंठों पर चरणामृत की पवित्र बूँदें बरसीं। फिर वह बच्चे को बार-बार अपने अंक में लेकर उसे आँखों से दुलार करते, चूमते-पुचकारते रहे।

रूपावहू के लिए अलग एक चाँदी के पात्र में प्रसाद और चरणामृत देकर वह मधू बुआ से बोले, "मधू, इस प्रसाद को इसी भाँति तुम बच्चे की माँ को दे देना।"

"नहीं पुजारी बाबा, यह मेरे मान का नहीं।"

"क्यों, क्या बात है? बताओ न मधू बेटी, क्या है?"

"पता नहीं, भाभी से बोलने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती। और वह किसीका दिया-लिया स्वीकार नहीं करतीं। झाँकी के दिनों में भइया रोज़ भाभी के लिए प्रसाद ले आया करते थे, लेकिन भाभी ने उसे कभी देखा तक नहीं, छूने को कौन कहे!"

"तबियत तो ठीक है न?···खाती-पीती हैं न?"

मधू को देर हो रही थी, वह बिना कुछ उत्तर दिये घर की ओर मुड़ी। पुजारी ने देखा, रूपावहू का प्रसाद उसके सामने पड़ा है।

राजू पंडित की दृष्टि प्रसाद की उस थाली में गड़ गई—गड़ी रही।

और वह अपनी एकाग्रता में देखने लगा, रूपा बैठी है—कंचन के थाल में कपूर की तरह।

राजू पंडित ने बढ़कर प्रसाद को अपने माथे ले लिया। ठाकुरजी के पास आया और उनके चरणों में रखकर उस पर उन्होंने अपना माथा टेक दिया।

उसी बीच पुजारी की माँ आई—अंक में पुजारी की बच्ची थी।

राजू ने अपनी बच्ची को देखा। वह बहुत देर से घर में रो रही थी। उसकी आँख आई थी।

माँ ने कहा, "बताओ कैसे घर का काम-काज हो? कौन तुम्हारी बच्ची देखे, कौन भोजन बनाए?"

राजू अपने-आप में भरा था। उसके मुँह से कुछ न निकला। वह तेज़ी से बाहर निकला और गली के मोड़ से चलकर न जाने किधर चला गया।

मधू जब आँगन में गई, रूपा उसे सामने खड़ी मिली। बच्चे के मस्तक पर तिलक देखते ही वह उबल पड़ी।

"कहाँ ले गई थी बच्चे को?"

मधू बुआ घबरा गई, उसे कोई जवाब न सूझा।

"क्यों ले गई इसे ठाकुरद्वारे में? किसने तुमसे कहा था? तिलक लगवाकर लाई है!"

बच्चे को बुआ के अंक से छीनकर उसके माथे को रूपा ने आँचल से पोंछ दिया, "इसे चरणामृत भी पिलाया होगा! बोलती क्यों नहीं? ज़बान कट गई क्या?"

मधू बुआ निःशब्द रो रही थी। तभी मंगूदादी दौड़ी, पूरी शक्ति से चीख़कर लड़ बैठी, "कौन होती है तू मेरी बेटी को जे तरो डाँटने वाली? ले जो मार अपन बेटन कूँ, बाप रे बाप, ग़ज़ब हो गई!"

"यह क्यों ले गई मेरे बेटे को ठाकुरद्वारे में ?"

"तो आजुन से नाय छुएगी वो, ले जो छप्पर पै रखु ! बेटा···बेटा ···बेटा···! तुझ सरीखो तो कोऊ माँड ही न ही !"

"नहीं, तू ही तो जनी है !"

"नहीं, नहीं मैं कूँ ! मेरो ले ही आग लाई, नाम धरो वसुन्धरा !"

मधू का हाथ खींचकर, दादी उसे दूर हटा ले गई, "जे आवै दाढ़ी-जार चेतराम, मेरी बेटी कूँ लौंडिन बनाकर लाओ है ! जे होगी सो होगी अपनो बड़ो बाप कै बेटी । आज मरो कल दूसरो दिन !"

मधू बुआ खुरजा में ब्याही थी । उसके ससुर वहाँ घी के व्यापारियों में मुख्य थे । मधू का पति ईशरी एफ० ए० प्रथम वर्ष तक पढ़ा हुआ था, इसलिए बाप के कारोबार में उसका जी न लगता था । वह किसी दफ़्तर में क्लर्क बनने की साध रखता था । इसी समस्या पर पिता से उसकी न पटी । पिता एक ऊँचे दरजे का सौदागर बनाकर उसे नगर की म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन देखना चाहता था ।

मधू से उसकी शादी हुए आज आठ वर्ष हुए । उसकी गोद अब तक खाली थी । सास-ससुर मन-ही-मन उससे कुछ असन्तुष्ट रहते थे— पिछले वर्ष से तो और भी । ईशरी के सामने माँ-बाप ने दूसरी शादी के लिए बड़े ज़ोर का प्रस्ताव रखा, पर वह किसी तरह भी सफल न हो सके । ईशरी इसके विरोध में अड़ा था । माँ-बाप ने इसका आशय यह लगाया कि हो-न-हो बहू ने मेरे पुत्र को ख़ामख़ाह अपनी मुट्ठी में बाँध रखा है । सास तो इस विश्वास पर आ जमी थी कि बहू ने पूत पर कुछ जादू-टोटका कर रखा है ।

लेकिन चेतराम को अपनी मधू बहन सबसे अधिक प्यारी थी । बेटी की तरह उसे दुलारता था ।

रात को जैसे ही चेतराम घर में आया, दादी आवेश में भरी

उसके पास जाने लगी। मधू रास्ते में आ खड़ी हुई, माँ को रोकने लगी।

उसी क्षण मधू को आभास हुआ कि बच्चा अब सोकर उठा है और माँ के पास रो रहा है। वह सहज आग्रह से दौड़ी। रूपाबहू के कमरे से बच्चे को उठा लिया।

चेतराम आँगन में आ खड़ा हुआ था। दुलार से बोला, "मधू, तुम्हारा यह सूरज बड़ा बदमाश हो गया है, तुझे पहचानने लगा है, नहीं तो यह शरारतन रोता है।"

मधू पास चली आई, बच्चे को दुलारती हुई बोली, "भइया, तुम मेरे सूरज का नाम नहीं ले सकते, यह तुम्हारा जेठा पुत्र है।"

कहकर मधू हँस पड़ी, चेतराम को भी हँसी आ गई। वह उसी बीच कहने लगा, "तुझे यह बहुत दिक करता होगा, हाँ, अच्छा इसे सँभालने के लिए कोई अच्छी नौकरानी रख ली जाय?"

उसी बीच दादी फूट पड़ी, "मुफ्त में इतनी अच्छी नौकरानी ना मिलेगी तुझे!"

"क्या कह रही है तू, माँ?" चेतराम घबड़ा गया।

"कुछ नहीं, यह मज़ाक कर रही है भइया!"

"मज़ाक नहीं तेरो सर कर रही हूँ!" दादी ने गुस्से में कहा, "मेरी बेटी को इसीलिए तूने यहाँ मगाओहे?" माँ को सँभालकर मधू उसे एक किनारे ले जाने लगी, और समझा-बुझाकर उसे कमरे में कर आई।

इस बीच चेतराम अपने-आप सब-कुछ समझ गया और स्वयं में पी भी गया, और जब मधू अंक में बच्चे के साथ उसके पास लौटी तो वह एक अजीब तरह से हँसने लगा, हँसता रहा, जैसे अपना कुछ रँग रहा हो, कुछ छिपा रहा हो और सबसे ऊपर अपनी लाड़ली बहन के मन पर प्यार-सा कुछ बरसाना चाह रहा हो।

लेकिन हँसी की बनावटी तरलता में खिसियाहट की धूल उभर

आई और वह चुप हो गया। आँगन से चौके में गया, फिर न जाने कब बाहर निकल गया।

मधू दादी के कमरे में गई।

दादी भरी बैठी थी, उबल आई, "जी नहीं मानो न! फिर ले लियो लल्ला कूँ!"

मधू मुस्करा दी, "यह बच्चा पहले हमारा है, फिर भाभी का!"

सहज भाववश दादी ने हाथ बढ़ाकर बच्चे को अपनी गोद में ले लिया, तब मधू को हँसी आ गई और उसे छिपाने के लिए वह आँगन में भागी।

कई दिन के बाद एक दुपहरी में, जब रूपा ने न जाने किस पर क्रोध करके पूरे घर को अपने सिर उठा रखा था, मधू बुआ जी बहलाने के लिए राजू पण्डित के घर की ओर गई। उसे राजू पण्डित की बीमार पत्नी शारदा से बहुत मोह था।

उस दुपहरी में बेहद उमस हो रही थी। पलंग से लिपटी हुई शारदा के पास कोई नहीं आता, इसलिए उसका स्वभाव बन गया था कि वह एकटक जैसे अपने एकाकीपन को ही देखा करती थी।

राजू पण्डित कहीं दरबार करने गये थे। उनकी बच्ची, जिसकी माँ शारदा थी, फर्श पर खेलती-खेलती नंगे बदन सो गई थी।

मधू जब उस कमरे में गई, उसने देखा, निःशक्त माँ पलंग पर औंधी पड़ी हुई अपने आँचल से बच्ची को पंखा झल रही है।

तेज़ी से आकर मधू ने बच्ची को अंक में ले लिया और आँचल से धूल झाड़ने लगी। शारदा जाग-सी गई, जैसे वह जड़ से चेतन हो गई।

मधू पास बैठ गई, हँसकर बोली, "चाची, तुम एक दिन ज़रूर अच्छी हो जाओगी।"

"इस जन्म के बाद ही होऊँगी बेटी!···क्यों ऐसी दुपहरी में घर से निकलती हो?"

"कई दिन से तुम्हें देखने को जी चाह रहा था चाची !"

शारदा भरी बदली की तरह बरस आई, "मरे को क्या देखना बेटी ! मैं तो धीरे-धीरे राख हो रही हूँ !···अच्छा, छोड़ो इन बातों को, अच्छी तरह से हो न ?"

"बहुत अच्छी ।"

"रूपाबहू का बच्चा तो बैठने लगा होगा, कैसा है ? मैंने तो अब तक देखा भी नहीं, लाना किसी दिन, हाँ !"

"लाऊँगी ।"

"नाम क्या रखा है ?"

"मैंने ही सूरज रख दिया है ।"

"बड़ा सुभागा है ।····" शारदा एकाएक चुप हो गई, फिर भाव में आकर बोली, "इस बच्ची का भी नाम तुम्हीं रख दो बेटी !"

"नहीं चाची, इसका नाम राजू चाचा रखेंगे—खूब शोध-विचार कर ।"

"आग लगे उनके शोध-विचार पर ।···मेरा क्या नाता बेटी !"

मधू बुआ उदासी से चुप हो गई । शारदा उसे बुझी-बुझी आँखों से देखती जा रही थी । इस दृष्टि में जैसे अनेक स्वर हों, और स्वरों में अनेक अभिलाषाएँ, साध, इच्छा और अभुक्त स्वप्न ।

मधू बुआ ने बच्ची को चूमते हुए कहा, "इसका नाम सन्तोष रख दो चाची !"

"देखो न, कितना सही नाम रख दिया तुमने ! सन्तोष !"

और उसने प्यार से बच्ची को अपने अंक में लेना चाहा, बच्ची ने विरोध किया । बुआ के अङ्क को वह छोड़ ही न रही थी, जैसे उसने माँ को जाना ही नहीं । माँ को जानने के लिए, माँ की आत्मा की डोर से बँधने के लिए छाती का दूध चाहिए था, पर बच्ची के जन्मते ही प्रकृति ने उसे छीन लिया था । शारदा रो पड़ी, "देखो न बेटी, जिसे जन्म देकर इस व्याधि में फँसी, वह भी मुझे नहीं पहचानती ।"

"जब बड़ी होगी तब पहचान जायगी चाची !"

"तब तक मैं कहाँ रहूँगी बेटी, राख को ठण्डी होने में कितनी देर !"

कुछ क्षण की उदासी के बाद शारदा एकाएक मुस्करा पड़ी और साथ-ही-साथ उसका कण्ठ भर आया, "मुझे बड़ी साध लगती है कि अपने हाथों इस घर को लीपती-बुहारती, अच्छे-अच्छे भोजन बनाती, और जी-भर सबको खिलाती, फिर इस मुहल्ले की सारी औरतों को संग लेकर ढोलक पर गीत गाती।"

"चाची, तुम्हें गीत याद हैं ?"

"बहुत-बहुत, बहुत याद हैं—सब मेरे भीतर भरे हैं। इतने हैं कि मेरा दम फूल जाता है, लेकिन आज तक मैं अपने कोई भी गीत न गा सकी। सब भीतर-ही-भीतर सुलगते हैं।"

"चाची, तुम मुझे लिखवा देना, मैं सब याद कर लूँगी।"

"तुम्हारी ससुराल में खूब गीत गाये जाते हैं न। तुम खूब गाती होगी !"

"मेरी छोड़ो चाची ! मैं गाती नहीं, लेकिन गीतों से मोह है मुझे।"

उसी समय सामने राजू पंडित दिखाई पड़े। पूरे चेहरे पर हँसी बिखरी थी। उन्हें देखते ही मधू पलंग से उठ खड़ी हुई और बाहर जाने लगी।

"क्यों, मेरे आते ही भाग रही है बेटी ?"

"बड़ी देर से आई हूँ।"

"नैहर में कि ससुराल में ? यहाँ तुझे कैसी देर-सवेर ?"

"नहीं चाचा, घर बच्चा रो रहा होगा।"

"माँ के रहते बच्चा रो रहा होगा ? अजीब बात है !···क्या हो गया है रूपाबहू को, कुछ समझ में ही नहीं आता। शायद कुछ तबियत ख़राब रहती है। सुना है, सिर में चक्कर आता है।"

मधू बुआ चुप खड़ी थी।

"सब व्याधियों की औषधियाँ भी हैं," राजू पंडित ने गम्भीरता

ने कहा ।

तभी शारदा ने बात छीन ली, "लेकिन मेरी व्याधि की औषधि तेरे पास नहीं है, क्यों ? चुप क्यों हो गए ?"

मधू बुआ धीरे से बाहर निकल गई ।

शारदा ने टूटते स्वरों को गम्भीर बनाकर कहा, "बस्ती के सबसे बड़े पुजारी, सबसे बड़े पंडित और इतने प्रसिद्ध वैद्य के सुपुत्र तुम; और मैं तुम्हारी पत्नी, क्यों ? सत्य है कि नहीं ?"

"बस सारा सत्य तुम्हीं तो हो, अभागिन कहीं की !" राजू पंडित का स्वर उपेक्षा से तिक्त हो आया, "जब से इस घर में पाँव रखा, घर को अस्पताल बना दिया, जीना दूभर हो गया ।"

"तुम्हारे जीने में क्या कमी है ? मैं अभागिन हूँ अपनी जगह । मैं उसे अकेले भोग भी रही हूँ, तुमसे कभी बटाऊँगी नहीं । तुम बाहर-बाहर अपना सारा राज भोगो, खूब भोगो, लेकिन एक दिन जब मैं न रहूँगी. अकेली तुम्हारी यह ग़रीब बेटी रह जायगी, तब तुम सोचोगे कि मैं अभागिन तो ज़रूर थी, पर थी कुछ ।"

"इसके माने मैं कुछ नहीं हूँ, तू चाहती है कि मैं भी तेरी चारपाई से लगकर मर जाऊँ···यही चाहती है न ?"

"पता नहीं क्या चाहती हूँ !···लेकिन मैं क्या चाहती हूँ, तुम ईश्वर के नाम पर इसका अनुमान न लगाओ । चले जाओ यहाँ से, जाओ घूमो कहीं—कथा-वार्ता करो, शास्त्र की बातें सिखाओ ।"

राजू पंडित सुलगकर रह गए । उनका जी हो आया कि बोलने वाली को ऐसा झापड़ मारा जाय कि कभी उसकी ज़बान न हिले ।

५

गोरेमल ने व्यापार के सिलसिले में चेतराम को दिल्ली बुलाया । तीसरे दिन जब वह बस्ती लौटा, दादी ने याद दिलाया, उसका बेटा दो वर्ष

का हो गया। चेतराम को और कुछ न सूझा, शाम को उसने धीमर-टोले के सारे बच्चों को दावत दे दी।

बच्चों को पूरी और खीर खिलाई गई। चेतराम अपने सूरज को अंक में लिये बैठा रहा और उसने एक-एक बच्चे के मुख से यह कहते सुना, 'भइया जीवें लाख बरीस।'

इस समारोह में मधू बुआ न रही; चेतराम को उसकी कमी बेहद खली। आज चार महीने हुए, ससुराल वालों ने बुआ की विदाई ज़बरन करा ली थी।

तब से बच्चे को बहुत तकलीफ़ थी। वह अक्सर रोता रहता था, यद्यपि चेतराम ने केवल उसे सँभालने के लिए तीन रुपये पर एक नौकरानी रख ली थी—नाम था, दसिया। बीस-बाईस साल की उसकी अवस्था थी। दाईं आँख से वह कानी थी, लेकिन खुले रंग की थी।

रूपा ने बिना किसी विरोध के बड़े मन से दसिया को नौकरानी रख लिया था, यद्यपि पूरे एक हफ़्ते तक बच्चा उसकी गोद में न जा सका था। वह उसे देखते ही रोकर भागने लगता था।

इस तरह बच्चे के लिए नौकरानी ज़रूरी थी, पर बच्चे के सँभालने का कुछ-न-कुछ दायित्व चेतराम पर आ पड़ा था।

मई के दिन, क्रॉप सीज़न आ गया था। इस वर्ष किसानों के घर ख़ूब पैदावार थी। गेहूँ, मटर, अरहर और सरसों में और सस्ती आने वाली थी। इसलिए चेतराम आजकल अभी केवल आढ़त का काम उठाये हुए था। गोरेमल ने उसे बताया था, मई के अन्त तक अनाज के भाव निश्चित हो जायँगे, तभी अपनी बिक्री के लिए अनाज इकट्ठा करना होगा।

गोरेमल ने न जाने किस सूत्र से यह भी बताया था कि जुलाई-अगस्त में भाव दो-चार आने ऊपर चढ़ेंगे; पूरी उम्मीद थी कि पूर्वी ज़िलों तथा बिहार-आसाम में बाढ़ आयेगी। चेतराम ने गोरेमल के

इन मन्त्रों को अपने मन की तिजोरी में बन्द कर रखा था और उसी के प्रकाश में वह मई के महीने का व्यापार चला रहा था।

गोरमल के समझाने-बुझाने से नहीं, बल्कि उसकी आज्ञा से इस वर्ष चेतराम सट्टा करने को भी तैयार हुआ था। इन सारे रहस्यों को चेतराम इस तरह घोंटे बैठा था, जैसे कोई साँप किसी मेंढक के बच्चे को निगल गया हो।

आजकल चेतराम अपने किसी भी कच्चे आढ़तिये या दुकान के दलाल से पूरे मुँह बात नहीं करता था। ज़बान ही तो है, कौन ठिकाना ! कहीं निकल गई दायें-बायें ! इसलिए चेतराम अपनी अन्तरात्मा से बड़ा ख़बरदार रहता था। बात यह भी थी कि वह अपने स्वभाव से बेहद सीधा था।

मई बीतते-बीतते चेतराम ने अनाज लेना आरम्भ कर दिया। जब सारे गोदाम भर गए, तब उसने बड़ी कोठी वालों से दो गोदाम किराये पर लिये और उनमें भी गेहूँ भर लिया।

एक दिन चेतराम पूजा-पाठ करके हनुमान कुटी के दर्शन और ठाकुरद्वारे में माथा टेकने के बाद ठीक दस बजे अपनी गद्दी पर बैठने जा रहा था। पहले ही फेरे में उसे सामने शंभू, श्यामलाल और मैनूमल ये तीन दलाल दिखाई दिए। वे चेतराम से कुछ सौदा कराने के लिए उसकी राय लेने आये थे।

चेतराम ने उन्हें अपने पास बिठा लिया। बड़ी देर तक बिना कुछ कहे यों ही मुस्कराता रहा, जैसे किसी गूँगे को कुछ मिल गया हो। दुकान के दोनों मुनीम भी बड़ी जिज्ञासा से लाला की ओर रह-रहकर ताक रहे थे।

चेतराम ने बीड़ी जला ली और पूरा बंडल दियासलाई के साथ दलालों के सामने फेंक दिया। गम्भीरता से कहा, "चूँकि बहुत दिनों से तुम लोगों की इच्छा है कि मैं भी कुछ सट्टे-वट्टे में आऊँ, सोचता हूँ कि थोड़ा-सा करके ही क्यों न देखूँ !" तीनों दलाल

आश्चर्यचकित रह गए। उन्हें एक क्षण तो विश्वास न हुआ—चेतराम और सट्टा!

चेतराम ने अपनी बात पूरी कर दी, "मेरे नाम सौ परचे गेहूँ खरीद लो!"

सौ परचों का नाम सुनते ही दोनों मुनीमों के कान खड़े हो गए—पहला सट्टा और सौ परचों का एक साथ! चेतराम ने मुनीमों को आँख से इशारा करके चुप करा दिया। दलाल प्रसन्न हो चलने लगे।

चेतराम ने कहा, "जाओ परचे खरीद लो, मैं अभी बड़ी कोठीवालों से सब बातें फोन पर कह देता हूँ।"

इसके बाद चेतराम बहुत देर तक चुप रहा। उठा और ठाकुरद्वारे गया, भगवान् को माथा टेककर गद्दी पर वापस चला आया और बड़ी कोठी के लाला सैयांमल से फोन पर बातें करने लगा।

जब बात पूरी हो गई तो चेतराम से गद्दी पर न बैठा गया। वह झट से उठा और घर में चला गया। क़रीब दो घण्टे तक भीतर ही रहा; बच्चे को बहलाता रहा। लेकिन दोपहर के भोजन के लिए उसके पास ज़रा भी भूख न रही, जैसे उसके पेट में पूरे सौ परचे अन्न के भर गए हों और उसे अब कभी भूख न लगेगी।

चेतराम को ऐसी अनुभूति जीवन में पहली बार हुई थी। इस अनुभूति में एक ही साथ अनेक भाव मिले थे और सबके ऊपर थी आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना।

संयोग यह हुआ कि चेतराम के वे सौ परचे लाला सैयांमल के ही यहाँ खरीदे गए। दलाल लोग बता रहे थे कि चेतराम का यह सट्टा पाते ही सैयांमल ने स्वयं अपने नाम कर लिया।

चेतराम का इतना बड़ा सट्टा बस्ती में छिपा नहीं, आग की तरह फैल गया; एक-एक फ़र्म जान गई कि लाला चेतराम ने सैयांमल से सौ परचे गेहूँ खरीदे।

एक दिन ठीक तीसरे पहर ज़ोर की आँधी आई। सारी दुकानें बन्द हो गईं। दिन रात में बदल गया और उस तूफ़ान में लोग अपने-अपने घरों में जा छिपे। चेतराम भी घर के भीतर जा छिपा था।

रूपा के कमरे में कहीं हाथ पसारे से भी न सूझता था। ऊपर से सारा वातावरण प्रचण्ड वायु के भयंकर नाद से भरा जा रहा था। कमरा चारों ओर से बन्द था। चेतराम ने रूपा को पुकारा—बहुत ही कोमल स्वर में, जैसे उसे बुलाने के लिए मनुहार किया। लेकिन रूपा न बोली, जैसे वह कमरे में थी ही नहीं।

टटोलकर चेतराम ने बिजली जलानी चाही, लेकिन उस तूफ़ान में बिजली कहाँ मिलती!

चेतराम ने उसी कोमल स्वर से रूपा को फिर पुकारा, अनवरत पुकारता रहा। जब उसे कोई प्रत्युत्तर न मिला, तब वह कमरे में बहू को टटोलने लगा। पलंग पर जा गिरा; पाया रूपा वहाँ औंधी पड़ी है।

चेतराम का दायाँ हाथ उसके मुँह पर पड़ा। रूपा उत्तेजित हो उठी और चेतराम के हाथ पर एक बहुत ज़ोर का झटका लगा।

वह घबड़ाया हुआ पलंग की पाटी से झुका रहा, कातर स्वर में बोला, "उठो लो, क्या लेटी पड़ी हो, बच्चा कहाँ है?"

रूपा कुछ न बोली।

तब उसने स्वयं अपनी बात का उत्तर दिया, "समझा, बच्चा दसिया के पास होगा। लेकिन दसिया है कहाँ?"

रुककर फिर उसने अपना उत्तर ढूँढ़ लिया, "दसिया दादी के पास होगी!"

"लेकिन इस भयानक तूफ़ान में बच्चे को अपने पास क्यों नहीं रख लिया?"

इसका उत्तर उससे न बन पड़ा। वह चुप हो गया और आँधी के भयानक स्वरों को सुनने लगा। उसने अनुभव किया, आँधी की ही

गति से पानी भी बरस रहा है।

चेतराम ने धीरे से कहा, "ऐसा न हो कि बच्चा कहीं भीग जाय !"

"तू तो नहीं भीग रहा है नामर्द कहीं का !" रूपा ने कटुता से कहा।

"मैं नामर्द हूँ रूपा ! तुझे ऐसा कहना चाहिए ? बोल तुझे ऐसा कहना चाहिए ?"

"नहीं, बड़े आत्मगौरव के हो ! देख ली तेरी मर्दानगी। औरत से भी बदतर है। बच्चा''''बच्चा'''बच्चा'''बच्चे के लिए हैरान बने फिरते हैं !"

"तब तू ही क्यों नहीं बताती, मैं क्या करूँ ?"

"मुझसे पूछते हो ! कहीं गड़ नहीं गए ज़मीन में !" रूपा का आक्रोश भरा स्वर करुण हो गया, "सब सुनके पी गए गट से ! मुझे मारा क्यों नहीं ? दण्ड दे के मेरा तन क्यों नहीं काट डाला ? ज़िन्दा मुझे ज़मीन में क्यों नहीं गाड़ दिया ? बेशर्म, बेहया कहीं के; मेरा मुँह देखने आते हैं।"

रूपाबहू फफककर रो पड़ी। बाहर की आँधी कुछ-कुछ शान्त हो रही थी, लेकिन पानी के थपेड़ों की आवाज़ अब भी उभर रही थी।

चेतराम गूँगा बना बैठा था—निस्पन्द, निराश्रित। कमरे में ज़रा-ज़रा-सा आलोक बिखर रहा था। रूपा पलंग पर बैठी हुई अपने घुटनों में मुँह छिपाए निःशब्द रो रही थी।

"अच्छा, अब छोड़ो इन बातों को !" चेतराम ने डरते-डरते कहा।

"मैं छोड़कर कहाँ जाऊँ ?" रूपा ने सिर उठाया। प्रतिक्रिया के भावों में बोली, "तुम्हारे लिए तो व्यापार है, चौबीस घण्टे की दुकान है। मैं कहाँ जाऊँ ! बताओ कहाँ ?"

"क्यों इस तरह परेशान होती हो ?" चेतराम ने विनय के स्वर में कहा, "छोड़ो ईश्वर पर इन बातों को ! वह जो करता है, अच्छा ही करता है। इसमें हमारा क्या दोष ? सब-कुछ कराने और करने वाला

वही है; हमारा इसमें क्या दोष है ?"

"बेहया कहीं के, लाज-हया नहीं आती यह कहते ! डूब मर जा के कहीं !"

रूपाबहू एकाएक चुप हो गई, पर उसका मुँह आरक्त हो आया। सिसककर बोली, "मुझे यातना चाहिए, जैसे कर्म वैसी यातना... पर मुझे पता है, तुम मुझे क्यों नहीं यातना देते। मैं गोरेमल की बेटी हूँ, इसलिए...यही न ?"

"क्या फ़िज़ूल की बातें करती हो रूपाबहू ?"

"रूपाबहू फ़िज़ूल की बातें नहीं करती, वह सत्य कहती है, जो अनुभव किया जाता है। समझ लो, मैं सत्य कहे देती हूँ, तुमने मुझे यातना नहीं दी, शायद क्षमा दी, मूल में जो निर्बल है, बिकी हुई है। लेकिन याद रखना, तुम्हारी क्षमा ही मेरी यातना हो जायगी—और वह यातना मुझे तुम्हारा बेटा ही देगा—तुम्हारा बेटा, जो तुम्हारे परिवार का मूल धन है।"

"अम...झूठ, सरासर झूठ, ऐसा कभी नहीं हो सकता !" चेतराम जैसे कुछ देख रहा हो। रूपाबहू रोती हुई उठी, दीवार के सहारे चलती हुई खिड़की के पास गई और उसे खोल दिया। पानी के छींटे उसके मुँह पर आ रहे थे और वह निश्चल खड़ी थी—छींटों से तप्त मुख को जैसे शान्त करती हुई !

चेतराम ने दीनता से कहा, "वहाँ क्यों भीग रही हो ? ठण्ड लग जायगी।"

"ठण्ड लग जायगी !" रूपाबहू ने विरक्ति से देखा और होंठों में बुदबुदाकर रह गई, "ठण्ड लग जायगी, ईश्वर करे मुझे ठण्ड लग जाय, मैं सदा के लिए ठण्डी हो जाऊँ !"

तूफ़ान थम-सा गया। पानी की बूँदें भी पतली हो गईं। पर चेतराम के पाँव उस कमरे से जैसे बाहर ही नहीं बढ़ रहे थे, यद्यपि वह चला जाना चाहता था।

तब तक रूपावहू उस कमरे से बाहर हो गई, और इतनी तेज़ी से बाहर हुई जैसे वह निकल भागी हो। भागकर वह नहाने की चौकी पर गई और आधे घण्टे तक अनवरत नहाती रही।

वह लोटे-लोटे पानी अपने सिर पर डालती रही, जिससे कि उसका मुख ठण्डा पड़ जाय, लेकिन कान तो उसके जलते ही रहे, मन जो सुलग रहा था। बार-बार उसमें लौ की तरह यह भाव जलता रहा—'मैं गोरेमल की बेटी क्यों हुई, मैं उसकी बेटी क्यों हुई? मैं क्यों हुई? मैं क्यों....?'

गीले कपड़ों में ही वह कमरे में लौटी। जब पूरे कपड़े बदल चुकी, तब उसने देखा पलंग के सिरहाने छोटी मेज़ पर आध सेर का गिलास मलाई वाले दूध से लबालब भरा है और उसे चेतराम ने अपनी दुपल्ली टोपी से ढक रखा है।

रूपावहू क्षण-भर के लिए हँस पड़ी, फिर उसे चेतराम पर दया आई, और तब उसे फिर रुलाई आ गई।

न जाने क्या चेतराम के जी में आया, वह बच्चे को लिये सड़क पर उतर आया। टहलता-टहलता ठाकुरद्वारे की ओर बढ़ गया।

वहाँ राजू पंडित न थे। आरती हो चुकी थी और नीचे राजू पंडित के आसन पर श्रीमद्भागवत् कथावली के पृष्ठ खुले थे।

चेतराम ने एक बार भगवान् के सामने अपना माथा टेका, दूसरी बार बच्चे के साथ टेका और नतशिर होकर वन्दना की, "हे ठाकुरजी, जय हो! मेरे दूध-पूत, धन-लक्ष्मी का सदा कल्याण हो! मेरा यह पुत्र आपका होकर जिये और युग-युग जिये। मेरा यह कुलधन, मूलधन दीपक की भाँति सदा प्रकाशित रहे! मैं कभी आपकी आज्ञा से बाहर न रहूँगा!"

चेतराम का मन धीरे-धीरे कातर-सा हो उठा। वह ठाकुरजी से इस तरह बातें करने लगा, जैसे कोई अपने अभिन्न और परम आत्मीय से खुल जाय। वह कहने लगा, "हे ठाकुरजी, आप अन्तर्यामी हैं, जो कुछ

करते हैं, बस आप ही करते हैं। सब आपकी लीला है, आप मेरी बहू को ज्ञान दीजिए। उसे शान्ति मिले। उसकी ओर से मैं आपकी शरण आया हूँ !"

पीछे आहट हुई, कुछ स्त्री-बच्चे ठाकुरजी के दर्शनार्थ आ रहे थे। चेतराम उठ भागा वहाँ से। राजू पंडित के घर गया। देखा, राजू पंडित की बच्ची बेतरह रो रही है, दादी भोजन बनाने में लगी है और बच्ची की माँ शारदा निःसहाय पलंग से लगी कराह रही है।

चेतराम से देखा न गया। दाईं काँख में उसने अपने बच्चे को सँभाल रखा था, बाईं ओर से उसने रोती हुई बच्ची को उठा लिया। उसे पुचकारता हुआ फिर ठाकुरद्वारे की ओर भागा।

बच्ची चुप हो गई। दूर से उसने देखा, राजू पंडित अब ठाकुरद्वारे में अपने आसन पर विराजमान हो गए थे और वहाँ बैठी हुई औरतों और बच्चों को भागवत की कोई मिली-पकाई कथा सुना रहे थे। चेतराम के मन में बड़ी इच्छा हुई कि वह भी ठाकुरद्वारे में जा बैठे और कुछ आध्यात्मिक उपदेश ले, पर उसकी दोनों बाँहों में बच्चे जो थे, जिन्हें वह किसी भी मूल्य पर रुलाना नहीं चाहता था।

वह चुपचाप ठाकुरद्वारे को पार कर सामने गली में उतरने जा रहा था, पर न जाने क्या दृष्टि पाई थी राजू पंडित ने, उसने झट आवाज़ दी और सब छोड़ वह चेतराम के पास चला आया। चेतराम हँसने लगा, बेहद प्रसन्न था वह।

सामने राजू की आवाज़ बन्द थी। उस समय न वह पानी, कीचड़ और धूल में सनी अपनी बेटी को ही ले सकता था, न चेतराम से ही कुछ कह सकता था।

पर उसके मुँह से निकला, "सच है, भगवान् बच्चों में ही बसता है। मैं इस भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला की ही कथा कह रहा था—ओहो, धन्य है! और लालाजी, आप भगवान् के सबसे बड़े भक्त हैं। कहो, घर में सब राजी-खुशी है न?"

चेतराम प्रसन्नता से विहँस रहा था। वह आगे बढ़ने लगा।

"ओहो! लालाजी, क्यों इतना कष्ट करते हो, किसीसे एक न सँभले, आप दो-दो सँभालते हो···धन्य हो प्रभु!"

चेतराम अपनी दुकान पर चला आया। दोनों बच्चों को गद्दी पर ला बिठाया।

ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था। दोनों बच्चे फोन को लेकर आपस में खेलने-से लगे और खेलते-खेलते वहीं गद्दी पर ही सो गए। चेतराम उन्हें मन्त्रमुग्ध-सा देखता रहा। उन्हें इतनी शान्ति से सोते हुए देखकर उसके जी में होता था कि उनके बीच वह भी सो जाय।

तब तक ठाकुरद्वारे से घंटी-घड़ियाल बजने की ध्वनि आई। उसका मन न जाने क्यों ठाकुरद्वारे में जाने के लिए कचोटने लगा। बच्चों को दुकान वालों के सुपुर्द कर वह तेज़ी से गली में मुड़ गया।

ठाकुरद्वारे में राजू पंडित की कथा समाप्त हुई थी, इसलिए वह घंटी बजी थी। श्रोता लोग अपने-अपने घर जा रहे थे। तभी चेतराम दिखाई पड़ा। उसे देखते ही राजू पंडित फिर अपने आसन पर बैठ गए।

"आओ, बैठो लालाजी! भगवान् की भक्ति में, ओहो हो···कितनी शान्ति है! जी होता है कि चौबीसों घंटे यहीं ठाकुरजी को देखता रहूँ।"

"इसमें भी भाग्य-भाग्य की बात होती ... पुजारीजी!"

"क्यों नहीं···क्यों नहीं, इसीको तो पुष्टि मार्ग कहते हैं— अर्थात् भक्ति भी उसीकी कृपा है!" राजू पंडित झट अपनी कथावली के पृष्ठ उलटने लगे, "भली याद दिलाई, सुनियो लालाजी, मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ।"

चेतराम ने ठसकते हुए कहा, "मैं एक बात पूछूँ हूँ पुजारीजी!"

"हाँ, हाँ, अवश्य, अवश्य, यही तो सत्संग है, 'कबिरा संगत साधु

की कटै कोटि अपराध !'''हाँ बोलो, बड़ी शुभ बेला है इस समय, ठाकुर जी सिंहासन पर बैठे हैं, रुक्मिणी चँवर डुला रही है, ओहो !"

"मैं यह पूछूँ हूँ पुजारीजी," चेतराम ने गम्भीरता से कहा, "अनजान में अगर किसीसे कोई भूल हो जाय, तो क्या वह कोई पाप है ?"

"कभी नहीं।"

"और उस भूल में अपने-आप उसके हाथ में कोई अमूल्य पदार्थ आ जाय, तो क्या वह कोई चोरी हुई ?"

राजू पंडित ने जम्हाई ली और खुले मुख को चुटकी बजाकर बन्द करते हुए उत्साह से बोले, "हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कैसी चोरी, कैसा अपराध, कैसा पाप-पुण्य ! अरे, सब प्रभु की माया है ! और भूल-अनजान, ये दो तो ऐसे पुनीत तत्त्व हैं, ऐसे शिशु-स्वभाव हैं, जिनमें ईश्वर बसता है, इसलिए ये अपने-आप में पवित्र हैं, महान् हैं !"

चेतराम परम आश्वस्त मुद्रा से राजू पण्डित को देख रहा था, होंठों पर मुस्कान थी।

बड़े उत्साह से राजू पण्डित अपनी पोथी में न जाने क्या ढूँढ़ने लगे। चेतराम का पूरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए बोले, "भूल और अनजान की अनेक पवित्र कथाएँ हैं इस ग्रन्थ में; सुनो, मैं दो-एक सुनाता हूँ—कुन्ती की कथा, ओहो कितनी दिव्य, कितनी पवित्र शकुन्तला की कथा !"

"मुझे पूरा सन्तोष है पुजारी जी !" चेतराम ने प्रसन्नता से कहा, "मुझे शान्ति भी है। मैं इस समय तो क्षमा चाहूँगा, बात यह है कि बाड़ी पर दोनों बच्चों को सुला आया हूँ।"

"अवश्य, अवश्य, अच्छा, ओहो ! तो मेरी सत्तो भी वहीं सो गई ?"

"हाँ, हाँ, सत्तो और सूरज दोनों !" चेतराम खुलकर हँस पड़ा, "मधू भी क्या-क्या नाम रख गई !"

"नहीं, नहीं, बहुत अच्छे नाम हैं—सूरज में जकार जै का परिचायक, सन्तोष में सकार साकार शक्ति का नाम, सन्तोष—सत्तो! बड़े शुभ नाम हैं, और बुआ का रखा नाम!"

दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े। राजू पण्डित पोथी लिये चेतराम के संग चले। पर गली की मोड़ तक आते-आते वह वापस लौट गए, जैसे वह चेतराम को विदा देने आये थे, यद्यपि चेतराम यह सोचता था कि राजू पण्डित अपनी बच्ची सत्तो को लेने आ रहे थे।

जुलाई बीतते-बीतते गेहूँ में एकाएक मँहगी आ गई—बारह आने मन की गरमी! गोरेमल की रहस्य-वाणी सत्य हुई। पूर्वी प्रदेशों, बिहार और आसाम में जबरदस्त बाढ़ आई। लोग बरबाद हो गए, धरती की सारी तैयार फ़सल नष्ट हो गई।

और इस तरह सौ परचे वाले गेहूँ के सट्टे में चेतराम की बड़ी शानदार जीत हुई। उस रात उसकी गद्दी पर घी के चिराग़ जले, तिजोरी में प्रतिष्ठित लक्ष्मी की पूजा हुई।

चेतराम को इस पहली विजय पर इतनी प्रसन्नता थी कि उससे कहीं रहा न जाता था। उस रात को उससे गद्दी पर न सोया गया। वह भीतर जाकर सोया, लेकिन उसे वहाँ भी नींद नहीं आती थी। उसके सामने एक बहुत बड़े तराजू का चित्र उभरता था—तराजू के बड़े-बड़े लोहे के पलड़े; बाट वाले पलड़े पर सट्टे का एकपेजी कागज़ था—'कबाला', और दूसरे पर चाँदी के रुपये जो चारों ओर हरे-हरे नम्बरी नोटों से पटे थे। चेतराम की दृष्टि में वह लोहे का तराजू भी टँगा हुआ था, जिसमें बाट वाला पलड़ा अब भी ज़मीन से ऊपर न उठ रहा था।

रात भर चेतराम की दृष्टि में तराजू लटकता रहा। सुबह जब वह

उठा तो उसकी आँखें थककर भारी हो आई थीं।

वह स्वर में फुसलाहट भरकर बोला, "सुन रही हो, अरे रूपावहू, सुन रही हो, सुनो तो ज़रा, एक बात कहूँ हूँ, सुनो !"

"कुछ कहोगे कि चोंचले ही चलाओगे !" रूपावहू ने कड़े स्वर में कहा।

"ज़रा धीरे बोलो न," चेतराम ने अपने स्वर को और चिकना कर लिया, "चलो कहीं तीरथ-व्रत कर आयें। क्यों, क्या राय है ?"

रूपावहू चुप थी; उसने इधर जैसे ध्यान तक न दिया।

चेतराम ने कहा, "या कुछ अपने लिए गहने गढ़ा लो। तुम्हारे गले की सीतारामी तो है ही, मैं चाहता हूँ तुम्हारे गले में एक आठ-दस तोले का चन्द्रहार बन जाय। किसीको जयपुर भेजकर कोई अच्छा-सा कीमती नग भी मँगवा लूँगा—पुखराज, नीलम, लाल, कुछ भी। क्यों, क्या सोच रही हो, रूपावहू ?"

"मैं कहे देती हूँ, तुम मुझसे ज़्यादा बकवास न किया करो," रूपावहू ने आग्नेय दृष्टि से देखकर बुझी हुई वाणी में कहा। "तुमने सदा जीता है—जीता होगा, मैं क्या करूँ ? मुझे पागल मत बनाओ, मेरी कोई इच्छा नहीं। मैंने भर-पाया।"

"अच्छा, अब चुप हो जाओ रूपावहू !" चेतराम ने कातर स्वर में कहा।

"जाओ बाहर यहाँ से, मैं तभी चुप होऊँगी।"

चेतराम का मुँह छोटा-सा निकल आया। पिटी गोट की तरह वह वहाँ से बाहर भागा।

तब से लगभग दो सप्ताह तक चेतराम अपने व्यापार के कामों में लगा रहा। कलकत्ता, पटना, गोरखपुर और गया के व्यापारियों का ताँता बँधा था। अपने गोदाम में जितना भी गेहूँ उसने जमा किया था, एक-एक दाने का सौदा कर लिया।

बड़ी कोठी वाले सैयांमल के गोदाम में भरे गेहूँ को चेतराम ने

उस भविष्य के लिए अभी सुरक्षित कर रखा था, जब उसके मुनाफ़े के बारह आने का पूरा रुपया हो जायगा। उसे विश्वास था कि दीवाली तक गेहूँ के बाज़ार में कुछ गरमी और आएगी। वह व्यापारियों को लौटाते हुए अपने मन में सोचा करता था—'जैसे-जैसे दीपक जलेंगे, बाज़ार में वैसी ही गरमी बढ़ेगी।' और वह अपने इस विश्वास पर अटल था।

रूपाबहू का स्वभाव बन गया था वह किसीकी ग़लती को क्षमा न कर पाती थी—वह ग़लती किसीकी, और कैसी भी क्यों न हो। दुलिया के प्रति इस दिशा में वह न जाने क्यों सहृदयता बरतती थी। रूपाबहू कहती थी, 'दुलिया एक आँख की कानी है, बड़ी भली है। मुझे बड़ी अच्छी लगती है। अगर इसका रंग भी काला होता, तो यह मुझे बेहद अच्छी लगती। यह गोरी क्यों हुई?' यहीं वह उसे दोषी ठहराती थी।

रूपाबहू की दृष्टि में दुलिया नौकरानी को कुछ छूट मिली थी, तभी वह घर में बड़े गर्व और अधिकार के साथ रहती थी। दादी उसे देखकर जलती थी। उसकी गोद में जब वह अपने सूरज को देखती तो मुसकुराकर रह जाती।

दीवाली के दिन थे, बस्ती में खूब धूम थी। घर-घर में लक्ष्मी-पूजन की तैयारी थी। हर गद्दी पर महूरत शोधने की चर्चा थी। हर गली, हर पेंच, हर मुहल्ले, मोड़, नुक्कड़ और कोठे पर भाँग की हरियाली, पीने-पिलाने के नखरे और जुए के दाँव चल रहे थे।

दिये की लौ से गेहूँ के भाव में सचमुच गरमी आ गई। चेतराम ने ठीक दीवाली की शुभ रात्रि में अपने गेहूँ की बिक्री से महूरत साध ली। फिर उसकी दीवाली मन गई।

अगले दिन शाम को जब बच्चे को दूध पिलाने के लिए दुलिया घर में आई, तो रूपाबहू ने देखा उसके आँचल में कुछ बँधा है। उसने

पूछा, "आँचल में क्या है री ?"

"मिठाई है बहू !"

"कहाँ मिली ?"

"वह···वो···वो जो ठाकुरद्वारे के पुजारी बाबू हैं न, उन्होंने प्रसाद दिया है।"

"इतना प्रसाद ?"

रूपाबहू कुछ घूँटकर पी गई और उसके सामने से स्वयं हट गई, जैसे कुछ उसे सहसा याद आ गया। वह उलटे पाँव लौटी, दसिया से बच्चे को छीन लिया और उसे स्वयं दूध पिलाने लगी।

दसिया जब रात को अपने घर जाने लगी, रूपाबहू ने उसे अपने पास बुलाया, चुपचाप अपने कमरे में ले गई और उसका आँचल मिठाइयों से भर दिया।

"अब तो तेरा पेट भर जायगा न ? जिस चीज़ की ज़रूरत हो मुझसे माँग !" रूपाबहू ने स्नेह से कहा। दसिया कृतज्ञ-सी मुस्कराती रही, कुछ बोली नहीं, चुपचाप अपने घर चली गई।

एक दिन दसिया अपने घर से पीली साड़ी पहनकर आई। वह उसकी माँ की धराऊँ साड़ी थी। बहुत प्रसन्न थी, बहुत सावधानी से बच्चे को सम्हाल रही थी।

रूपाबहू उस दिन कुछ अस्वस्थ थी। उसे बुख़ार भी था और सिर-दर्द भी। दिन में उसने कई बार दसिया को पुकारा, उसे अपने पास बुलाना चाहा, लेकिन संयोगवश वह मिल न सकी। तीसरे पहर वह मिली। घर में थी; रूपाबहू के पुकारते ही वह दौड़कर उसके पास गई।

"कहाँ थी तू ? मैंने तुझे पुकारा, तू मिली नहीं," रूपाबहू ने कहा, "आ बैठ, ज़रा मेरा सिर दाब दे !"

दसिया सिरहाने बैठ बहू का सिर दाबने लगी। रूपाबहू बोली, "बहुत इधर-उधर मत घूमा कर ! बच्चा क्या घर-दुकान में नहीं

बदल सकता ? बहु तेरी जगह तो है अपने पास !"

दसिया चुप थी।

"ज़रूरत भी क्या इधर-उधर जाने की ?"

फिर रूपाबहू आँख मूँदकर चुप हो गई। सिर-दर्द में कुछ शांति आ रही थी। लेकिन उस बीच उसने अनुभव किया कि दसिया की किसी उँगली में अँगूठी है।

"कैसी अँगूठी है री तेरी ?" रूपाबहू ने पूछा, "आज ही पहनी है क्या ?"

दसिया चुप थी, और वह अधिक शक्ति से बहू का सिर दाबने लगी।

"क्या सिर तोड़ देगी ?"

दसिया ढीली पड़ गई और हँसने लगी; हँसी समाप्त हुई तो मुस्कान के साथ वह कहने लगी, "ठाकुरद्वारे के राजू पंडित बड़े भले आदमी हैं, बहूजी ! आपको बहुत पूछते हैं। आज उन्होंने मुझे परसाद दियो, जे कहा कि तेरी आँख अच्छी हो जाय ! अच्छो आदमी है—बहुत भलो !"

रूपाबहू उठ बैठी। दसिया को देखने लगी, जैसे वह उसे पहचान रही हो। दसिया बैठी मुस्करा रही थी।

"इधर तो आ !"

दसिया खड़ी हुई। रूपाबहू ने उसे सिर से पाँव तक देखा—आँचल, कमर की गाँठ, माथे का पल्ला और अँगूठी।

"आज दोपहरी में वहीं थी ?" रूपाबहू पलंग से नीचे आ खड़ी हुई। "सच-सच बोलना, वहीं थी न दोपहरी में ?"

वह पागलों जैसी मुस्करा रही थी।

रूपाबहू क्रोध से काँपने लगी। अपने को सँभालती हुई भी वह दसिया पर टूट पड़ी और बेतरह मारने लगी।

"निकल जा अभी मेरे घर से, निकल जा !"

और उसी आवेश में उसने घसीटकर उसे कमरे से बाहर निकाल दिया।

वहाँ सारा घर आ घिरा। पर यह सब क्या है, क्यों है, न इसे कोई पूछ पा रहा था, न समझ ही रहा था।

दसिया एक आँसू भी न रोई। वह जैसे सब पी गई और पीकर चुपचाप अपने घर चली गई।

सब चले गए, कई दिन बीत गए।

एक दिन दोपहर को रूपाबहू को स्वयं रोना आया। खूब रोई वह, और अपने सामने जैसे दसिया को गिरी देखने लगी, जो अब भी सिर झुकाए जैसे मुस्कराती चली जा रही थी। रूपाबहू उसे ठंडी दृष्टि से देखती रही, देखती रही। फिर अपने-आप से डर गई, भयाकुल हो आई।

पास ही बच्चा बैठा खेल रहा था, उसके पास गौरी बैठी थी। रूपाबहू का ध्यान बच्चे की ओर गया। वह एकटक न जाने क्या उस शिशु में देखने लगी।

उसी शाम से बस्ती में आर्यसमाज का सोलहवाँ वार्षिक अधिवेशन आरम्भ हुआ था। स्टेशन से एक वृहद् जलूस निकलकर कॉलेज और सिविल अस्पताल वाली चौड़ी सड़क से धीरे-धीरे बस्ती में प्रवेश कर रहा था।

कोई हाथी के हौदे में बैठा हारमोनियम पर गा रहा था—

अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे कैसे रिझाऊँ मैं।
तुही भगवान् पत्थर में, तुही भगवान् अच्छत में,
भला भगवान् को भगवान् पर कैसे चढ़ाऊँ मैं!
अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे कैसे रिझाऊँ मैं!

कोई सजे हुए बहल पर बैठा गा रहा था, कोई-कोई बैल-जुते

ठेलों पर अलाप रहे थे—ढोलक, हारमोनियम के संगीत पर—

सब वेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें, बल पायें चढ़ें नित ऊपर को,
अविरुद्ध रहें ऋजु पंथ गहें परिवार कहें वसुधा भर को।

खुले ताँगों, ट्रकों और सजी हुई लारियों पर जत्थे-के-जत्थे लोग बैठकर, खड़े होकर भाषण दे रहे थे, जय जयकार कर रहे थे और आर्य समाज के नियम के परचे, संगठन सूक्त के पैम्फलेट तथा 'वैदिक प्रार्थना', 'संध्या विनय', 'गृहस्थ जीवन रहस्य', 'यवन मत समीक्षा' नामक छोटी-छोटी पुस्तकें बस्ती की जनता में मुफ़्त बाँटी जा रही थीं।

पिछले वर्ष के अधिवेशन में जब ऐसा ही जुलूस म्युनिसिपल आफ़िस से परली तरफ़ बढ़ रहा था, तब मिर्ज़ाटोला और काज़ी मुहल्ला दोनों की मस्जिदों में मुसलमानों ने मिलकर कस-कसकर नारे लगाए थे—नाराये इस्लाम, अल्ला हो अकबर! कहते हैं कि अगर बीच में सशस्त्र पुलिस का जत्था बचाव के लिए न आ गया होता तो हिन्दू-मुसलिम दंगा हो जाता। लेकिन कुछ लोग कहते हैं, कि यह चाल स्वयं अंगरेज़ कलक्टर मिस्टर विलियम की थी, जो मुरादाबाद से दो दिन पहले यहाँ आ गया था और अपनी नई आइरिश लेडी को महज़ यह दिखा रहा था कि कितनी आसानी से यहाँ हिन्दू-मुसलमान जानवरों की तरह लड़ सकते हैं।

६

तब सूरज अपने पाँवों पर खड़ा होने लगा था, कुछ ही क़दम चलकर वह लड़खड़ा उठता था और पेट के बल गिर पड़ता था।

इसी गिरने-उठने की स्थिति में उससे उसकी दुसिया छिनी; और ऐसी छिनी कि नन्हा-सा सूरज न उसका पूरा नाम लेकर पुकार सकता था, न स्वयं अपने पाँव उसके घर ही जा सकता था। बस, वह रो

सकता था और इसलिए वह इधर अकारण रोता रहता था, जैसे यही उसके शिशु-मन का विद्रोह हो।

पैरों में जो लड़खड़ाहट थी, वही उसकी गति थी—वही, उतना ही था वह। और एक दिन अकेले में उसने जैसे संकल्प किया—गिरना तो आवश्यक है, क्योंकि उसे चलना है—अकेले, निरालम्ब। गिरना स्वयं एक गति है, बैठ जाना अगति है।

एक दिन इस सत्य की अनुभूति पा ली उसने, और वह गिरने का सहारा लेकर चल पड़ा। एक ही साँस में जैसे वह घर से बाहर चला आया और चौखट को पार करते-करते वह उसी शक्ति से गिरा, जिस उत्साह और बल से वह चला था। जैसे वह शक्ति गति से थकी न हो, बल्कि उत्साहित हो गई हो। वह गिरा, लेकिन उसी दम उठ गया, जैसे उठने ही के लिए गिरा हो। उठा, और खिलखिलाकर हँसने लगा, यद्यपि ऊपर के होंठ के भीतर से खून बह निकला था। पर जैसे वह अपने विजयोल्लास का पर्व हँसकर मना रहा था, कि 'देखो मैं अकेले घर से बाहर निकल आया—निरालम्ब! देखो, अब मैं चल पड़ा। इतनी दूर चला आया, और अब मैं चल सकता हूँ।'

चेतराम ने गद्दी से दौड़कर सूरज को उठा लिया, पर बच्चा अंक में न टिका; मचलकर फिर अपने पाँवों आ खड़ा हुआ, जैसे उसे उन पाँवों को श्रद्धा देनी थी, जो आत्म-साधन थे।

और अपनी इस गति को वह पूरे चार वर्ष तक पूजा देता रहा। भीतर से भागकर, छिपकर और प्रायः रोकर वह बाहर आता और पिताजी की छाया में अक्सर गद्दी पर बैठ जाता—खेलता, सोचता, अनायास घण्टों चुप रहता और थककर सो जाता।

एक दिन उसकी यह सीमित गति असीम हो गई। घर से वह बाहर निकला, सड़क पर आया। बहुत देर तक चारों ओर निहारता रहा, जैसे वह अनुमान पाने लगा कि 'ओह! संसार यह है—इतना

असीम ! इतना व्यापक !'

और न जाने किधर, किस ओर, कैसे, क्यों वह घूमने चल पड़ा ? और घूम-फिरकर वापस भी लौट आया। गद्दी पर पिताजी को रिपोर्ट भी दे दी कि वह घूमने गया था; उसके पैर के अंगूठे में ठेस लगकर घाव भी हो गया, लेकिन वह अब बहुत तेज़ दौड़ सकता है।

बस्ती के लोग शाम के छः बजे तक भोजन कर लेते थे और आठ बजते-बजते सब घर भीतर से बन्द हो जाते और सब सो जाते थे।

दिसम्बर के दिन थे, खूब ठण्ड पड़ रही थी। सूरज दादी के कमरे में लेटा था। उसे पिछले चार दिन से सूखी खाँसी आ रही थी। वह अपने बिस्तर पर लेटा जाग रहा था। उसके पैर के दोनों अंगूठों में दर्द था। चोट लगकर वे पक आए थे।

वह न जाने कब तक जागता रहा, खाँसी और अंगूठे के दर्द से उसे नींद नहीं आ रही थी। एकाएक उसे लगा कि बाहर बन्द दरवाज़े पर उसे कोई पुकार रहा है। वह चुपके से उठा, अंधेरे में टटोलता हुआ वह लँगड़ाते-लँगड़ाते बाहर तक चला आया। निःसंकोच उसने किवाड़ खोल दिए।

सामने निरी अकेली मधु बुआ खड़ी थी।

सूरज बुआ को पहचान न सका, पर विश्वास अवश्य पा गया। बुआ ने बढ़कर भूख से उसे अपने अंक में जकड़ लिया और फूट-फूटकर निःशब्द रोने लगी, जैसे छोटी बहन अपने बड़े भाई के पैरों से लिपटकर रोती है।

लेकिन दादी, सूरज और चेतराम के अलावा और कोई न जग सका। सूरज में असंख्य भाव उमड़ रहे थे, अनेक उत्साहों से वह भर रहा था। चाहता था कि वह अभी बुआ के सामने तेज़ी से दौड़कर दिखा दे कि अब वह दौड़कर पूरी बस्ती पार कर सकता है।

बुआ सूरज के संग ही सोई। उसीके छोटे-से लिहाफ़ में वह समा गई और अपने अङ्क में सूरज को बाँधने लगी।

सूरज के पास बहुत सी बातें कहने को थीं। उसे बुआ को यह भी दिखाना था कि अब वह कितना साफ़ बोल लेता है। लेकिन जब वह कुछ कहने लगता, उस पर खाँसी दौड़ आती और उसकी उमड़ती हुई वाणी उसी में घुट जाती।

बुआ ने उसी रात सूरज की खाँसी रोकने के लिए कई दवाइयाँ कीं—पाँच आने का लड्डू भी हनुमानजी को मान दिया, और रात-भर उसे अपने भूखे अङ्क में दबाये वह उसकी पीठ और कन्धे सहलाती रही। सूरज की गरम साँसें बुआ के कण्ठ से टकरा रही थीं; उसे लग रहा था जैसे उसमें कुछ बरस रहा हो, जैसे वह सम्पूर्ण हो रही हो, जैसे वह माँ बन गई हो और वह उसी क्षण अपने भावों में दौड़कर खुरजा पहुँच गई हो और अपने घर के आँगन में खड़ी होकर बरस रही हो—'देखो लोगो, मैं पुत्रवती हूँ! कौन कहता है मेरे अङ्क में दूज का चाँद नहीं है, यह देखो!'

न नींद सूरज को आ रही थी, न बुआ को। सूरज बुआ को जकड़कर अपने में बाँधे था, और जैसे वह इसलिए भी नहीं सो रहा था कि ऐसा न कहीं हो जाय कि बुआ चली जाय और सुबह उसे लगे कि रोज़ की भाँति यह भी एक स्वप्न ही था। सूरज उसके कण्ठ में मुँह गड़ाकर कह रहा था, "एक दसिया थी, माँ ने उसे बहुत मारा। वह मुझे छोड़कर चली गई। सीता दीदी मुझे डाँटती है, गौरी दीदी मुझसे लड़ती है। लेकिन वह मुझसे जीतती नहीं, मैं उसे पटक देता हूँ—उसके बाल पकड़कर। मैं पाँच साल का हो गया बुआ! मैं पढ़ने लगा हूँ। गौरी आठ साल की है, पर मैं उसकी किताब पढ़ लेता हूँ।...और वह जो सीता दीदी है न, उससे मैं डर जाता हूँ। बहुत दूध पिलाती है; कहती है—'दूध न पियेगा तो मैं तेरा सिर तोड़ दूँगी!'...बुआ सिर कैसे तोड़ा जाता है? सिर में निकलेगा क्या? क्या बिना तोड़े यह नहीं खुल सकता?"

बुआ ने उसे अपने कण्ठ से दबाकर चुप कर लिया, "भइया, अब

तुम चुपचाप सो जाओ, कल सुबह खूब बातें करेंगे।"

"अब मुझे छोड़कर नहीं जाओगी न?"

"नहीं जाऊँगी; जब तुम कहोगे तभी जाऊँगी।" बुआ के स्वर काँपकर जैसे गीले हो गए, "तुम मुझे अपने घर रखोगे न सूरज भइया! खाना खिलाओगे न?"

सूरज हाथ-पाँव मारकर उठ बैठा। कहने लगा, "अपनी थाली में खिलाऊँगा, हाँ नहीं तो, मैं तुझे अपनी थाली में खिलाऊँगा और तुम्हीं मुझे भी खिलाओगी, नहीं तो कभी नहीं खाऊँगा, हाँ!"

यह कहकर वह फिर बुआ से लिपटकर सो गया, जैसे इस संकल्प और प्रतिश्रुति के लिए उसे पहले उठना ही था।

तब तीन महीने बीत चुके थे। मधू बुआ का पति ईशरी घर से लड़ाई करके न जाने कहाँ भाग गया था। पूरे दो महीने बाद दिल्ली से उसने मधू के पास एक खत भेजा, जिसमें उसने ढाई सौ रुपये की आवश्यकता प्रकट की थी। मधू ने अपने गले की सीतारामी बेचकर पति के पास रुपये भेज दिए थे।

यह सब सास-ससुर से कितना भी छिपाकर किया गया, पर बात थी कि फूट ही गई। तब से घरवालों ने बुआ का वहाँ रहना हराम कर दिया। खाना-पानी उसके लिए शत्रु बना दिये गए।

तब से एक महीना बीत गया, पर ईशरी का कोई और पत्र न आया। मधू बुआ रास्ता देखती-देखती उदास हो गई। उन्हीं क्षणों में उसे सूरज की बेहद याद आती थी, लेकिन पिंजड़े से उड़कर अपने सूरज की शरण आना कोई साधारण बात न थी।

तड़के ही चेतराम ने चिट्ठी देकर अपने आदमी को खुरजा रवाना किया। आदमी वहाँ से तूफान लेकर लौटा। मधू के ससुर ने कहला भेजा था कि 'जिस बहू के पाँव अपने-आप मेरे घर से निकल गए, वह

मेरे घर में फिर पाँव नहीं रख सकती। जब पूत भाग गया तब ऐसी पतोहू से बेपतोहू भला!'

चेतराम ने मधू पर कुछ भी प्रकट न होने दिया, लेकिन मधू को जैसे सब-कुछ प्रकट था। वह पूरा चित्र देखने के उपरान्त ही वहाँ से चली थी। उस घर से उसे ऐसा कुछ भी नहीं देखने-सुनने को शेष रह गया था, जो उसे नई पीड़ा दे सके। घर-गृहस्थी की सारी पीड़ा जैसे उसमें कभी की पुंजीभूत हो चुकी थी। जहाँ इन्सान वस्तु समझ लिया जाय, वहाँ भावना की नई पीड़ा क्या?

इसलिए चेतराम और दादी खुरजा वालों के प्रति अनेक तरह से उत्तेजित हुए, लेकिन मधू बस मुस्कराकर रह गई, जैसे उसे अपने पर दया आ गई हो, जिसका कोई भी उत्तर उसके पास था ही नहीं।

सूरज दौड़ा-दौड़ा राजू पंडित के यहाँ गया। सन्तोष बैठी खाना खा रही थी। उसे देखते ही वह खाने से उठ गई और बिना हाथ-मुँह धोए वह सूरज के संग हो ली।

सूरज उसकी उँगली पकड़े मधू बुआ के पास आया और विश्वास से बोला, "देख, यह सन्तोष है।"

फिर सन्तोष को झकझोरते हुए आज्ञा दी, "नमस्ते कर ले, मेरी बुआ हैं—मधू बुआ। नहीं करेगी नमस्ते?"

सन्तोष जैसे सहम गई, उसने सूरज की ओर देखते हुए बुआ के सामने अपने हाथ जोड़ दिए, "नमस्ते!"

सूरज हँस पड़ा, सन्तोष लजा गई और सूरज के कन्धे से सिमट गई।

बुआ की आँखें भर आईं।

'सूरज और सन्तोष, दोनों को ये नाम मैंने दिये हैं,' मधू बुआ सोचने लगी—अत्यन्त अमृतमय-सुखद स्मृति को बाँधती हुई, 'ये नाम मैंने दिये हैं—मैंने दिये हैं—ये मेरे हैं—ये मेरे भाव हैं, सबसे पवित्र, सबसे निरपेक्ष!'

फिर वह बुआ से भाव बन गई, भाव से मूर्ति, भाव की मूर्ति, भाव की माँ !

उसी समय न जाने कहाँ से रूपावहू दिखाई पड़ी। चुपचाप सामने आ खड़ी हुई।

दोनों बच्चे आकाश से जैसे ज़मीन पर उतर आए। सूरज मधू बुआ की उँगली पकड़े खड़ा भी रहा, पर सन्तोष वहाँ से भागी और सीधी अपने घर चली आई।

कुछ ही क्षण में वह फिर सूरज के पास आई, उसके संग बुआ के पास गई। उसने सूरज के कान में कुछ कहा, और सूरज बुआ से बोला, "तुम्हें सन्तोष की माँ बुला रही है।"

बात रूपावहू के कान में पड़ी, वह उफन आई, "कोई ज़रूरत नहीं है। जिसे मिलना हो, वह खुद आये।"

"लेकिन सन्तोष की माँ यहाँ तक आ सकेगी ? सुना है अब तो वह खाट से नीचे नहीं उतर पाती," मधू बुआ ने कहा। "चलो भाभी देख आयें, तुम भी चलो न, कभी किसीके यहाँ आती-जाती नहीं।"

रूपावहू चुप खड़ी रह गई।

मधू बुआ ने फिर कहा, "पहले ठाकुरद्वारे तक भी जाती थी अब तो ...!"

रूपावहू सामने से हट गई।

उस दिन तो मधू बुआ सन्तोष की माँ शारदा के घर न जा सकी। दूसरे दिन रूपावहू ने स्वयं शारदा को देख आने के लिए कहा।

शारदा के सामने पहुँचकर मधू बुआ को लगा, जैसे वह किसी व्यक्ति के स्थान पर उसकी छाया-मात्र देख रही है—वह भी कंकाल की छाया। लेकिन वह कंकाल स्त्री है, माँ है और उसकी छाया तो बस, समूचे स्त्रीत्व की छाया है।

प्रातःकाल का समय था। राजू पंडित ठाकुरद्वारे में थे। दादी रसोई की तैयारी में लगी थी।

आँगन में सूरज और सन्तोष बैठे खेल रहे थे; गीली मिट्टी का कोई खिलौना बना रहे थे।

मधू शारदा के पास बैठी, उसे अपलक ताक रही थी—बल्कि जैसे वह शारदा के पीछे संसार की उन सारी सुहागन स्त्रियों को देख रही थी, जो समझती हैं, सिद्धि पाती हैं कि वे किसीकी परिणीता हैं, पर उन्हें आजीवन विश्वास नहीं मिल पाता, वह मान नहीं मिल पाता, जिसकी भूख लेकर वे इस संसार में आती हैं।

शारदा ने अपनी दोनों हथेलियों में मधू के दायें हाथ को बाँध रखा था। उसे अजीब-सा सुख मिल रहा था—ताज़े रक्त और स्पंदन-शील त्वचा के बीच मांसलता के स्पर्श का सुख।

और वह बिना रोये हुए भी रोती जा रही थी, जैसे वह मिट्टी अब भी गीली है—इतनी गीली, जिससे कोई मूर्ति बन सकती है।

शारदा ने बहुत धीमे स्वर में कहा, "मधू बेटी, एक छोटी-सी इच्छा है मेरी। आलू की खूब गरम, मसालेदार सब्ज़ी हो, हींग पड़ी हुई, बहुत बढ़िया उरद की दाल हो और गरम-गरम फुलके हों।"

शारदा के स्वर भीगकर फँस गए। वह मुँह में आये हुए भाव-रस को एक घूँट बनाने लगी।

"मैं आज ही तुम्हें खिलाऊँगी, चाची!"

यह कहकर वह वहाँ से उठी। चेतराम से कहकर चुपचाप उसने बाहर-ही-बाहर सब चीज़ें जुटा लीं, और शारदा के ही कमरे में वह व्यंजन भी तैयार हुआ।

पता नहीं, शारदा कब की, कितनी भूखी थी। पूरे स्वस्थ व्यक्ति जितना उसने भोजन किया और तृप्त होकर बोली, "अब मैं मर जाना चाहती हूँ। दूसरी भूख मुझे न लगने पाए, उससे पहले ही मैं मर जाना चाहती हूँ। पर पता नहीं क्यों, जो जितना ही मरना चाहता है, उसे उतना ही जीना पड़ता है; जैसे उसे उस इच्छा के अपराध का दण्ड भोगना होता है...क्यों मधू बेटी, ठीक नहीं कह रही हूँ मैं?"

"ठीक कह रही हो।"

अन्न की गरमी से शारदा की पलकें अपने-आप भारी होकर झुकने लगीं, झुककर मुँद गईं और बात-ही-बात में वह बेख़बर सो गई।

तब मधू ने उसके रूखे बालों में तेल डाला, कंघी की और उज्ज्वल सीमंत में सिंदूर भरकर उसे रक्तिम कर दिया।

सूरज और सन्तोष गीली मिट्टी से खेल चुके थे।

मधू ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, "सन्तोष, तू यहीं अपनी माँ के पास रहा करना—यहाँ से हटना नहीं। माँ के ऊपर मक्खियाँ न बैठने पायें, माँ जिस चीज़ के लिए जब आवाज़ दे, तुम सदा खड़ी मिलना, हाँ……। माँ बीमार है तुम्हारी—माँ नहीं रहेगी तब कहाँ पाओगी?"

सन्तोष माँ के सिरहाने खड़ी रही—धर्म की भाँति अटल, सुनिश्चित। सूरज भी वहीं उसके साथ खड़ा रहना चाहता था, पर मधू ने आग्रह से उसे अपने साथ लिया और घर चली।

रास्ते में सूरज ने पूछा, "बुआ, सन्तोष की माँ नहीं रहेगी, कहाँ चली जायगी?"

"मर जायगी," बुआ के मुँह से एकाएक निकल गया, जिस पर वह पछताने लगी।

सूरज ने तुरन्त मृत्यु का अनुमान लगाया, "जैसे हमारे आँगन में वह चूहा मर गया था।"

"हाँ, वैसे ही।"

"मरकर कहाँ चले जाते हैं?"

"बस, खो जाते हैं," बुआ ने बात समाप्त करनी चाही।

सूरज बुआ की बातों को अपने-आपमें दुहराने लगा, "मर जाते हैं, बस खो जाते हैं। संतोष की माँ खो जायगी, संतोष की माँ।" एकाएक सूरज रुक गया और अपने खिंचे हुए भावों से बोला, "रूपावहू भी मर

जायगी, वह भी खो जायगी।"

मधू के कान खड़े हो गए। उसने ऐसी दृष्टि से सूरज को देखा कि वह समझकर सहम-सा गया कि उससे कोई बहुत बड़ी ग़लती हो गई। वह चुप हो गया और घर में पहुँचकर भी चुप रहा, लेकिन अपने-आप में वह गुनने लगा—सन्तोष की माँ उसे प्यार नहीं करती, न वह उसे खिलाती है, न टहलाने ले जाती है, न उसके लिए खिलौने और मिठाई मँगाती है, और सन्तोष की माँ मर जायगी। लेकिन जब सन्तोष की माँ मर जायगी तब रूपाबहू भी मर जायगी। वह भी तो मुझे प्यार नहीं करती। और दिन में कई बार वह सन्तोष के यहाँ गया। हर बार उसने पाया, जैसे बुआ ने कह रखा था, उसी तरह सन्तोष अपनी माँ के सिरहाने खड़ी थी।

तीसरे दिन शाम को बिना किसी सूचना के दिल्ली से गोरेमल आ पहुँचा। जहाँ जो हवा बह रही थी, वह वहीं-की-वहीं रुक गई। सारी दुकान खिंच-तन गई। चेतराम ने अपने कान खड़े कर लिए।

इस बार गोरेमल अपने साथ कुछ विशेष काग़ज़-पत्तर लाया था। अख़बार की पूरी एक गड्डी अपने संग बाँधे था। भोजन के उपरान्त जब वह दुकान वाले भीतरी कमरे में जा लेटा तो उसने अपने चारों ओर अख़बारों को जैसे बिखेर लिया और उनमें लाल पेंसिल से जगह-जगह न जाने क्या-क्या कैसा निशान बनाने लगा।

पिताजी से भेंट करने के लिए तश्तरी में दो दाने इलायची लिये भीतर से रूपाबहू निकली।

सिर गड़ाये ही गोरेमल ने बेटी को आशीर्वाद भी दिया और इलायची भी ले ली, पर उसके मन को इतनी भी फ़ुरसत न थी कि वह अपनी बेटी को देखे, उससे कुशल-समाचार दे-ले।

बड़ी देर तक रूपाबहू पिताजी को देखती खड़ी रही। जब वह हार-

कर लौटने को हुई तब एक क्षण के लिए गोरेमल ने सिर उठाया, "रूपा, तेरी माँ ठीक से है। और तेरा मुन्ना कहाँ है?"

रूपाबहू चुप खड़ी थी।

"सूरज उसका नाम रखा है, बहुत अच्छा नाम है—गोरेमल की तरह सूरजमल!" गोरेमल बहुत प्रसन्न था, "उसे सदा अपने पास रखो; अब तो वह कुछ पढ़ने-लिखने भी लगा होगा, क्यों?"

रूपाबहू ने जैसे कुछ न सुना। बोली, "पिताजी, इस बार मैं भी आपके संग चलूँगी। हर बार बहाना बना देते हैं आप। इस बार मैं माँ को देखे बिना नहीं मानूँगी।"

गोरेमल सिर गड़ाकर अपने काग़ज़ों में उलझ गया। रूपाबहू कुछ देर खड़ी रही, फिर धीरे से भीतर चली गई।

पूरे दो घण्टों में जब गोरेमल ने सब काग़ज़ों को देख लिया, हिसाब-किताब सब दुरुस्त कर लिया, तब उसने चेतराम को अपने पास बुलाया और उसके सामने लाल निशान लगे अख़बारों को बिखेर दिया। चेतराम ने सारे अख़बारों को उलट-पुलट लिया, पर वह चुपचाप सिर गड़ाये ही रहा।

गोरेमल की आवाज़ गूँजी, "क्यों, कुछ समझ नहीं सके न?... तभी तो कहता हूँ, तुम लोग क्या व्यापार करोगे! अरे, ज़माने की नब्ज़ पकड़ो। हर आदमी को सूँघकर चलो, तब व्यापार चलता है, गद्दी पर बैठने से कुछ नहीं होता। हुँ, गद्दी पर तो कोई भी बैठ सकता है।"

चेतराम सिकुड़कर भीगी बिल्ली बन गया।

गोरेमल कहता जा रहा था, "अरे चेतराम, हाथ को पारस पत्थर जैसा बना लो; जिसे छुओ वही सोना हो जाय। सोना और संसार! समझे, क्या मतलब? अर्थात् जिसके पास सोना है उसीका संसार है। लेकिन ख़बरदार चेतराम, जो सोयेगा सो सोना नहीं पायेगा, जो जागेगा, नींद में भी जो जागेगा, सोना उसीका होगा।"

यह कहकर गोरेमल ने अखबारों को अपनी ओर समेट लिया और रहस्य की वाणी में बोला, "अखबार में जो यह लाल-लाल निशानात लगे हैं, ये सोने की खानें हैं। नहीं समझे ? क्यों समझोगे ? नालायक... ।" कुछ क्षण चुप रहने के बाद गोरेमल ने अपनी आवाज़ और धीमी कर ली, "सुनो, जागो चेतराम ! कुछ ही साल के भीतर निश्चय ही संसार में कोई महायुद्ध होगा और यह महायुद्ध अंग्रेज़ लड़ेंगे और लड़वायेंगे। इस देश में भी कोई क्रान्ति होगी। चाहे हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई हो, चाहे आपस में सबकी लड़ाई हो। देखो न चेतराम, कैसी-कैसी पार्टियाँ बन रही हैं, जैसे हर आदमी एक पार्टी है। पार्टी के भीतर पार्टी और हर आदमी के भीतर द्वेष, कलह एवं असन्तोष। इस सबका असर हिन्दुस्तान के व्यापार पर पड़ेगा चेतराम, ख़ासकर गल्ले के बाज़ार पर!" यह कहकर गोरेमल ने अख़बारों को बिखेर दिया, "सूँघो इन अख़बारों को, नब्ज़ पकड़ो भविष्य की और उसके इशारों को समझकर काम करना शुरू कर दो। देखो न, ये लाल-लाल निशान देखो ! यूरोप को तो छोड़ो ही, अरे अपने मुल्क की नब्ज़ देखो; यह कांग्रेस, उसमें यह गरम दल, यह नरम दल; गरम दल में भी यह क्रान्तिकारी, यह फ़ारवर्ड ब्लाक। और यह हिन्दू महासभा, यह हरिजन सभा, यह डिप्रेस्ड क्लास और इस सबका बाप ज़मींदार असोसिएशन और प्रिंस कमेटी। एक ओर आज़ादी की लड़ाई, सत्याग्रह, दूसरी ओर इलेक्शन; और अंग्रेज़ों का यह सबसे भयानक हथियार मुस्लिम लीग एवं जिन्ना साहब। ये सब लड़ाई और तबाही के आसार हैं। और यही 'बिज़नस' का नुक्ता है।"

चेतराम ने सिर ऊपर उठाया। चेहरे से वह अब भी घबराया ही दीख रहा था, पर उसके मुख पर आभा छिटक रही थी, जैसे वह भीतर-ही-भीतर मुस्करा रहा हो, कोई अद्‌भुत रहस्य पाकर उसे मन के आह्लाद में छिपा रहा हो।

पूरे चार दिन रहकर गोरेमल दिल्ली लौट गया। रूपावहू से कह

गया कि तुम किसीके संग दिल्ली चली आना। पिता के जाते ही रूपा-बहू ने चेतराम के नाकों दम कर दिया।

चेतराम अपने-आपमें बेहद परेशान हो रहा था। उसे याद था, ब्याह के डेढ़ वर्ष बाद एक बार रूपाबहू मायके गई थी। तब वह भी तीसरे दिन उसके पीछे चला गया था और संग लेकर लौटा था। उसके बाद दो बार और वह उससे दूर हुई थी, तब चेतराम उसकी याद में छिप-छिपकर रोया करता था। बहुत दिन के बाद इस बार फिर रूपाबहू दिल्ली जाने के लिए हठ कर रही थी और चेतराम घबरा रहा था।

लेकिन किसी भी मूल्य पर रूपाबहू की बात तो पूरी होनी ही थी। मोह का मारा चेतराम स्वयं उसे पहुँचाने दिल्ली गया, यद्यपि चेतराम को देखकर गोरेमल बहुत नाराज़ हुआ, उसे बहुत बुरा-भला कहा।

दूसरे ही दिन चेतराम को लौटना पड़ा। उस रात को वह रूपा-बहू के सामने रोने लगा और रास्ते-भर उसकी आँखें रूपाबहू की याद लिये डबडबाई रहीं। किसीसे एक शब्द तक उससे न बोला गया; न कुछ खाया, न पिया; बस बस्ती लौटकर वह एकदम गद्दी पर सो गया।

रूपाबहू के संग उसका सूरज बेटा न जा सका; वह गया ही नहीं। वह कहता था, 'मैं बुआ के संग रेलगाड़ी पर जाऊँगा।' और रूपाबहू अपने संग केवल छोटी लड़की गोरी को ले गई।

दस-बारह दिन के बाद।

एक दिन सूरज बुआ के हाथ से रात का खाना खा रहा था। इधर-उधर की बातें करते-करते वह सहसा बीच ही में यह पूछ बैठा, "बुआ, बहू खो गई क्या?"

बुआ चुप थी।

सूरज आगे बोला, "मर गई बहू?"

बुआ का मुख आरक्त हो आया। उसने जूठे हाथ से सूरज के

गाल पर एक चपत दे दी और भय से इधर-उधर देखने लगी।

सूरज रोकर वहीं लोट गया। लोटा ही नहीं, वरन् अपने सिर को ज़मीन पर पटकने लगा।

बुआ ने बहुत समझाया, बड़ी मिन्नतें कीं, लेकिन सूरज ऐसा बिगड़ खड़ा हुआ था कि वह किसी तरह काबू में आता ही न था; बस, रोता ही जा रहा था जैसे वही उसके मन का सत्य हो, वही उसका सहज विद्रोह हो। बुआ संग लेकर सोईं और उसे चुप करा, सुलाने के लिए एक कहानी कहने लगी, "भइया, मेरे राजा भइया! सुन रहा है न? दो चिड़ियाँ थीं—और एक राजा था। राजा के घर के सामने उन चिड़ियों को रुई का एक गत्ता मिला। उसे लेकर वे धुनियाँ के पास गईं। धुनियाँ ने रुई धुन दी और उसमें से अपनी मज़दूरी का आधा हिस्सा ले लिया। फिर वे जुलाहे के पास गईं। जुलाहे ने कपड़ा बुन दिया और आधा ले लिया। कपड़ा लेकर वे दरजी के पास गईं। दरजी ने दो टोपियाँ सी दीं। एक टोपी दरजी ने ले ली और दूसरी टोपी चिड़िया ने अपने चिड़े के सिर पर रख दी। दोनों ने राजमहल पर बैठकर गाना शुरू किया, 'मेरी टोपी कितनी अच्छी, ऐसी टोपी राजा के पास नहीं।' राजा ने अपने सिपाहियों को हुक्म देकर चिड़े से उसकी टोपी छिनवा ली। तब दोनों ने कहना शुरू किया, 'राजा का धन घट गया, राजा ग़रीब है, उसने हमारी टोपी छीन ली।' तब राजा ने उनकी टोपी लौटा दी, और फिर वे गाने लगे 'हाय-हाय, राजा डर गया!'" मधू बुआ ने रुककर देखा, सूरज सो गया है। आँखें ढप गई हैं, लेकिन जिस बिन्दु पर पलकें रुकी हैं, वहाँ आँसू की एक पतली-सी रेखा है।

छेदामल नगर हिन्दू महासभा का सेक्रेटरी है। बड़ी कोठी का सैयांमल गऊशाला कमेटी का प्रेसीडेण्ट है। घीसिरा मुहल्ला का चौधरी

रामनाथ नगर कांग्रेस कमेटी का जॉइण्ट सेक्रेटरी है। बड़े दरवाज़ा का गुलज़ारीलाल नगर व्यापारमण्डल का वाइस-प्रेसीडेण्ट है। ऊँची हवेली के साहू गुरुचरनलाल म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हैं। चीतरमल कच्चा आढ़तिया का छोटा भाई ,गीदरमल म्युनिसिपैलिटी में सेक्रेटरी है। शम्भू दलाल का भतीजा कांग्रेस इलेक्शन कमेटी का कन्वीनर है। सरजू सुनार आर्यकन्या पाठशाला का ऑनरेरी सेक्रेटरी है। घुलाराम द्वादशश्रेणी कॉलेज मैनेजिंग कमेटी में मेम्बर है। वृन्दावन बिहारीलाल भार्गव प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का जॉइण्ट सेक्रेटरी है।

लेकिन चेतराम क्या है?

कुछ नहीं, बेचारा कांग्रेस का चार आने वाला मेम्बर भी नहीं हो सका है। दिन-रात राहु-केतु की तरह गोरेमल जो उसके चारों ओर रहता है।

गोरेमल कहता है, बिज़नसमैन का इन पार्टियों और संस्थाओं से क्या मतलब! बस दूर से तमाशा देखो, रामझरोखे बैठके—रामझरोखे में इसलिए कि कोई साई का लाल भाँप भी न सके कि चेतराम भी कहीं से कुछ देख रहा है!

लेकिन चेतराम के मन की यह उत्कट इच्छा रही है कि वह कांग्रेस पार्टी में रहे—कुछ नहीं तो मेम्बर तो हो ही जाय। उसने अपने 'सुखसागर' ग्रन्थ में गांधी, जवाहरलाल, सुभाषचन्द्र, मदनमोहन मालवीय, गोखले, पटेल और तिलक के चित्रों को बड़ी श्रद्धा से सँजो रखा है और इन सबको वह भगवान् के अवतार मानता है।

उस रात हनुमान वाटिका में नगर कांग्रेस सभा के तत्त्वावधान में एक विराट् सभा हो रही थी। उसमें रामपुर, बदायूँ और अलीगढ़ से वे तीन सत्याग्रही आये थे, जो क्रमशः एक जलियाँवाला बाग हत्या-कांड का घायल सत्याग्रही था, दूसरा खेड़ा-अहमदाबाद का सत्याग्रही था, और तीसरा वह था जो गांधीजी के संग मोतिहारी (चम्पारन) गया था और अमृतसर कांग्रेस में अंग्रेज़ों के फौजी राज के ख़िलाफ़

बोल चुका था।

गद्दी पर रामचन्दर मुनीम को बैठाकर चेतराम उस रात हनुमान वाटिका की ओर जाने लगा। जैसे ही वह बड़ा दरवाज़ा पार कर आरोग्य चिकित्सालय के पास पहुँचा, उसके कानों में कांग्रेस वालंटियर्स के समवेत स्वर गूँज उठे—

सैय्याद ने हमारे चुन-चुन के फूल तोड़े
उजड़े हुए गुलशन में तुम गुल खिलाते जाना
कुछ जेल में पड़े हैं हम क़ब्र में गड़े हैं
उजड़ी हुई क़ब्रों पर दीपक जलाते जाना!

भावावेश में चेतराम की बाँहें फड़कने लगीं। वह आगे का रास्ता दौड़कर तय करने लगा। वह जल्दी-से-जल्दी उस विराट् सभा में पहुँचकर सबके स्वर में अपना स्वर मिलाना चाह रहा था। दौड़कर हाँफता हुआ चेतराम अपना दायाँ हाथ नचा-नचाकर अपने-आपमें कहने लगा—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है॥

७

कृपाबहू को दिल्ली गये चार महीने से ऊपर हो गए। तब से दो बार चेतराम उसे विदा करा लाने के लिए गया, पर वह असफल रहा। इधर वह तीन चिट्ठियाँ भी डाल चुका है, लेकिन किसीका जवाब ही न आया।

कृपाबहू ने दिल्ली में चेतराम के तीव्र आग्रह का जवाब देते हुए उस बार कहा था, 'क्या पागल बने फिर रहे हो मेरे लिए? झूठे कहीं के! वहाँ रखकर क्या कर लेते हो? चौबीस घण्टे तो तुम्हें अपने

व्यापार से फुरसत नहीं मिलती। सदा व्यापार, खाते समय भी इसीकी चिन्ता, सोते समय भी उसीके स्वप्न! हम जैसे लोगों को औरत नहीं चाहिए, अनाज के बोरे चाहिएँ।···औरत बहुत-कुछ चाहती है, बहुत बड़ा कलेजा होना चाहिए औरत रखने के लिए—बहुत कुछ चाहती है, तभी वह बहुत कुछ देती है, लेने वाला भी तो हो कोई!'

चेतराम रूपाबहू की इस बात को पूरी तरह से समझ न सका था। उससे कुछ बोला भी न गया था। इस बात को वह गुन भी न सका; पता नहीं, रूपाबहू के कहने का क्या मतलब था! ऊँह, छोड़ो इसे, बड़े घर की बेटी है मेरी बहू, कुछ बड़ी ही बात सोचती-कहती होगी। बड़ी अच्छी, बड़ी सुन्दर!

चेतराम अपनी गद्दी पर बैठा कुछ और भी सुन्दर अपनी याद में बाँधने जा रहा था, तभी सामने से राजू पण्डित की आवाज़ आई, "आयुष्मान् लाला, आयुष्मान्! सब आनन्द-मंगल! जय हो···जय हो!" यह कहते-कहते राजू पण्डित गद्दी पर बैठ गए और परम भाव से कहने लगे, "बहुत दिन हो गए सेठजी, रूपाबहू मायके से न आई! लक्ष्मी इतने दिन तक घर से बाहर रहे, ऐसा हमारो शास्त्र नहीं कहता लाला! लक्ष्मी टेंट में, या लपेट में, बस!"

राजू पण्डित हँस आए और उसी हास्य में लाला चेतराम को भी बहना पड़ा। वैसे चेतराम का मन अब और भर गया। राजू पण्डित ने कहा, "मैं स्वयं दिल्ली जा सकता हूँ, और रूपाबहू को बात-की-बात में अपने संग लिवा ला सकता हूँ; औरत तो बस, तुम जानो हो लाला, बात और भाव की भूखी होती है और ठाकुरजी की कृपा से···।"

राजू पण्डित एकाएक चुप हो गए, क्योंकि चेतराम जैसे कुछ सोचने लगा था। एकाएक चेतराम बोला, "पुजारीजी, मन कहता है कभी कि सब त्याग दूँ और गांधीजी के संग किसी सत्याग्रह में प्राण दे दूँ। कभी-कभी मन ऊब जाता है इस जीवन से। पुजारीजी, यह

बात अपने ही तक रखियेगा, गोरेमल बड़ा झक्की आदमी है।"

पुजारी ने कहा, "राम-राम कहो जी लाला! मुझे भी कांग्रेस पसन्द है, लेकिन मुझे गांधीजी पसन्द नहीं आते—हिन्दू-हरिजन-यवन-पारसी-डोम-धरकार सब एक समान! कितनी गन्दी बात है यह! इस अर्थ में तो अपनी हिन्दू सभा उत्तम है।"

सहसा इसी बीच फोन आ गया और चेतराम उसमें फँस गया।

राजू पण्डित के पास एक अद्भुत शक्ति थी। वह थी उनकी जिह्वा की सरस्वती, जैसे अमृत बरसता रहता हो उससे। कुछ भी हो, कोई और कैसा भी क्यों न हो, राजू पण्डित की मधुर वाणी उसे पिघलाकर छोड़ती थी। और बोलते-बोलते जब एकाएक बीच में रुककर, अपने चन्दन-भरे माथे पर सिकुड़न पैदा कर, आँखों की दोनों पुतलियों को ऊपर चढ़ाने लगते, तो ऐसा लगता जैसे जोगी की समाधि लँगने जा रही है।

चेतराम बुत-सा बैठा रहा। राजू पण्डित की बातों से बचने के लिए वह एकाएक गद्दी से उठ खड़ा हुआ और सीधे घर में चला गया।

उस दिन दोपहर के समय सूरज सड़क पर खेलता-खेलता न जाने किधर बढ़ गया और किसीको उस समय ध्यान भी न रहा। दो घण्टे बाद जब सन्तोष अपने घर से आकर बुआ के सामने सूलज-सूलज की रट लगाने लगी, तो लोगों को सुधि हुई कि सूरज कहीं ग़ायब हो गया है।

परेशान बुआ स्वयं ढूँढ़ने निकली। दुकान के सारे नौकर दौड़े। चेतराम बेहाल होने लगा।

लेकिन सूरज कहीं बहुत दूर नहीं गया था। सड़क से बढ़ता हुआ वह छेदामल के अहाते में चला गया था। उस अहाते में अनाज-गुड़ से भरी हुई कम-से-कम पचास गाड़ियाँ खड़ी थीं और पचास से भी ज़्यादा आवारा कुत्तों की वहाँ भीड़ लगी थी। ये कुत्ते रोज़ इसी

आशा में वहाँ बैठे रहते कि शाम होगी और दयालु छेदामल उन्हें बाजरे की रोटियाँ खिलायेगा। बैलगाड़ियों, किसानों, आढ़तियों, दलालों, साहूकारों और आवारा कुत्तों के अतिरिक्त उस अहाते में तीस-चालीस लड़कों-बच्चों की भी टोली रहती थी। बच्चों में जितनी लड़कियाँ थीं वे दौड़-धूप, छीन-झपटकर बैलगाड़ियों के नीचे से गोबर इकट्ठा करती थीं और जो लड़के थे, वे ज़मीन से एक-एक दाना अनाज बीनते थे, पैसे और गिट्टी से 'गुप्प डाल' के खेल खेलते थे और आपस में गालियाँ दे-देकर खूब लड़ाई करते थे। गालियों में विशेषकर बहनों की गालियाँ देते थे, क्योंकि उन सबकी बहनें सिर पर गोबर उठाए वहीं, उनके इर्द-गिर्द खड़ी मिलती थीं।

सूरज चुपचाप अहाते में घुसकर बच्चों की टोली के पास आ खड़ा हुआ और अतुल जिज्ञासा से उन्हें अपलक देखने लगा; चुपचाप एक निरपेक्ष दर्शक की भाँति उनके जीवनपूर्ण खेल, लड़ाई, मार-पीट और उनकी गालियाँ देखता-सुनता रहा।

एकाएक कुछ लड़कों की दृष्टि सूरज पर पड़ी। दो सयाने लड़के उसकी ओर बढ़े। तब सूरज वहाँ से निकल भागा और इतने डर से भागा कि चार ही क़दम पर गोबर से फिसलकर मुँह के बल गिर पड़ा और उसी स्थिति में रो पड़ा। कुछ लड़के सूरज को घेरकर खड़े हो गए और हँस-हँसकर तालियाँ पीटने लगे। दो लड़के उसे उठाने लगे, पर वह उठता ही न था, जैसे वही उसका आत्म-सम्मान था। तब वही लड़के फिर गालियों में बातें करने लगे।

लड़कों के सरदार की आवाज़ उठी, "खूब गाली दो, तब यह अपने-आप उठकर भागेगा—कछुआ कहीं का।"

उसी समय चेतराम के दलाल शम्भू की दृष्टि वहाँ गई। उसने सूरज को उठा अपने कन्धे से लगा लिया। रास्ते में सूरज शम्भू दलाल के कन्धों पर क्रोध से छटपटाता रहा और सम्पूर्ण शक्ति और साधन से वह अपनी उस स्थिति से जैसे विद्रोह करता गया।

रात को जब सब-कुछ शान्त हुआ और मधू बुआ उसे सुलाने चली, तब सूरज ने कहा, "बुआ, मैं गाली दूँ तुम्हें?" बुआ को कुछ न सूझा। वह हैरान रह गई। उसने सुना, सूरज आगे कह रहा है, "बुआ, आज मैंने गाली सीखी है, बहुत-सी गाली, दूँ?" बुआ ने उसके मुख पर हाथ रख दिया, "बहुत बुरी चीज़! जो मुँह से गाली निकालता है, उसकी जीभ कट जाती है और सारे मुँह में फोड़े निकल आते हैं; बड़ी गन्दी चीज़ है।"

सूरज चुप रह गया, जैसे वह कुछ गुनने लगा, किसी सत्य को अनुमान में बाँधने लगा। सहज ढंग से बोला, "तो बुआ, उन सब लड़कों की जीभ कट गई है? सबके मुँह में फोड़े निकल आए हैं?"

"और क्या? तभी तो उनके पास कोई नहीं जाता।"

सूरज चुप रह गया।

दो दिन बाद सूरज फिर सड़क पर टहलता हुआ छेदामल के अहाते की ओर जाने लगा, लेकिन उस दिन दुकान के आदमियों के हाथ पकड़ा गया। इस तरह सूरज के टहलने-घूमने पर निगाह रखी जाने लगी, और वह भी दुकान के नौकरों की नज़र!

तब सूरज छिपना सीखने लगा। नज़र से बचकर भटकने के लिए सोच बैठा।

और एक दिन दोपहर से भी पहले वह छेदामल के अहाते में जा पहुँचा। लड़कों की टोली में उसने एक विशेष लड़के को देखा। वह लड़का सूरज से दो-ढाई साल बड़ा था। उसका सारा पहनावा बड़े सुन्दर ढंग का था। सब बच्चे उसे रम्मन के नाम से पुकार रहे थे। और वह रम्मन अपने दायें हाथ में एक छोटी-सी छड़ी लिये हँस-हँस, दौड़-दौड़कर उन सारे बच्चों को मार रहा था। आज का जैसे वही खेल था। सूरज एक बैलगाड़ी के पीछे खड़ा हुआ यह सारा खेल मन्त्र-मुग्ध होकर देख रहा था। वह खेल था, लेकिन कुछ लड़के कभी-कभी रम्मन की छड़ी के प्रहार से रो क्यों देते हैं? और जब वे

रोते हैं, तब रम्मन उन्हें कैसी-कैसी गालियाँ देता है। तो वह रम्मन भी गाली देता है और उसे जवाब देने वाला उन लड़कों में कोई नहीं है। बल्कि वे लड़के आपस में न जाने क्यों गाली बक रहे हैं। उन सबकी ज़बान कट गई होगी, सबके मुँह में फोड़े निकले होंगे! सूरज खड़ा-खड़ा उन तीनों लड़कों को देख रहा था, जिन्होंने उस दिन उसे मुँह के बल गिराया था और उसे गालियाँ दी थीं।

सूरज धीरे-धीरे बढ़कर बच्चों के सामने आ खड़ा हुआ। वे दो पुराने लड़के और उनका सरदार—ये तीन उसकी ओर संकेत करके बड़ी ज़ोर से हँसे।

रम्मन ने सूरज को बहुत ध्यान से देखा; फिर हँसते हुए लड़कों के सरदार की पीठ पर एक छड़ी मारकर सबको चुप करा दिया। हाथ से संकेत करके वह सूरज को अपने पास बुलाने लगा और सहमा हुआ सूरज न जाने किस विश्वास पर रम्मन के पास चला आया।

लड़कों के सरदार का नाम जगनू था। वह रंग का बेहद काला, पर शरीर का उतना ही स्वस्थ था। सब लड़कों में बड़ा लगता था।

जगनू तपाक से बोला, "रम्मन भइया, यह चौड़ी सड़क वाले लाला चेतराम का लौंडा है।" फिर सूरज से बोला, "क्यों बे, तेरो नाम क्या है?"

"सूरज," रम्मन की ओर देखकर उसने उत्तर दिया।

"खेलोगे हमारे संग?" रम्मन ने पूछा और सूरज के कोट की दोनों थैलियों को टटोलने लगा। उसमें मधू बुआ के रखे हुए काजू और किसमिस के दाने थे। सूरज बड़े उत्साह से स्वयं दोनों हाथों से सारे मेवे निकाल-निकालकर रम्मन की हथेलियों पर रखने लगा।

थोड़ा-सा मेवा जगनू को मिला और शेष रम्मन खा गया। सूरज खड़ा-खड़ा जगनू और रम्मन के बहुत तेज़ी से चलते हुए मुखों को निहारता रहा, उनकी लम्बी जीभें देखता रहा। और उसने यह भी देख लिया कि उनमें से किसीके भी मुँह में कहीं कोई फोड़ा-फुंसी नहीं

है। और तब सूरज उस टोली का दोस्त बना लिया गया।

उस दिन जब वह अपने घर की ओर चला, तो उसमें एक नया उत्साह और एक नई उमंग बरस रही थी।

बिना किसी की आँख से छिपे, बिना अपने को चुराये हुए वह बड़ी मस्ती से दुकान पर होता हुआ सीधे घर चला गया और मधु बुआ को जैसे डाँटकर बोला, "तू बड़ी झूठी है बुआ! कहाँ उनकी जीभ फटी है जो गाली देते हैं? किसीके मुँह में कोई फोड़ा भी तो नहीं?" बुआ हतप्रभ रह गई। उसे पता हो गया, वह कहाँ से लौटा है। वह एक क्षण तो सूरज को देखती रह गई, फिर स्वर में अनुशासन के भाव का वज़न देकर बोली, "पहले यह तो बता, कहाँ गया था तू? अपने मन के होते जा रहे हो? गन्दे लड़कों में जा मिलते हो? गन्दे लड़के और गन्दी आदतें!"

बुआ का स्वर तीव्र होता गया। सूरज के पास सीता दीदी आ खड़ी हुई। और सूरज ने देखा, आँगन में सन्तोष भी आकर चुपचाप खड़ी है। उसी क्षण वह झपटकर बुआ से लिपट गया और रो-रोकर उसके अंक में सिर पटकने लगा।

तब बुआ हँस पड़ी, "नहीं-नहीं, मेरा सूरज राजा बेटा है। यह कहाँ गन्दे लड़कों में खेलता है? क्यों सीता, भइया अच्छा लड़का है न? सन्तोष अच्छी लड़की नहीं है—गन्दी लड़की!"

सीता के समर्थन को सुन सूरज ने सिर उठाकर सन्तोष को देखा। सूरज की आँखें आँसुओं में डूबी थीं और उस दृष्टि के बीच से उसे सन्तोष ऐसी लगी, जैसे वह भी रो रही हो।

तब सूरज आँसू पोंछकर उसी दम चुप हो गया और सन्तोष के पास आ खड़ा हुआ।

सन्तोष बोली, "मेरे घर नहीं चलोगे?"

सूरज कुछ बोला नहीं, उसी क्षण वह सन्तोष के संग जाने लगा। बुआ ने दूध पिलाने के लिए पुकारा, सीता उसे रोकने के लिए

दौड़ी, पर सूरज हाथ न लगा।

पता नहीं, कब से राजू पंडित शारदा से लड़ रहे थे। शारदा से बहुत बोला न जाता था, बार-बार खाँसी उठ आती थी, पर पूरा बोलने के बदले वह पूरी आँख रो अवश्य रही थी।

राजू पंडित ने व्यंग्य किया, "बिना मुझे मारे भला तू मरने वाली है?"

"तो क्या मैं ज़िन्दा हूँ?"

"ज़िन्दा तो नहीं हो, लेकिन गज-भर की ज़बान तो है।" राजू पंडित ने मुँह में तम्बाकू डालते हुए जैसे अपने-आपसे कहा, "बेधर्मी कहीं की!"

बुझी हुई शारदा सहसा जल उठी, "बेधर्मी तू, तेरी सात पुस्त, मैं क्यों होने लगी?"

"नहीं तो क्या मधू के हाथ का थाली-भर भोजन मैंने किया था?"

शारदा को तीर-सा लगा। वह तिलमिला उठी और रोकर बोली, "तेरे धर्म में लगे आग...और तू जो इधर-उधर चाटता फिरता है, वहाँ तेरा धर्म पलता है क्या? मेरे मुँह से न निकलवा, मैं सब कह दूँगी। चुप रहती हूँ तभी क्या? सब जानती हूँ, तभी चुप हूँ—तभी मौत के पास भी हूँ।"

राजू पंडित के पैर काँप गए। वह चुपचाप विष का घूँट पीकर बाहर जाने लगे। सामने से मधू आ रही थी। राजू पंडित ने झट हँसने का अभिनय किया, "कहो मधू बेटी, कैसी हो? रूपाबहू कब आ रही हैं? गृहस्थी का सारा भार तुम्हीं पर होगा, क्यों? ओह ओ...हो कितनी लायक बेटी हो तुम...साक्षात् लक्ष्मी!"

मधू अपनी गति से भीतर चली गई। शारदा अपनी खाट पर पड़ी-पड़ी निःशब्द रो रही थी। मधू को देखकर वह बिलकुल खुल-कर रो पड़ी और बीच-बीच में कुछ कहने का प्रयत्न करने लगी। अंत में उससे केवल इतना ही कहा गया—इतना ही, "मैं क्यों जी

रही हूँ बेटी ?"

मधू ने शायद इतना ही समझा, पर उसके पास कुछ उत्तर देने को न था। वह अपनी समूची करुणा से शारदा को ताकती रही।

मधू बुआ सूरज को पकड़ने आई थी, लेकिन सूरज वहाँ न था और न सन्तोष ही दिखाई दे रही थी। पता नहीं, दोनों कहाँ थे। उदास-सी मधू बुआ घर लौटने लगी। ठाकुरद्वारे को पार करते-करते कहीं से एकाएक उसे सूरज की आवाज़ सुनाई दी। घूमकर उसने सूने ठाकुर-द्वारे में झाँका, और आश्चर्य में डूब गई—दोनों ठाकुरजी के सिंहासन पर पैर रखकर सारी देव-प्रतिमाओं को उलट-पुलट रहे थे।

जब तक मधू बुआ ठाकुरद्वारे में प्रविष्ट हो, सूरज और सन्तोष ने उसे देख लिया। देखकर वे दोनों डरे अवश्य, पर इतना नहीं कि सामना न कर सकें। बल्कि बुआ की क्रोध-भरी दृष्टि देख वे फूटकर हँस पड़े और बुआ के पैरों से लिपट गए, जैसे वे दोनों 'चोर-साह' का खेल खेल रहे थे, जिसमें चोर बुआ पकड़ी गई और खेल ख़त्म हो गया।

दूध पीकर न जाने कब सूरज फिर सन्तोष के संग भाग गया। शाम को लौटा, और आते ही एक अजीब बिगड़ी मुद्रा में बुआ से उलझ गया। कहने लगा, "बुआ, मेरी माँ कहाँ है ?"

"बेटे, दिल्ली गई है।"

"तो संतोष की माँ दिल्ली क्यों नहीं गई ?"

"वह क्यों दिल्ली जायगी ? वह तो बीमार पड़ी है।"

"अच्छा, जब वह अच्छी हो जायगी, तब दिल्ली जायगी और सन्तोष यहीं रह जायगी न ?"

मधू बुआ अब क्या उत्तर दे ? उत्तर तो प्रश्नों के देते बनते हैं। वह चुप रह गई, जैसे उस पर किसी बुज़ुर्ग की डाँट पड़ गई हो।

सूरज ने मचलकर पूछा, "सन्तोष की माँ उसके लिए रोती है, मेरी माँ तो मेरे लिए और भी रोती होगी न ?"

"हाँ बेटे, बहुत रोती होगी।"

"तब मुझे वह छोड़कर क्यों चली गई? बोलो, वह क्यों चली गई? वह मेरे लिए वहाँ क्यों रोती है, मैं तो यहाँ हूँ!"

सूरज के पास उस दिन अनेक प्रश्न थे। वह अपने प्रश्नों के साथ मचल भी रहा था और उसकी तीव्रता के फलस्वरूप ज़िद भी कर रहा था। मधू बुआ जब हारकर मौन हो जाती तब सूरज ज़मीन पर पैर पटकने लगता, एड़ियाँ रगड़ने लगता और इतने आवेश में आ जाता कि जैसे उसका दम घुट रहा हो, और वह उस घुटन को तोड़ना चाहता हो।

एक दिन सूरज ने छेदामल के अहाते में जाकर रम्मन के कान में कोई बात कही। रम्मन उससे बेहद खुश होकर सूरज को अपने घर लाया।

छेदामल की पत्नी बसन्ता ने चेतराम के पूत सूरज को पहली बार देखा। जी भर गया। उसके हाथ में दो लड्डू देकर उसने सूरज का माथा छुआ।

रम्मन को जल्दी मची थी। मौका पाते ही वह सूरज को लेकर चम्पत हो गया। दोनों ठाकुरद्वारे में पहुँचे। दोपहर के बाद का वही दो घंटे का मौका था जब पुजारी राजू पंडित ठाकुरद्वारे में नहीं रहते थे।

लेकिन उस दिन ठाकुरद्वारे के भीतर ताला पड़ा था। सूरज ने कई बार बन्द ताले को हिलाया-डुलाया, फिर रम्मन को देखकर उदास हो गया।

रम्मन ने पूछा, "किसने ताला लगाया है?"

"पुजारी ने ···राजू पंडित ने।"

रम्मन ने छूटते ही पुजारी को एक भद्दी गाली दी और सूरज से कहा, "तुम भी गाली दो।"

सूरज चुप, निश्चेष्ट उसका मुख ताकने लगा।

"देता क्यों नहीं ?"

"किसकी गाली दूँ ?" सूरज जैसे रो देगा।

"उसकी माँ की।"

"वह तो मेरी दादी है।"

"अबे, उसकी बेटी को गाली दे।"

"संतोष को ?" सूरज डर-सा गया, "नहीं, नहीं, वह मेरे संग खाना खाती है।"

"तो पुजारी को ही दे।"

सूरज चुप रहा, जैसे फिर कुछ सोचने लगा।

"अच्छा, देता हूँ गाली," सूरज ने आत्मबल से कहा। "मेरी बुआ बड़ी झूठी है, कहती है, जो गाली देता है उसकी जीभ कट जाती है।"

"देख, मेरी जीभ देख न ! कहाँ कटी है ?"

रम्मन जीभ निकालकर सूरज को दिखा रहा था, उसी क्षण न जाने कहाँ से दौड़ी-दौड़ी संतोष आई और सूरज के दायें हाथ से चिपक गई। अधिकार से बोली, "चलो घर, बुआ ढूँढ रही हैं।"

रम्मन भी सूरज के संग उसके घर गया।

रम्मन के नाम से चेतराम का पूरा घर परिचित था—विशेषकर मंगूदादी तो उसे खूब जानती थी।

अलीगढ़ में छेदामल का कोई भतीजा था। रम्मन उसीका लड़का है। डेढ़ वर्ष हुए होंगे, छेदामल ने इसे गोद लिया है, और तब से पुत्र-भाव की सारी भूख छेदामल इस दत्तक पुत्र से मिटा रहा है, तथा इसकी मंगल-कामना में वह प्रति मंगलवार पाँच कुत्तों को दो-दो पूरियाँ खिलाता है।

पर आज रम्मन को मधू बुआ ने पहली बार देखा। बड़ा ही होन-हार बालक था। सूरज से थोड़ा ही बड़ा था, लेकिन देखने में तीन-चार वर्ष जेठा लगता था।

मधू रम्मन, सूरज और संतोष से बातें कर ही रही थी कि मंगू-दादी ने उसके कानों में रहस्य-भरे स्वर में कहा, "खबरदार, जे बालक को अपनो हाथ से कुछ खिलानो-पिलानो मत !"

सब तो नहीं पर सूरज ने दादी की बात जैसे सुन ली। उसने छींककर कहा, "दादी, मुझे रम्मन की माँ ने इत्ते-इत्ते बड़े लड्डू खिलाये हैं !"

दादी तो बस अवाक् रह गई, जैसे फूँस में किसीने आग रख दी हो। उफनकर बोली, "क्यों रे रम्मन, सूरज ठीक कह रहो है ?"

रम्मन ने समर्थन में सिर हिलाया, पर कुछ बोला नहीं।

मंगूदादी के कंधों पर जैसे छिपकली गिर गई हो। उसी दम छेदामल के घर पहुँची।

बसन्ता आँगन में बैठी अपनी नौकरानी से पति के लिए बादाम घिसवा रही थी।

मंगूदादी को एकाएक देखकर वह सहम-सी गई, खाट से उठने लगी। तभी मंगूदादी ने आक्रमण किया, "बड़ी लड्डू वाली बन के आई है ! मेरो लल्ला को तैने क्यों लड्डू दयो ? मेरो घर लड्डू न रहो का ?"

बसन्ता को काटो तो खून नहीं। वह दादी से आँखें न मिला सकी, सिर गड़ाये उस सिल-लोढ़े को देखने लगी, जिस पर बादाम पीसे जा रहे थे। उसे लगा, जैसे वह भी बादाम की तरह पिसती जा रही हो।

उसकी आँखें भर आईं, पर वह रोना नहीं चाहती थी। कुछ बोलना चाहती थी, पर वाणी में हिम्मत न थी। उसके ऊपर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। जब आँखें वश में न रहीं, बरसने लगीं, तब बसन्ता ने हिम्मत करके सामने मंगूदादी को देखना चाहा। पर वह तो बाण छोड़कर चली गई थी। संयोगवश बसन्ता की वह दृष्टि छेदामल पर पड़ी। बसन्ता ने फफककर अपना मुँह आँचल में छिपा लिया।

छेदामल घबरा गया। बसन्ता को इस तरह रोते देखकर उसकी हिम्मत पस्त हो गई। वह भी रुआँसा हो आया। नौकरानी ने जो-कुछ देखा-सुना था, वह बता गई, पर संतोष न हुआ। वह अधीरता से वसन्ता को एकटक देखने लगा।

उसी समय भीतरी दहलीज़ की ओर रम्मन और सूरज एक संग खड़े दीख पड़े। बसन्ता चुप हो गई और एक अजीब दृष्टि से दहलीज़ देखने लगी, जैसे आँखों के आँसू जम गए थे और ओले की तरह उसकी पलकों में ढुलकने लगे थे।

बसन्ता चुपचाप उठी। बढ़कर रम्मन को धर लिया और उसे खींचती हुई आँगन में चली आई। चारपाई पर उसे ढकेलकर बरस पड़ी, "यह है मेरा दुश्मन! आज तू न आता तो उस पोपली की हिम्मत थी कि मुझे बात से घायल करके चली जाती। मैं बाज़ू पकड़ लेती, हाँ!"

रम्मन बड़े ज़ोर के रुदन का अभिनय कर रहा था और उसकी दृष्टि बार-बार दहलीज़ की ओर जाती, जहाँ से सूरज लापता हो गया था।

छेदामल ने रम्मन को धमकाने का प्रयत्न किया, "देख, तू मेरा गुस्सा नहीं जानता, ख़बरदार अगर तू फिर सूरज को इस घर में लाया!"

रम्मन ने झट जवाब दिया, "मैं कहाँ लाता हूँ, वह तो ख़ुद चला आता है!"

"अच्छा···अच्छा चल, भाग यहाँ से!" छेदामल ने जैसे बसन्ता का मन रखने के लिए उठकर भागते हुए रम्मन की पीठ पर थपकी दे दी।

तब बसन्ता बरसने लगी, "आज मेरी भी कोख जगी होती, तो ये दिन क्यों देखने पड़ते! आज बसन्ता जादू-टोना करने लगी। मुझे नहीं हुआ तो बच्चे मेरे दुश्मन हैं जैसे। इतनी हिम्मत उस बुड्ढी की!"

छेदामल से न रहा गया, तुनककर बोला, "मैं अभी जा रहा हूँ चेतराम के पास। कल के बनिये आज के साहूकार! वह दिन भूल गया क्या, जब टाट बिछता था। बड़ी मंगू-झंगूदादी बनी फिरती हैं!"

इस तरह बातों-ही-बातों में छेदामल शान्त होकर चुपचाप बाहर आया और दुकान की गद्दी पर जा बैठा।

सूरज छेदामल के घर से भागकर सीधे मधू बुआ के पास आया। बुआ और दादी में कुछ झड़प हो रही थी। बुआ विरोध कर रही थी कि मंगूदादी क्यों झूठ-मूठ की बात लेकर बसन्ता भाभी के यहाँ लड़ने गई थी? वह क्यों नहीं पहले अपने सपूत-नाती को घर में खूँटा गाड़कर बाँध रखती? किसका दोष, किसके सिर मढ़ा जाय? सो भी वह दोष हो तब तो? किसीके स्नेह-प्यार में जो शंका करे, उसमें झूठ खड़ा करे, सबसे बड़ा दोषी वही है।

मंगूदादी को अच्छे-बुरे के तर्क से क्या सरोकार? निराधार मधू बुआ को भी फटकार बैठी।

संध्या तक सूरज बुआ के पास से न टला। छाया की तरह संग-संग डोलता रहा। इस बीच दो बार रम्मन उसे बुलाने आया, पर वह न गया। सन्तोष भी आई, उसके संग भी न गया।

रात की रोटी के लिए बुआ चौके में पराँठे बना रही थी। सब्ज़ी बन चुकी थी और सूरज वहीं अलग पीढ़े पर चुपचाप बैठा था।

एकाएक सूरज ने देख लिया, बुआ रो रही थी। देख तो वह कब से रहा था कि बुआ आँचल से बार-बार अपनी आँखें पोंछती थी, बार-बार पल्ले से नाक छिनकती थी, पर वह यह समझता था कि धुआँ लग रहा है, सब्ज़ी का मिर्च-मसाला लग रहा है। पर अब उसने देख लिया कि चौके में कहीं भी धुआँ नहीं, सब्ज़ी न जाने कब की बन चुकी है।

बुआ रो रही है, सूरज अपने-आपमें सहम गया, स्वयं को दोषी

ठहराने लगा और किसी सत्य को पकड़ने लगा, 'दूध तो पिया है, सुबह तेल भी खा लिया था, दोपहर को बुआ के संग रोटी भी खाई है। ओहो अब समझा, मैंने ठाकुरद्वारे में रम्मन से कहा था—मेरी बुआ बड़ी झूठी है···तो बुआ मुझे पीटती क्यों नहीं ? ख़ूब मारे मुझे ! जी-भर मारती क्यों नहीं ? ख़ुद क्यों रोती है ? बुआ मुझे क्यों नहीं मारती ? सत्तो (संतोष) को उसके पिताजी मारते हैं, रम्मन को वह चाचीजी मारती हैं !'

सहसा सूरज के मुँह से निकल पड़ा, "बुआ, तू मुझे क्यों नहीं मारती ?" बुआ चुप थी—प्रतिक्रियाशून्य।

"तू रो रही है बुआ ?" सूरज से न रहा गया, वह बुआ के गले से लिपट गया, "क्यों रो रही है, बुआ ?"

बुआ अपने सत्य से सूरज को बचाना चाहती थी, पर सूरज था कि प्रश्न और तर्कों के जाल बिछाता चल रहा था।

बुआ आँसू पीकर बोली, "बेटे, तेरे एक फूफाजी हैं, जो मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गए। वादा किया था कि जहाँ रहूँगा तुम्हें चिट्ठी लिखूँगा, पर आज पूरे ग्यारह महीने हो गए, उनका कोई पता नहीं। न जाने कहाँ हैं, कैसे हैं ?"

बुआ का बाँध एकाएक टूट गया, सिसककर रो पड़ी।

"मैं मुनीमजी से फूफाजी को चिट्ठी लिखवाऊँगा," सूरज ने अपने मुख को बुआ के दायें कान में गड़ाकर कहा। "बुआ, तुम मुझे रेलगाड़ी में बिठा दो, मैं फूफाजी को ढूँढ़ लाऊँगा।"

"लेकिन पता कहाँ है ?"

"डाकख़ाने में होगा, बुआजी !"

सूरज विश्वास से बोला और बुआ के होंठों पर मुस्कराहट बिखर गई, जबकि उसकी आँखें आँसुओं में डूबी थीं। कुछ क्षण बुआ का मुख निहारकर सूरज अपने-आप कहने लगा, "बुआ, बुआजी, बुआ रे ! मैं अपने हाथ-पैर गन्दे नहीं रखूँगा। कपड़े बदलवाने, दूध पीने और

उबटन लगवाते समय नहीं रोऊँगा। और काजल भी लगवा लिया करूँगा, बुआ!"

"तू बड़ा राजा बेटा है!" बुआ का कंठ भर्रा रहा था, "आज तू संतोष के यहाँ नहीं गया था?"

"मत्तो अच्छे कपड़े नहीं पहनती बुआजी, बड़ी गंदी रहती है, आँख में कभी काजल नहीं डलवाती।"

बुआ पिघलती जा रही थी और उसके सामने संतोष की माँ शारदा का एक मटमैला, खोया-खोया-सा चित्र उभरने लगा था।

भोजन बनते ही बुआ ने सबसे पहले सूरज को भोजन कराया, फिर सीता-गौरी का थाल लगाकर वह मंगूदादी के पास गई। "अम्माँ, उठ, चल भोजन कर ले!"

यह कहती हुई मधू रूठकर सोई हुई दादी को जगाने लगी। लेकिन दादी तो जैसे जगी बैठी थीं। सुलग रही थी, बस किसी चिनगारी की ज़रूरत थी।

दादी भड़क उठी, "जा, बसंता कूँ बुला ला। मैं कौन हौ?"

बुआ चुप खड़ी रह गई। उसे कुछ न सूझा। अंत तक कुछ न सूझा। बस, अपने-आप पर रो पड़ी।

तब जैसे दादी का जी ठंडा हुआ। वह चुपके से उठी और चौके में चली गई।

मधू बुआ ने रोते-रोते कहा, "जिसे बच्चा न हो वह जादू-टोना वाली हो जाती है! खूब कहती फिरो इसे। तभी खुरजा वाले मुझे भी जादू-टोना वाली कहते हैं। क्यों न कहेंगे···लाख बार कहेंगे। जब किसी की बेटी का नाम तुम बेचोगी, तो तुम्हारी बेटी का नाम पहले बिकेगा—खूब बिकेगा। तब अपनी बेटी के नाम पर क्यों बुरा मानती हो?"

मंगूदादी के पास कोई जवाब न था, बल्कि जवाब ढूँढ़ने की ओर उसका ध्यान ही न था। अब तो ध्यान इधर खिंच गया था कि बेटी रो रही है और इस तरह दादी के जी में कुछ कचोटने लगा।

८

उस वर्ष फागुन लगने से पूर्व ही दिन गुलाबी लग रहे थे। बाज़ार-भाव में मद्दी फैली थी। अमृतसर, लाहौर, लायलपुर और दिल्ली से लाला लोग भाव पूछकर थक रहे थे, पर गेहूँ जैसे राजा अन्न के भाव चार रुपये मन थे।

इसलिए बस्ती का सारा व्यापार जैसे ठंडा पड़ गया था, और पड़ता ही जा रहा था। लेकिन त्यों-त्यों सट्टे के बाज़ार में न जाने क्यों गरमी बढ़ती चल रही थी। आखिर लोग करें क्या? लेन-देन, वादा-तकाज़ा न रहे तो जिया कैसे जाय? पैसा एक जगह रुककर बेकार माना जाता है, पैसा गोल होता है—और गोल का धर्म है, चलते रहना, चलते रहना।

और सट्टे के बाज़ार में पैसा वर्तमान को बेधकर भविष्य तक को बाँध लेता है।

एक दिशा में गरमी और थी।

लोग हिन्दी-अख़बारों के अतिरिक्त अब अंग्रेज़ी के अख़बार भी पढ़ने-सुनने लगे थे। भाव पीछे देखे जाते, अख़बारों में पहले राजनीतिक ख़बरें और घटनाएँ पढ़ी जातीं, और फिर दुकान की गद्दियों पर, बरामदों के तख़्तों पर, बैंक, पोस्ट ऑफ़िस की बैंचों पर, मंदिर-ठाकुरद्वारों की दहलीज़ों में लोग आपस में बहस कर-करके बातें करते मिलते—'ओ जी लाला! सुना, अरे का पूछो हो, आजकल तो पैसा तर जाय अख़बार पढ़न से, अपन जवाहरलाल नेहरू जेल से रिहा होकर जरमनी गये थे न! जे वहाँ कमला नेहरू बीमार थीं न! बेचारी का वहीं स्वर्गवास हो गया। राम···राम स्वदेश के लिए विदेश में स्वर्गवास! सो जवाहरलाल अब देश लौट आये। कांग्रेस प्रेसिडेण्ट अब जवाहर-लाल ही होंगे। बड़े लीडर हैं। ये अंगरेज़ थर-थर काँपते हैं जवाहर से! बादशाह के लड़के के संग इंगलैंड में पढ़े हैं। पेरिस में कपड़े धुलते

थे, स्पेन का नाई बाल काटने आता था। इंगलैंड में नेहरूजी की मोटर इतनी शानदार थी कि बादशाह का लड़का उसे देखकर रोने लगा था।'

चेतराम ने अपनी गद्दी पर जिस व्यक्ति को अंग्रेज़ी अख़बार पढ़ने तथा उसका खुलासा समझाने के लिए दो घंटे के लिए नौकर रख छोड़ा था, उसे तीन रुपये महीने मिल रहे थे। चंदूलाल उसका नाम था और वह दाईं आँख का काना था। सुबह सात बजे से नौ बजे तक वह चेतराम को कुछ अख़बार समझाता, पढ़ता और दस बजे से म्युनिसिपल स्कूल में बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाने चला जाता।

इतवार का दिन था।

चंदूलाल ठीक अपने समय से चेतराम की भीतरी गद्दी पर आया। नियमानुसार गद्दी पर अनेक लोग आ जुटे थे। सब दरवाज़े बन्द थे, सामने के दरवाज़े पर मोटा परदा गिरा दिया गया था। चंदूलाल ने देखा, आज वहाँ बस्ती की एक मशहूर हस्ती चन्दनगुरु अपने कुछ आदमियों के साथ आ डटा था, और अकारण वहाँ क़हक़हे फूट रहे थे। न जाने किस-किस घर की, और बारी-बारी कितने घरों की अफ़वाहें उड़ रही थीं। और जैसे पूरी दुकान उस रस के नशे में सराबोर हो रही थी।

चंदूलाल ने अपनी आँखों पर साढ़े ग्यारह वर्ष पुराना चश्मा लगाकर बड़ी उदासी से वहाँ बैठे हुए लोगों की ओर देखा। कल रात पुलिस गश्त लगा रही थी और खुफ़िया पुलिस का एक दस्ता उस पुलिस से भी छिपकर बस्ती की तहकीक़ात करने आया था। तभी दारोगाजी ने चंदूलाल को साहूजी की गली में पाकर एक झापड़ मारा था, "साले, काड़े-कड़ैचा, सुना है तुम लोगों के अख़बार पढ़ते हो! चेतराम की गद्दी पर कौन-कौन लोग क्या-क्या अख़बार लाते हैं? साले बताता क्यों नहीं? पचास रुपये महीने मिलेंगे, तू मुख़बिरी क्यों नहीं कर लेता? कितनी दफ़ा तुझसे कहता चला आ रहा हूँ। बेटा,

जिस दिन गुस्से में दो-चार पड़े या हमारे गिरफ़्त में आये, फिर जन्म-भर याद करोगे !"

चंदूलाल का जी हो रहा था कि वह रो-रोकर वहाँ बैठे हुए लोगों से पहले अपनी बीती कह ले, पर उसे ऐसा लग रहा था, जैसे बस्ती-भर में सरकार के मुखबिर और खुफ़िया पुलिस घूम रहे हैं। वहाँ भी हैं, उस बन्द कमरे में भी।

लेकिन दूसरे ही क्षण चंदूलाल के मन में जैसे एक आवाज़ गूँजी, 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद, अपने देश में अपना राज', और वह तपाक से वहाँ एकत्रित अख़बार पढ़ने बैठ गया — भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा लाये गए कई दिनों के बासी-ताज़े अंग्रेजी-हिन्दी-उर्दू के अख़बार, 'गुप्ती रिपोर्ट', 'तेज', 'सैनिक', 'आज़ाद', 'वीर सिपाही', 'मोर्चा' और कुछ दस्ती पर्चे आदि भी।

फिर भी रोज़ की अपेक्षा चन्दूलाल आज बहुत आहिस्ता-आहिस्ता लोगों को बता रहा था, पंक्तियाँ पढ़-पढ़कर सुना-समझा रहा था— 'लायलपुर की म्युनिसिपेलिटी नेहरूजी का अपने यहाँ स्वागत करना चाह रही थी, कलक्टर ने मना कर दिया। वहाँ के विद्यार्थियों के विरोध-प्रदर्शन पर पुलिस ने लाठी-चार्ज किया······पूरे हिन्दुस्तान के आँकड़े निकले हैं कि अब तक कुल तीन सौ अड़तालीस अख़बारों को आर्डिनेंस और बोर्ड ऑफ़ सेन्सर्स द्वारा सरकार बन्द कर चुकी है।······मथुरा कॉलेज के एक प्रोफ़ेसर का पूरा घर जेल में नज़रबंद है, खुलेआम तलाशी लेने पर उनके घर में तीन किताबें मिली थीं—गोर्की की 'वाइड सी केनाल', एम० एन० राय का एक पैम्फलट तथा एक गुजराती किताब 'दरियाइ दाव लग्यओ'।······अंग्रेज़ी हुकूमत की निर्मम तानाशाही के अलावा कपूरथला, जोधपुर, मैसूर, बड़ोदा और सिरोही जैसे राज्यों ने भी जनता को जेलों में बन्द करना शुरू किया है।··· अलमोड़ा जेल से खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ रिहा ! लेकिन वह पंजाब और फ्रंटियर में प्रवेश नहीं कर सकते।······बंगाल जेल में अब तक

कुल दो हज़ार लोग नज़रबंद।······पंजाब में पैंतीस सोशलिस्ट, चालीस कांग्रेसी। लोगों पर यह कानून लगा है कि वे किसी तरह भी अपने गाँव नहीं छोड़ सकते।' उसी बीच सहसा चेतराम ने टोका, "मास्टर चन्दूलाल, कहीं कुछ लड़ाई-भिड़ाई की भी खबर है कि निरा यही सब है!"

"लड़ाई तो यह भी है, यह किस लड़ाई से कम है—निहत्थी जनता, अहिंसावादी सैनिक, सत्याग्रही, स्वतन्त्रता-संग्राम में लगे हैं, तानाशाही अंग्रेज़ों से, हिंसावादी ब्रिटिश सत्ता से।"

"अरे यार, यूरोप की लड़ाई के बारे में बताओ, लेक्चर न झाड़ो!" चन्दनगुरु ने कहा।

चंदूलाल को चन्दनगुरु का लहज़ा पसन्द न आया।

आँख फेरकर वह चेतराम को बताने लगा—इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया था, अब इटली की ताकत दिनों-दिन पश्चिम-उत्तर की ओर बढ़ रही है—इधर मसोलिनी, उधर हिटलर!

"बोलो राजा लखनलाल की जै!" बड़े ज़ोर से चन्दनगुरु चीख उठा और पूरी ताक़त से हँसने लगा।

उसकी सूरत से चन्दूलाल को नफ़रत हुई। वह अख़बार पटककर बड़ी तेज़ी से अपना चश्मा सँभालते-सँभालते दुकान के बाहर निकल गया।

"अजी मास्टर चन्दूलाल ने कुछ इलेक्शन की खबर नहीं बताई!"

"अजी अपनी बस्ती की मिनिस्पेलटी के इलेक्शन की बात पूछो, सुनो मैं बताता हूँ।" और चन्दनगुरु बड़ी देर तक इस आधार पर गलियों के बीच बस्ती की राजनीति की चर्चा करता रहा और एक सिरे से लोगों को बुरा-भला बकता रहा। न जाने किस-किसको गालियाँ सुनाता रहा। गद्दी के शेष लोग चन्दनगुरु का मुँह निहार रहे थे, और दो-चार लोग उसकी हाँ में हाँ और नहीं-में-नहीं मिलाते चल रहे थे। बात बढ़ी, फैली और फैलती गई। बस्ती की राजनीति से पहले

म्यूनिसिपैलिटी के बारे में बात करता रहा, फिर गली-मुहल्लों के विषय में, फिर कुछ घरों की बातें—एक-से-एक अफ़वाही तथ्य, एक-से-एक बढ़कर रहस्यमय घटनाएँ, जैसे पूरी बस्ती चन्दनगुरु की मुट्ठी की चीज़ थी।

यह चन्दनगुरु था कौन ?

क्या था ?

था कुछ नहीं, बना अधिक था। इसके यहाँ साधारण ढंग से खांडसारी का रोज़गार था, जिसकी ज़िम्मेदारी इसके छोटे भाई कुन्दन पर थी।

और यह चन्दन अखाड़े बाँधकर पहलवानी करता था। आज से आठ साल पूर्व यह इस क्षेत्र का सबसे नामी पहलवान था और इस बस्ती के तेरह अखाड़ों का उस्ताद था। उन दिनों चन्दन उस्ताद ने लगातार कई दंगल मारे थे, अलीगढ़ के नामी पहलवान अहमदरज़ा को पछाड़ दिया था। रामपुर के सत्तार, हाथरस के फूलसिंह, बरेली के भगत् और आगरा के अलीजान को हराया था। उसी वर्ष सावन की पंचमी के दिन पूरी बस्ती के अखाड़ों ने मिलकर एक बहुत बड़ा उत्सव किया। चन्दन उस्ताद के नाम पर उसकी अवस्थानुसार छत्तीस बार बन्दूक दागी गई, छत्तीस सेर भाँग घुटी, छत्तीस लड़ैतों ने चन्दन उस्ताद का पूजन किया, छत्तीस कपूर, छत्तीस तोले गुग्गुर, अगरु और लाल चन्दन सुलगाये गए। कच्छी, लंगोट और जाँघिये के अलावा चन्दन उस्ताद को पूरे वस्त्रों के साथ पूरे छत्तीस गज़ का असली रेशमी साफा भेंट किया गया और चन्दन उस्ताद को उस आयोजन में चन्दन-गुरु की पदवी दी गई। लोग बताते हैं, उसके बाद म्यूनिसिपल चेयर-मैन ने पूरे छत्तीस मिनट तक भाषण भी दिया था।

उस क्षण से चन्दनगुरु पूरी बस्ती पर छा-सा गया। खूब डटकर वह पूजा जाने लगा। बस्ती के सारे अखाड़ों पर सालाना बँधा, और सावन में पंचमी के दिन पूरी रक़म मिलाकर चन्दनगुरु को मिलनी शुरू हुई।

इस तरह बस्ती ने चन्दनगुरु को बड़ी प्रतिष्ठा दी, और गुरु की धाक भी खूब जमी। तीन वर्ष बाद गुरु ने कोई चौबाइन भगा ली, पूरे सात महीने अपने संग रखा, फिर वह न जाने कहाँ चली गई। इसके बाद चन्दनगुरु ने और भी कई नाते जोड़े, और इसी बीच रामपुर के एक डाके और क़त्ल के सिलसिले में गुरु को दो वर्ष जेल में भी रहना पड़ा।

सात से दस बजने को आ गए। धीरे-धीरे गद्दी से उठ-उठकर लोग अपनी-अपनी दुकान पर चले गए।

समय पाकर चन्दनगुरु ने चेतराम को अपने पास खींच लिया और रहस्यमय स्वर में कहने लगा, "देखो लाला, जिसके घर लछमी बरसती है, उसके पास अगर बड़ी इज़्ज़त भी हो जाय, तो का पूछो हो!" चेतराम एकटक चन्दनगुरु की आँखों में निहारने लगा।

"मैं आज तुमसे, लाला, एक बहुत बड़ी बात कहने आया हूँ।"

दोनों कई क्षण तक एक-दूसरे को देखते रहे। फिर चन्दनगुरु मुस्कराने लगा और चेतराम अपनी मूँछों में हँस पड़ा। गुरु ने गम्भीरता से कहा, "सुनो लाला चेतराम, इस साल तुम म्युनिसपेलटी की चेयरमैनी के लिए खड़े हो जाओ! मैं लेता हूँ ज़िम्मा, मूँछ मुड़ा दूँ अगर मैं तुम्हें चेयरमैन न बना दूँ।"

चेतराम की आँखों में एकाएक कुछ दीप्त हो आया। मुँह में पानी भर गया, जिसके छींटों से उसकी आँखें भीग गईं। चेतराम शरमाने लगा, गुरु के प्रति मन-ही-मन वह श्रद्धा से इस तरह झुक गया, जैसे वह उस क्षण के लिए सचमुच बस्ती का चेयरमैन हो गया। चेतराम को हाँ-ना कुछ सूझता ही न था। गुरु जो-जो कह रहा था, उसे वह जैसे मानता चल रहा था।

आधे घंटे के बाद चन्दनगुरु चला गया, और चेतराम जैसे आदमी के भीतर इतना बड़ा चमत्कार कर गया कि वह बेहाल होने लगा। उससे दोपहर की रोटी न खाई गई, मारे उल्लास और जीवनपूर्ण

साथ से जैसे ज़मीन पर उसके पैर ही न पड़ते थे। उससे गद्दी पर रहा ही न जाता था। हर क्षण भीतर-ही-भीतर चन्दनगुरु की बात उसे मथ रही थी और उसका अन्तर उससे हर घड़ी कह रहा था—चन्दनगुरु कह रहा है, खड़े हो जाओ इस चेयरमैनी इलेक्शन में। अवश्य खड़े हो—चन्दनगुरु ने कहा है—कुरसी मिलकर रहेगी! आज तक जिसे चन्दनगुरु ने खड़ा किया है, वह होकर रहा है! और चेतराम में अब बस्ती के चेयरमैन बनने के कौनसे गुण नहीं हैं—सब तो हैं, जभी तो चन्दनगुरु ने उसीको छाँटा है। वह अवश्य ही चेतराम की पूरी ताक़त जानता होगा। चन्दनगुरु और चेतराम—एक की ताक़त, एक का पैसा!

चेतराम की अजीब हालत हो रही थी। उसके पैर कहीं टिक ही न रहे थे। कई बार कपड़े बदले, कई बार चौक बाज़ार हो आया। शाम को जी न माना, एक ताँगा किया और म्युनिसिपल दफ़्तर की ओर चला गया।

लौटकर सीधे ठाकुरद्वारे गया। भगवान् के चरणों पर टोपी रखकर बड़ी देर तक आँख मूँदे रहा। अन्त में राजू पंडित से उसने अपने मन की बात कह दी।

राजू पंडित ने तुरन्त कोई किताब खोली, अँगुलियों पर कुछ जोड़ा-घटाया, फिर बड़े विश्वास से कहा, "बस, हो गए! सेठ चेतराम चेयरमैन हो गया। समय आ गया—सारे ग्रह, सारे नक्षत्र प्रश्न के अनुकूल हैं।"

चेतराम ने तुरन्त भगवान् के सामने दस रुपये का नोट रख दिया, और सीधे वहाँ से चन्दनगुरु के घर पहुँचा।

दूसरे ही दिन, पूरी बस्ती में यह बात धुएँ की तरह फैल गई कि चेतराम चेयरमैनी का चुनाव लड़ने जा रहा है। अगले दो हफ़्तों में चेतराम अपनी गद्दी पर न बैठ सका। चन्दनगुरु के संग पूरी बस्ती में डोलता फिरा। बस्ती के सोलह मुहल्लों, सवा सौ गद्दियों और तेरह

दरवाज़ों से वह गुज़र आया।

बोलने-समझाने का सारा काम चन्दनगुरु करता था, यद्यपि चेतराम को अपनी यह कमी बहुत खल रही थी। एक दिन चेतराम के मन ने कहा—अजी, तुम्हारे पास रुपये हैं, फिर किस चीज़ की कमी! बोलना और भाषण देने की कला क्या, संसार की कोई भी कला रुपये के दायरे से बाहर नहीं! कॉलेज के किसी अच्छे वक्ता प्रोफेसर को पकड़ो, उसे एक बोरा गेहूँ भेंट करो, एकाध टिन घी भेजो, फिर देखो, वह बेचारा अपनी पूरी तपस्या और ताक़त से तुम्हें वक्ता बना देगा। इन छोटी बातों में क्या है, बस एक हफ़्ते की मेहनत है!

चेतराम ने अपने मन की बात मान ली।

कॉलेज के विद्वान् वक्ता प्रोफेसर दयाराम शास्त्री, एम० ए०, एल० टी०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न के निर्देशन में वह भाषण देना सीखने लगा।

सहसा एक दिन, बिना किसी सूचना या आहट के गोरेमल के खास मुनीम के साथ दिल्ली से रूपाबहू आ गई।

रात के दस बजे थे तब।

सूरज सो गया था, चेतराम घर नहीं लौटा था। मधू बुआ चौके का सब काम ख़त्म करके दही जमाने बैठी थी। मंगूदादी का दम फूल रहा था जो हाँफती-खाँसती अपने कमरे में बैठी थी। और सीता अपने नये ब्लाउज़ की बाँह पर रेशमी फूल काढ़ रही थी।

माँ से पहले गौरी ही दौड़कर घर में आई, और सबको बड़े आत्म-गौरव से सूचना देने लगी कि वह नाना के यहाँ से लौट आई। उसके पास पाँच रुपये हैं। उसके कान में बुंदे हैं, और उसने नाना के यहाँ हवाई जहाज़ देखा है। मोटर पर घूमकर आई है।

रूपाबहू जब मधू बुआ से मिली तो उसका मुख भाव-शून्य था।

शायद वह यात्रा करके आई थी, इसीलिए वह बेहद थकी-थकी-सी लग रही थी।

यंत्रवत् दादी के कमरे में गई, और उसके चरण छूकर उसी दम लौट आई। दादी आशीष देकर कुछ और बोलने को थी, पर रूपाबहू वहाँ थी कहाँ!

इसलिए मंगूदादी अपने-आपसे कुछ बहुत ही अस्पष्ट ढंग से बोलने लगी, जिसका आशय सम्भवतः यह था कि 'दुनिया में बहुत सी बहुएँ हैं, पर मेरी बहू के नीचे-नीचे। सबसे छोटे बालक को छोड़कर कैसे इतने दिन मायके रह आई, पत्थर का दिल है। सिगरे गली-मुहल्लों की औरतें बातें करती हैं, बोली सुनाती हैं कि पूत को किस हृदय से, क्योंकर अपने संग न ले गई। एक बात, हज़ार कारण ढूँढे जाते हैं। किस-किसको, क्या-क्या, कितना समझाऊँ! बलिहारी जाऊँ तेरी!'

लेकिन मंगूदादी की ये बातें रूपाबहू के कमरे तक नहीं पहुँच रही थीं। दादी तो अपनी शान्ति के लिए बक रही थी।

रूपाबहू के ही कमरे में मधू बुआ सोया करती थी और उसीके पलंग पर सूरज सोता था।

आज भी सूरज वहीं बेखबर सो रहा था। रूपाबहू उसके पलंग पर झुककर देखने लगी—वह बढ़ गया है; रंग और निखर आया है। हाथ-पैर कितने साफ़-सुथरे और मनमोहक हैं! सिर के बाल घुँघराले हैं—तेल पड़ा है, कंघी डाली गई है। आँखों में सोने के पहले भी जैसे दुबारा काजल डाला गया है। माथे के एक किनारे भी काजल की अँगुली लगाई गई है, नज़र बचाने के लिए। कपड़े साफ-सुथरे हैं; कमीज़ पर कितना अच्छा स्वेटर पहनाया गया है!

रूपाबहू ने एकाएक सूरज के माथे को चूम लिया, बाँहों में भरकर उसे उठाने चली, तभी कमरे में मधू बुआ आ गई।

रूपाबहू डर-सी गई, और अपने-आपको छिपाने लगी। उसे ऐसा

लगा, जैसे वह अपराधी है। और वह एक क्षण के लिए मधू बुआ के सामने पीली पड़ गई।

फिर रूपाबहू चुप रही। अपनी तरफ से वह कुछ न बोली—तब भी न बोली, जब मधू ने उसे यह सूचना दी कि चेतराम चेयरमैनी के लिए चुनाव लड़ने जा रहा है।

बस, जैसे वह भागकर सो गई—बेखबर सो गई।

सूरज की आँख चार बजे खुल गई, और वह रोज़ की तरह बुआ को जगाने लगा। रूपाबहू जग रही थी, देख रही थी, सुन रही थी, पर उसका मन सूरज को आवाज़ देने से न जाने क्यों बैठा जा रहा था।

बुआ की नींद टूटी। सूरज को सीने से चिपकाकर उसी दम बोली, "तेरी माताजी आई हैं।"

"माताजी कौन ?"

"तेरी माँ, और कौन ! वह देख सो रही हैं !"

सूरज बुआ के संकेत की ओर बड़ी जिज्ञासा से देखने लगा। कमरे में अन्धकार था, फिर भी जैसे उसे बेधकर वह अपनी माँ को उसी दम देख लेना चाहता था।

जब नहीं देख सका, तब वह हठ करने लगा, "मैं माँ के पास जाऊँगा। माताजी कहाँ हैं ? मेरी माताजी ! मैं नहीं सोऊँगा तुम्हारे पास, मैं अपनी माताजी के पास जाऊँगा।"

"आ जा मेरे पास," रूपाबहू के मुख से एकाएक फूट गया।

और सूरज उसी क्षण चुप हो गया। बुआ ने उठकर रोशनी की। और उस प्रकाश में रूपाबहू को देखकर सूरज उतनी ही तीव्रता से मधू के कण्ठ से लिपट गया, जितनी सम्मोहक इच्छा से वह अपनी माँ के पास जाने को आतुर था। रूपाबहू सूरज को अपने पास लाना चाह रही थी, मधू बुआ उसे अनेक मनुहारों से भेज भी रही थी, लेकिन सूरज था कि वह बुआ के गले से लिपटा जा रहा था, फिर भी जैसे संशकित दृष्टि से बार-बार सबकी आँखें बचाकर रूपाबहू को देख

लेता था।

लिहाफ़ के नीचे छिपकर वह बुआ से धीरे-धीरे बातें करने लगा। बुआ ने कहा, "तेरी माताजी हैं।"

"माँ हैं!"

"हाँ-हाँ माँ, जैसे मंगूदादी मेरी माँ है।"

सूरज ने तेज़ी से उत्तर दिया, "जैसे संतोष की माँ है।"

मधू बुआ चुप थी, उससे कुछ न बोला गया।

सूरज पूरे स्वर में बोला, "वैसी माँ, जिसे रम्मन और जगनू गाली देते हैं। बुआ, उस अहाते के सब लड़के माँ-बहन की गाली देते हैं।"

"अब कभी मत जाना वहाँ, गाली बकने से जीभ कट जाती है।"

सूरज सहसा हँसा, हँसी के बीच कहता गया कि बुआ झूठी है, बुआ झूठी है। और उसी स्थिति में वह शक्ति लगाकर माँ-बहन की दो-तीन गालियाँ दे गया।

बुआ माथा ठोककर रह गई, सूरज और खिलखिलाकर हँसने लगा, जैसे उसने असत्य को पा लिया, और अब उसका मज़ाक बना रहा हो।

सूरज ने गाली दे ली और अपनी जीभ टटोली। जीभ तो वैसी ही थी, बल्कि गाली देने से जीभ पर एक अजीब आनन्द-रस बरस रहा था, जैसे चाट खाने से बरसता है।

रूपाबहू निश्चेष्ट पड़ी थी। उसका इकलौता बेटा यह क्या बक रहा है, वह जैसे कुछ समझ न रही थी।

मधू बुआ श्री-हत थी।

सूरज ने रूपाबहू के सामने बुआ को जैसे फेल कर दिया हो।

चेतराम फूला न समाता था। घर में उसकी रूपाबहू आ गई, यह उसके प्यार की जीत है। अब निश्चित रूप से चुनाव में भी उसकी जीत होगी।

सुबह बहुत तड़के उठकर वह ठाकुरद्वारे गया; भरे मुख से राजू पंडित को सूचना दी कि 'सूरज की माँ आ गई, रात आई है।'

उस सुबह बड़ी धूम से ठाकुरद्वारे पर हरि-कीर्तन हुआ।

नहा-धोकर, खूब अच्छे कपड़े पहन चेतराम रूपाबहू के सामने गया और आँख मिलते ही सिर झुका लिया। अपने को बाँधने के लिए वह गौरी बेटी को प्यार करने लगा और जो-जो बातें रूपाबहू से कहने-पूछने के लिए थीं, उन्हें गौरी से कहने लगा।

रूपाबहू दो-एक बात करके अपने कमरे में चली गई। चेतराम ने गौरी को छोड़कर सूरज को संग ले लिया, कमरे में पहुँचा, और पलंग पर बैठ गया।

चेतराम को रूपाबहू से अनेक बातें करनी थीं। उसने बहुत पहले से सोच रखा था कि जब भी रूपाबहू दिल्ली से आयेगी, वह उससे रूठा रहेगा; जब तक वह उसे मनायेगी नहीं, वह बात नहीं करेगा।

लेकिन उस क्षण सब-कुछ भूलकर अपनी अनेक तरह की बातों का सिलसिला आरम्भ करने के पूर्व वह ग़लती से अपने चुनाव लड़ने की बात कर बैठा।

रूपाबहू झुँझला उठी, "तो मुझे क्या सुनाते हो? क्या मिल जायगा मुझे?"

चेतराम ने स्वर को मक्खन-सा चिकना कर लिया, "क्यों नहीं; ऐसी बात क्यों मुँह से निकालती हो?" और कुछ क्षण रुककर बोला, "तुम चेयरमैन-बहू कहलाओगी। लोग......"

"सेठानी और रूपाबहू ही कहलवाकर पक गई, मिल गया जो मिलना था।"

"क्या चाहिए तुम्हें?" चेतराम आर्त स्वर में बोला, "कभी बताओगी भी, कुछ माँगो, कहो, अगर फिर न पाओ तो मुझे कहो!"

"जो मिलना चाहिए, वह भी कहीं माँगा जाता है," रूपाबहू के-

मुख से यह बात इस तरह निकली, जैसे वह अकेली है और अपने-आप से कह रही है, "जो माँगने से मिला वह दान है, अधिकार नहीं, मुझे तुम्हारा दान नहीं चाहिए।"

"ठीक कहती हो, बड़े घर की बेटी हो।"

"आग लगे ऐसी बेटी पर!" यह कहकर रूपाबहू कमरे से बाहर निकल गई।

मायके में भी रूपाबहू इस बार बहुत अच्छे ढंग से न थी। बाद को तो उससे और उसकी माँ से अक्सर कहा-सुनी होने लगी थी। पिता गोरेमल से भी अनेक बार उलटी-सीधी बातें हो गई थीं। इस तरह वह प्रसन्न मन से नहीं आई है। उसे जैसे अपने अन्तर की विवशता से उतने दिन दिल्ली रहना पड़ा है, वरना उसे इतने दिन वहाँ रहना अच्छा नहीं लगा है। बहुत-कुछ खला है उसे। तभी वह दिल्ली से इतनी दुबली होकर आई है, जिसे देखकर चेतराम उस दिन बहुत दुखी था और अनेक चिंताएँ करता रहा था।

चेतराम को तीसरे दिन पता लगा, जब एकान्त में उसको मंगूदादी ने बताया कि रूपाबहू की इस बार विदाई नहीं हुई है। जैसे लड़कर आई है; अभी मुनीम के संग यहाँ पहुँची है—न कोई विदा, न विदाई। पूत छोड़कर गई थी तो गोद कैसे भरे! और जायँ बड़े उछाह से।

उस दिन सूरज छेदामल के अहाते में पहुँचकर रम्मन और जगनू के सामने एक रुपया रखने लगा। रम्मन चुप रहा, लेकिन जगनू की प्रसन्नता हद तक पहुँच गई। उसने आज तक अपनी मुट्ठी में रुपया नहीं रखा था। उस क्षण सूरज से रुपया पाते ही उसने मुट्ठी में कस लिया और अपने हाथों को चूमने लगा। अहाते के सारे बच्चे उन्हें घेर-कर खड़े हो गए थे।

सूरज ने गम्भीरता से कहा, "मेरी माँ आई है; यह रुपया उसीने मुझे दिया है।"

"बड़ी अच्छी है तेरी माँ," रम्मन ने कहा।

"हाँ, अब मुझे तुम लोग मेरी माँ की गाली न दिया करना।"

"अबे, तू भी हमारी माँ को गाली दे लेना, क्यों जगनू?"

रम्मन ने यह कह जगनू के हाथ से रुपया ले लिया और उसे हथेली पर उछालने लगा।

कुछ क्षण के बाद जगनू और रम्मन ने यह फ़ैसला किया कि उस रुपये से अभी बाज़ार से इतना सामान खरीदा जाय—दो बंडल बीड़ी, एक दियासलाई, एक जोड़ी ताश, ग्यारह बीड़े पान और बाकी पैसों के चाट-कचालू।

और सब सामान खरीदा भी गया। सामान खरीदने बाज़ार में उन दोनों के संग सूरज भी गया था।

अहाते की टोली में पान बँटे, बीड़ी बँटी। रम्मन ने सूरज के भी होंठ पर बीड़ी जलाकर रख दी। एक ही कश में उसे उल्टी हो आई, और पान से उसका सारा कपड़ा रँग उठा।

इस हालत के अतिरिक्त जब वह दोपहर को घर लौटा, उसके सिर का घूमना बन्द न हुआ था।

ठीक होने पर शाम को जब उससे उसकी कैफ़ियत पूछी गई, तो वह एक चुप, हज़ार चुप रहा। ऐसे मौक़ों पर चुप हो जाना सूरज ने रम्मन से सीखा था। और जब रूपाबहू ने उससे रुपया माँगा तो उसने साफ़ कह दिया कि कहीं गिर गया। यह मन्त्र उसे जगनू ने दे रखा था।

इतना झूठ बोलने के बाद जब वह रात को बुआ के पास आया, तब उसके मन में फिर एक बात सूझी—बुआ झूठी है, कहती थी जो झूठ बोलता है, उसके दाँत टूट जाते हैं।

कहाँ टूट जाते हैं, झुट्ठी!

सूरज जब उन लड़कों के साथ बाज़ार में सामान खरीदने गया था, उसने चौक में दसिया को देखा था और उसे पहचान भी गया था। पुकारा था, और वह झट आ गई थी।

सूरज ने यह घटना बड़े मज़ेदार ढंग से बुआ और रूपाबहू के बीच सुनाई थी। इसे सुनकर रूपाबहू के मन में दुलिया की जो सुधि आई और उसके आधार पर जो दुलिया की तस्वीर खिंची, उसमें एक अटकी हुई पीड़ा थी। अगले दिन रूपाबहू ने दुलिया को बुला भेजा।

दुलिया की अब शादी हो गई थी, और वह खूब मोटी-तुलतुली होकर पति के घर से लौटी थी। रूपाबहू ने उसका खूब स्वागत किया, भोजन कराया, एक नई साड़ी दी, जम्पर का कपड़ा दिया, और शाम को जब वह अपने घर जाने लगी तब उसे पाँच रुपये और ढाई सेर गुड़ दिया।

दुलिया ने बहुत बातें की थीं—अपनी ससुराल की बड़ाई की, अपने पति की अच्छाई की, लेकिन पूरे दिन-भर की बातों में उसने कहीं भी राजू पंडित की बात न की थी; रूपाबहू ने उसे एक दिन कितना मारा था, इसकी भी छाप उसके मन पर कहीं न थी। वह सब कुछ भूल गई थी, जो उसके पीछे था। वह अतीत से असम्पृक्त थी, केवल वर्तमान की थी, इसीलिए वह इतनी खुशहाल और मस्त थी। रूपाबहू को दुलिया से स्पर्द्धा हो आई। वह दुलिया की तरह क्यों न हुई—उसीकी तरह ग़रीब, उसीकी भाँति एक आँख की कानी, और उसी जैसे भाव-लोक की।

उसे दुलिया से बड़ी प्रीति हो आई थी। दुलिया को उसने एक दिन इतना दण्ड दिया था, आज रूपाबहू को वह आत्म-दण्ड लग रहा था।

उसने मन में चाहा कि दुलिया फिर उसके घर नौकरी कर ले; इस बार उसकी तनख़ाह दूनी तक हो सकती थी, लेकिन दुलिया ने साफ़ कह दिया, "अजी, वह जो हैं, मुझे कुछ न करने देंगे। मुझे तो वह धूप और धुआँ दोनों नहीं लगने देते, कहते हैं, तू मैली हो जायगी, हाँ!"

चेतराम ने रूपाबहू की इच्छा के संकेतमात्र से अगले ही दिन घर

में एक नौकरानी रख दी। पर सूरज के मन का मेल इस नई नौकरानी से क़तई न था। वह जब तक सुबह रूपाचह्नू की आज्ञाओं में दौड़ लगाती, उससे बहुत पहले सूरज घर से ग़ायब हो जाता।

फिर एक और लड़का नौकर रखा गया, जिसे सूरज मार-मारकर अपने से दूर ही रखता था। उसे भी अच्छा लगता था। सूरज जब रम्मन, जगनू, ताले, कपूरी और रजुआ के साथ बाज़ार में घूमता, गलियों में चक्कर लगाता, तब वह नौकर अपने घर हो आता था।

चेतराम को बिलकुल फ़ुरसत न थी। चुनाव को लेकर वह दिन-रात चन्दनगुरु के साथ डोलता फिरता था। अब तक उसके काफ़ी रुपये ख़र्च हो चुके थे, और चुनाव में जीत जाने की उसकी पूरी-पूरी आशा बँध चली थी।

इस बीच अगर कुछ पौने सोलह आने वाली बात हुई थी, तो वह केवल यह थी कि चेतराम कुछ सट्टों में नुक़सान खा गया था। ख़ैर, सट्टे के बाज़ार में हार-जीत तो लगी ही रहती है।

इस बीच दिल्ली से गोरेमल के कई पत्र इस आशय के आये थे कि माल ख़रीदा जाय। अगर बिकता नहीं तो गोदाम भरे जायँ। गोदाम किराये पर लिये जा सकते हैं।

चेतराम इन बातों पर ध्यान न दे सका। अभी और मद्दी आयेगी, भाव और गिरेंगे—फिर अभी माल खरीदने से क्या फ़ायदा!

चेतराम को क्या गोरेमल से कम अनुभव है! वह क्या बाज़ार की नस नहीं पकड़ सकता! चेतराम जो कर दिखायेगा, बड़े-बड़ों की सूझ में वह बात न आयेगी।

चेतराम अब भाषण दे लेता है। सारी बस्ती पर उसका प्रभाव छा गया है। अब वह सेठ चेतराम चेयरमैन साहब कहलायेगा, फिर 'बिज़-नेस' में रंग चढ़ेगा। चेतराम का ख़ानदान सेठ-साहू से ऊपर उठकर साहब और चौधरी साहब की संज्ञा पा जायगा। फिर कोई नाम न ले सकेगा—'चौधरी साहब' कहेंगे लोग। नमस्ते साहू साहब!

होली का त्यौहार आया।

और चेतराम के घर में जैसे अनेक तरह से होली मनाई जा रही थी। स्वयं चेतराम समीप आये हुए 'इलेक्शन' के नशे में एकदम चूर था। चन्दनगुरु के संग हरदम जैसे चार बोतल का नशा लिये डोलता था। उधर वह लगातार कई सट्टों में हार गया था, और इधर बेहद मन्दी के कारण सट्टे के बाज़ार में भी पाला पड़ने लगा था। बस्ती की एक कहावत थी कि होली की आग से बाज़ार में गरमी फैलती है। चेतराम को इस सत्य का बहुत भरोसा था।

और जो सूरज था—चेतराम का मूलधन—वह अपने दोस्तों के संग पिछले दस दिन से गली-मुहल्लों में बेतरह होली मना रहा था। अपने झुंड में रंग और पिचकारी के साथ लड़कों के संग गाता फिरता था, 'सर बाँधे कफ़निया रे शहीदों की होली निकली।' एक ओर लड़के अँगरेज़ बनकर खड़े होते थे, दूसरी ओर भारतवासी और बीच में सूरज, रम्मन, जगनू और रजुआ वीर जवाहर, सुभाष, भगतसिंह बनते थे, फिर होली मचती थी। रोज़ चार-पाँच बार कपड़े ख़राब कर आता। रोज़ रूपाबहू के हाथ ख़ूब पिटता, पर वह नित्य चेतराम की गद्दी से पैसे मार लिया करता। गद्दी पर वह अपने पिताजी को अब बहुत कम ही पाता, लेकिन जब पाता तो उसे एक रुपया ज़रूर मिल जाता, और जब न पाता तो रम्मन की बताई हुई युक्ति से वह एक की जगह तीन पा लेता।

और रूपाबहू ?

पिछली रात, जब लोग होली जलाने जा रहे थे, वह अपने घर के पीछे वाले कमरे से बढ़कर खिड़की पर खड़ी थी। खिड़की बन्द ही थी, उसे खोलने की हिम्मत जैसे उसमें न थी। और वह बन्द किवाड़ों के बीच से गली में देख रही थी। लोग भीड़ में गाते-नाचते और गालियाँ देते चले जा रहे थे। एक साथ इतनी आवाज़ें मिलकर फैल रही थीं कि उनमें से कुछ भी साफ़ सुनाई नहीं पड़ता था। धीरे-धीरे जाने वालों का ताँता कम हुआ। लोग इक्के-दुक्के जा रहे थे। अन्त में पाँच-छः आदमी

बेतरह शोर मचाते हुए आये, ठाकुरद्वारे के सामने रुके और राजू पंडित के नाम से रूपाबहू का नाम जोड़कर अजीब भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगे।

रूपाबहू भाग खड़ी हुई। भीतर आँगन में आई। दम फूलने लगा। फिर भी उसे लग रहा था कि वह भद्दी गाली उसका पीछा कर रही है, और उसकी छाया बनती जा रही है। वह अपने कमरे में बन्द हो गई, फिर रुककर लेट गई। लोग होली जलाकर लौटने लगे। उनका शोर अब और भी बढ़ गया था। रूपाबहू के कमरे में वह पूरा शोर जैसे उसके बन्द किवाड़ों और खिड़कियों को तोड़कर आ रहा था। और उसे लग रहा था, वह समूचा शोर गाली है, जो इस मुहल्ले में केवल रूपाबहू को दी जा रही है। उस शोर में एक अजीब वाणी है, जिसके पूरे अर्थ उसीको समझने पड़ रहे हैं।

और यह मधू बुआ?

जिसके पति ईशरी ने आज तक उसे ख़त न दिया। खुरजा में, सास-ससुर की बात कौन चलाए! जब पति ही चुप है, उसे छोड़ गया है, फिर वे क्यों पूछें? खुरजा वाले क्यों सुध लेते? वे तो यह सोचकर दुश्मनी ठान बैठे हैं कि चुड़ैल बहू के कारण बेटा भी निकल गया।

पिछले दिनों दुकान पर खुरजा के दो व्यापारी आये थे। मधू बुआ ने किवाड़ के पीछे से बातें की थीं, और उनसे पता लगा था कि ईशरी बम्बई में है, क्रान्तिकारियों के दल में है, पूरे हिन्दुस्तान में मारा-मारा फिरता है। लेकिन उसका पता क्या है, क्या हाल है, मधू बुआ पूछती रही, पर उन व्यापारियों से कुछ भी तो पता नहीं लग सका। तब से हर शाम-सुबह मधू बुआ रोती है। और होली जलने की इस रात को तो उसकी दशा अजीब हो रही थी। कुछ उसके अंतस् में सुलग रहा था।

शाम से ही सूरज भी लापता था। संतोष भी नहीं आई। उसकी माँ की दशा बहुत ख़राब हो चुकी है।

भोर होते ही रंग की होली आरम्भ हुई। जी चुराकर मधू बुआ रसोई में जा बैठी और कुछ मीठे पकवान बनाने लगी। रूपाबहू इतनी निश्चेष्ट और उदास थी कि जैसे होली थी ही नहीं। घर में सूरज के साथ उसके सारे दोस्त आये थे—रंग में डूबे और अबीर-गुलाल से पटे हुए। मीता और गौरी ने सूरज की शरारतों की कई शिकायतें कीं, लेकिन रूपाबहू निर्विकार-सी रही।

मधू बुआ के मन में कहीं से बार-बार यह भाव उठता कि वह रूपा भाभी के संग होली खेलती, पर न जाने क्या था, जो उस भाव को झट दबोच लेता था।

रूपाबहू ने दादी और मधू दोनों को सुनाकर कई बार कहा था, "देखो, आज भी वह अपने दरवाजे पर नहीं।"

आठ बजते-बजते राजू पंडित आये, पीले वस्त्र पहने हुए। बायें हाथ में रंग से भरा पीतल का छोटा-सा कलश, और दायें हाथ में ठाकुरजी का होली का प्रसाद।

रूपाबहू नहाने जा रही थी। आँगन को बस पार ही कर रही थी, उसी समय एकाएक उसके सामने राजू पंडित आ गए। वह कुछ भी न सोच पाई, न कुछ कह सकी; बस माथा घूमने लगा और वह वहीं इस तरह बैठ गई, जैसे उसे किसीने तोड़कर बिठा दिया हो। उसे पता नहीं, राजू पंडित उस पर सारा रंग कब डाल गए; कब सबको प्रसाद देकर और क्या-क्या कह-बोलकर कैसे चले गए!

वह एकाएक तब जगी, जब उसके सामने सूरज आया, जिसके हाथ में राजू पंडित का दिया हुआ प्रसाद था और जिसे वह बड़ी तेज़ी से खा रहा था।

रूपाबहू जैसे जागकर उठ गई, सूरज पर झपटी; ऐसा झापड़ उसे दिया कि हाथ और मुँह दोनों से सारा प्रसाद कहीं दूर उड़ गया। सामने फिर गौरी भी पड़ी; वह भी राजू पंडित का प्रसाद खा रही थी। उसे भी पूरे क्रोध से मारा। चौके में झपटी, थाली में शेष प्रसाद रखा

था। थाली सहित उसे उठाकर आँगन में पटक आई। फूल की थाली के टूटने की आवाज़ में दोनों बच्चों के चीख़कर रोने के स्वर बिलकुल मिल गए।

और रूपावहू नहाना-धोना सब भूल गई। वह उसी तरह धधककर जलती हुई बैठी रही, जैसे वही होली थी, और कोई उसे जला गया था।

ठीक दोपहर के समय चेतराम अपने घर लौटा। बड़ी मस्ती से वह घर में घुसा, आँगन में आया।

घायल सिंहनी की भाँति रूपावहू ने उसे देखा, और होंठों पर कुछ बुदबुदाकर रह गई, जैसे वह अपने-आपको शाप दे रही हो।

"क्या बात है?"

चेतराम के मुँह से इतना निकलना था कि रूपावहू उस पर टूट पड़ी, "बेशरम कहीं के! चेयरमैन बनेंगे! तेरे घर में कोई भी चोर-डाकू घुस आए, कुछ भी लूट ले जाय, तुझे क्या!"

चेतराम को काटो तो खून नहीं। बस वह सुनता ही रहा।

"तेरे जीते-जी कैसे किसीकी हिम्मत पड़ी कि वह चोरों की तरह घुसकर मेरे आँगन में चला आये और मुझे भिगो जाय! गली-गली के भिखमंगे मुझसे होली खेलेंगे तेरे जीते!......तेरी ज़िन्दगी में सब बाहर-ही-बाहर है—बाहर ही है सब-कुछ तेरा—जा तू वहीं रह! तेरी बीबी, लड़की, लड़का, सब भाड़ में जायँ!"

चेतराम सामने से हट गया।

संध्या के चार बजते-बजते जब बस्ती के छोटे-बड़े बीसियों मुहल्लों, सवासौ गद्दियों और सोलहों दरवाज़ों के महाजन लोग, कच्चे और पक्के आढ़तिये, दलाल और मुनीम, ग्राहक और रोज़गारी लोग आपस में आ-जाकर बड़े प्रेम से होली मिल रहे थे, उस समय कटैली, रूपामऊ और सिधयाने इलाके के धीमरों की एक भीड़ चौड़ी सड़क से गुजर रही थी, जिसमें आधे से ज़्यादा लोग नाचते हुए गा रहे थे मस्त

दीवाने, जिसमें दस-बारह छोकरे ज़नाने वेष में थे, आठ-दस लोगों की कमर में बड़े-बड़े ढोल, नगाड़े और चार-छः के हाथ में बड़े-बड़े झाँझ थे, गन्दे-गन्दे, मटमैले और रंग से पुते हुए। इतनी बड़ी भीड़ में मूल गायक एक सत्तर वर्ष का बूढ़ा था, जो एक अद्भुत गति से गीत की कड़ी उभारता था। और फिर शेष गाने वाले उस कड़ी को अपने-अपने स्वरों में उठाकर इस तरह वातावरण में बो देते थे कि लगता था कि हवा, सूर्य की वह रोशनी, बस्ती की वह समूची खुशबू, अजीब, मोहक और भरी-भरी ख़ुशबू, जिसमें गुड़, गल्ला, घी, मिठाई, सीरा, तेलहन और सड़े हुए बोरों तथा गोबर की गंध मिली रहती थी, अपने सड़े पंख को खोलकर आकाश में उड़ रही है—धुल जाने के लिए, निर्मल और स्वच्छ हो जाने के लिए!

लगता था, सब नाचने वाले कच्ची शराब पिये हुए हैं, सब बजाने वाले भर-पेट ताड़ी पिये हुए हैं, लेकिन वह बुड्ढा न जाने क्या पिये हुए है जो सबके बीच में एक हाथ कान पर रखकर और एक हाथ नाचने वाले (वाली) के कन्धे पर रखकर इतने मोहक स्वर में गा रहा है—

> देवरा मैं तेरी भौजइया
> नैना तोहीं से लागे।
> कुट्टी करों तेरो भइया, नैना तोहीं से लागे
> मैंने मना करी रे देवरा पाँच बजे मत अइहो
> धोरे सोवै तेरा भइया, नैना तोहीं से लागे!

इन मस्त पागलों का नाचता हुआ दस्ता ऊँची हवेली, साहू गुरुचरनलाल के दरवाज़े पर जा रहा है। वे राजा ज़मींदार हैं, ये असामी रिआया हैं उनकी। ये उन्हें अपने जीवन की सर्वोत्तम उन्माद के क्षण भेंट करने जा रहे हैं। ये अपने गीतों-भरे नृत्य, अपनी बेहोशी के तान उन्हें नज़र करने जा रहे हैं। वहाँ इन्हें एक-एक बंडल बीड़ी, पाव-पाव-भर गुड़ और डेढ़-डेढ़ पाव कच्ची शराब के दाम मिलेंगे। लेकिन यूँ ही

नहीं, यह सब तब मिलेगा जब इनमें से कुछ लोग बेदम होकर ज़मीन पर धर लेंगे, जब ये नाचने वाले छोकरे बेहोश हो जायँगे और जब यह बदमाश बुड्ढा मुँह से शराब बहाने लगेगा, तब। अबे, जीतकर कैसा इनाम, राजा के सामने हारकर इनाम ले!

रूपाबहू किवाड़ की ओट से यह भीड़ देख रही थी और पसीने से तर होती जा रही थी। अगले जन्म में वह भी कटेली, रूपामऊ और सिधयाने जैसे किसी गाँव में पैदा होगी, किसी धीमर की बेटी, किसी धीमर की दुलहन होगी, जिसका पति इसी तरह नाचेगा, इसी तरह साहब का गंदा टोप लगाये गाएगा, और ज़रा-सी गलती पर जिसका पति चमड़ी उधेड़ लेगा, हाथ-पाँव काट लेगा। एक मुट्ठी में जीवन, दूसरी में मौत! यह क्या, न जीना न मरना!

मधू बुआ ने रात को चेतराम को बता दिया कि राजू पण्डित होली खेल गए हैं।

चेतराम अपने में क्रोध लाने का प्रयत्न करने लगा, पर उसमें कोई भाव उठता ही न था। उसके सामने यह सत्य अपने चारों पावों पर खड़ा होकर उसे समझा देता कि यह कोई नई बात तो नहीं। राजू पंडित तो पिछले दस वर्ष से हर होली की सुबह रूपाबहू पर रंग डालने आता रहा है, और गद्दी से उसके सवा पाँच रुपये दक्षिणा के भी बँधे हैं।

अगले दिन, दोपहर के बाद, मधू बुआ ने गौरी और सूरज को खूब मल-मलकर नहलाया, उन्हें नये-नये कपड़े पहनाये। सुबह वे दोनों बच्चे माँ के हाथ से इतनी बुरी तरह पिट गए थे कि वे अब भी रूपाबहू को देख-देखकर रोने को हो आते थे।

आँगन में बढ़कर रूपाबहू ने सूरज और गौरी को बेहद दुलार से देखा, और उन्हें एक साथ अंक में भर लेने के लिए वह आतुर-सी हुई। तभी सूरज ने गौरी को अपने पीछे छिपाकर माँ को बड़े आवेश में देखा, "हट, हम नहीं आयेंगे तुम्हारे पास!"

"क्यों?"

"तुम बहुत मारती हो !"

"तुम भी मुझे खूब मारना, हाँ !" यह कहती हुई रूपाबहू का स्वर पिघल गया। वह फफककर रो पड़ी, और उन रूठे हुए बच्चों को अपने संग लिये कमरे में चली गई।

रात को उन दोनों बच्चों को भोजन कराने के लिए रूपाबहू स्वयं गई। बुआ चौके में बैठी प्रसन्नता से उन्हें देख रही थी। भोजन के बाद माँ सूरज को पानी का गिलास देने लगी। उसने छूटते ही कहा, "मैं गिलास का पानी नहीं पिऊँगा।"

"क्यों रे ?" बुआ भी पास आ गई।

"बोतल का पानी पिऊँगा," सूरज ने कहा, "दुकान वाले कमरे में पिताजी चन्दनगुरु के साथ बोतल का पानी पी रहे हैं, हाँ ! मैं भी पिऊँगा। यह पानी नहीं पिऊँगा मैं !"

माँ का माथा ठनका, श्री-हत हुई।

उस घर में आज तक किसीने शराब छुई तक न थी। प्याज-लहसुन का कोई स्वाद तक न जानता था। पता नहीं सूरज की बात में कितनी चोट थी कि अनजाने ही सब घबरा गए।

९

सूरज रोता हुआ घर लौटा। बुआ ने समझा कि लड़कों से लड़ाई हुई है। पर उसीसे पता चला कि संतोष बहुत बीमार हो गई है। काशीपुर से उसके मामा आये हैं। अब संतोष माँ के संग अपने मामा के यहाँ चली जायगी। बुआ से न रहा गया। जाकर देखा, सत्तो को सचमुच बहुत तेज़ बुखार था। माँ से अलग वह दूसरे कमरे में लिटाई गई थी। माँ और बेटी दूर, दो अलग कमरों में। और बीच में मुहल्ले के कुछ लोग आ खड़े थे, जो एक स्वर से राजू पंडित को समझा रहे थे कि शारदा को किसी अस्पताल में भरती कराओ, उसकी उचित दवा हो,

उसे कहीं पहाड़ पर ले जाओ। पर राजू पंडित के पास कोई उत्तर न था। उनके पास केवल ब्रह्म था, जिससे वह सबके मुँह पर ताले लगा देते थे।

शारदा ने अपने भाई को बुलाया था। वह ख़त बुआ ने ही लिखा था। उसमें शारदा ने साफ़-साफ़ लिखवा दिया था कि वह राजू पंडित के घर नहीं मरना चाहती। वह काशीपुर में मरेगी—वहाँ किसीका भी मुँह देखकर, जिससे वह मौत के बाद मुक्ति पा जाय। लेकिन पिछली शाम से ही मामा और राजू पंडित का संघर्ष चल रहा था। राजू पंडित किसी भी तरह शारदा और सत्तो को काशीपुर नहीं भेजना चाह रहे थे। बार-बार अपने घर की शान्ति के लिए सवा लाख गायत्री-मन्त्र के प्रयोग की बात रख रहे थे।

मधू बुआ जब संतोष के कमरे में पहुँची उस समय इसी संघर्ष से सारा घर गूँज रहा था।

सत्तो के तपते माथे पर बुआ की चन्दन जैसी हथेली मानो काँप-सी गई।

बुआ ने अत्यन्त कोमल स्वर में पुकारा, "सत्तो, ओ सत्तो!"

वह चुप थी—जैसे बेहोश!

तभी सूरज ने आवाज़ दी, और सत्तो की बन्द भारी पलकें जैसे ही खुलीं, वे सब आँसू ढुलक पड़े जो न जाने किस सागर में बन्द थे। उसने बुआ को देखा, सूरज को कुछ इस तरह देखा, जैसे वह उससे नाराज़ हो, कोई उलाहना हो उससे। पर कहीं भी जैसे उसमें कोई मूर्त स्वर न था,-और बरबस उसकी आँखें फिर मुँद गईं।

सूरज वहीं बैठा रहा, और बुआ शारदा के पास चली गई। उस कंकाल में न जाने कहाँ से इतनी जीवन-शक्ति बरस पड़ती थी कि आश्चर्य होता था। वह तपाक से उठ बैठी। वह खुलकर बोल नहीं पाती थी, सारी आवाज़ साँय-साँय के रूप में उभरती थी, और उसके भी ऊपर वही भयानक खाँसी, जो अब पहले से बहुत कम आती थी,

पर जितनी भी जब-जब आती थी, उस झुके हुए अस्थि-पंजर को मथ देती थी, जैसे खाँसी उसके अवशेष को भी चूस रही हो।

पर सच, इन सबके ऊपर थी शारदा माँ की जीवन-शक्ति !

बुआ को सामने पा वह बरसने-सी लगी। पता नहीं उसके पास बोलने और कहने के लिए कितनी बातें थीं, और वह सब क्यों कह डालना चाह रही थी। जब साँय-साँय भी गूँगी हो जाती, तब वह हाथ-आँख के संकेतों और मुद्राओं से कहती, और जब वे भी ठंडे हो जाते, तब शारदा माँ सूखी लकड़ी के बँधे बोझ की तरह गिर पड़ती, पर चुप तब भी न होती, आँखें बरसती रहतीं, बरसती रहतीं। कुछ देर चुप खड़ी रहकर बुआ कमरे से बाहर जाने को हुई, पर शारदा ने हाथ के संकेत से उसे रोक लिया। वाणी पाने के लिए अपने में शक्ति संजोने लगी, और बहुत प्रयत्न के बाद उसके स्वर में कुछ तैरा, "मधू बेटी, अब मैं यहाँ से चली जा रही हूँ, सत्तो को भी ले जाऊँगी।"

"वह तो बहुत बीमार है।"

"अपने मामा के यहाँ अच्छी हो जायगी।"

एकाएक आवाज़ फिर गूंगी हो गई, और शारदा पता नहीं क्या कहने के लिए छटपटाने लगी।

संकेत से बुआ के दायें कान को अपने होंठों के पास ला उसने टूटते स्वर में कहा, "सन्तोष अकेली रह जायगी, मधू बेटी !"

बुआ चुप थी, और शारदा बिना स्वर और आवाज़ के वाचाल। और एक बार उसकी साँय-साँय में कुछ तैरा, "बेटी, ख़ूब प्याज़ और लहसुन डाली हुई गरम-गरम आलू-कटहल की सब्ज़ी और बासमती चावल का भात, ऊपर से आम-मिरचों का अचार।"

मधू बड़ी तेज़ी से सन्तोष के कमरे में गई, देखा तो भर गई—सूरज सिरहाने झुका हुआ सन्तोष का सिर दाब रहा था। बुआ को देखते ही वह लिपटकर रो पड़ा।

"अरे ! सत्तो अच्छी हो जायगी रे ! देखना, भगवान् उसे अच्छा

करेंगे।"

बुआ के संग वह चुपचाप घर की ओर मुड़ा। ठाकुरद्वारे के पास आकर खड़ा हो गया, "भगवान् अच्छा करेंगे बुआ! उन्होंने ही बीमार किया है क्या?"

और बुआ से छिपकर वह दौड़ता हुआ ठाकुरद्वारे में घुस गया; मूर्ति के सामने घुटने टेक नतशिर हो गया, कुछ बोला नहीं, कहा और, पढ़ा भी नहीं, बस निःशब्द रोने लगा।

तेरहवें दिन सन्तोष अच्छी हो गई, पर बेहद कमज़ोर थी। सूरज को उतावली थी। वह सन्तोष को अपने घर ले जाना चाहता था। अंग्रेज़ी स्कूल में उसका नाम लिखा दिया गया था। घर पर भी उसे मास्टर चन्दूलाल पढ़ाने लगे थे। सूरज सन्तोष को अपने घर लाकर उसे दिखाना चाहता था कि वह किस तरह मास्टर चन्दूलाल को दस बीड़ी देकर टरका देता है।

अगले दिन सुबह सूरज आठ बजे तक सोता रहा। उसके घुटने में बड़ी चोट लगी थी। पिछले दिन रम्मन से उसकी बड़ी घनघोर लड़ाई हो गई थी, और रात, उस लड़ाई से प्राप्त घुटने के दर्द ने उसे एक बजे तक जगा रखा था।

हाथ-मुँह धोकर जब वह खेलने की बात सोचने लगा, तब उसने निश्चय किया कि आज-कल-परसों वह कहीं नहीं जायगा, सन्तोष के संग रहेगा।

इस निश्चय के बाद वह बड़ी तेज़ी से बढ़ा, गली में दौड़ा, जैसे घुटने का दर्द भूल गया हो। उधर से अकेली मधू बुआ आ रही थी। उसने भागते हुए सूरज को रोकना चाहा। कुछ बहुत तेज़ी में कहा भी, पर सूरज का बीच में कहाँ रुकना!

पर वहाँ दरवाज़ा बन्द था, बाहर से बन्द, जैसे कि सब कहीं

चले गए हों, सब चले गए हों। पर सत्तो कहाँ है ?

आवेश में लौटा हुआ वह बुआ के पास आया, "सत्तो कहाँ है ?"

बुआ चुप थी।

"बोल, बताती क्यों नहीं ?"

"माँ के संग अपने मामा के यहाँ चली गई।"

"चली गई !" सूरज जैसे सन्न पड़ गया, वह अचंचल, निस्पंद खड़ा था। फिर सहसा क्रोध से भरकर बुआ से बातों-बातों में लड़ गया। लड़ने से अधिक वह रो-रोकर अशक्त हो रहा था।

चेतराम के चुनाव का दिन सिर पर आ गया। वोट पड़ने के चार ही दिन शेष थे। दुकान के दोनों मुनीम रामचन्दर, सीताराम, तीनों नौकर हीरा, मनोरथ, श्यामलाल और अपने सारे दलाल, विशेषकर बिहारी, नैनू और कुंसामल तथा सारे कच्चे आढ़तिये, मुख्यतया छीतरमल, गिरधारीलाल और दयाराम मशीन की तरह चुनाव की तैयारी में लगे थे। मास्टर चन्दूलाल बस्ती के घंटाघर के पास रोज़ शाम के साढ़े छः बजे से रात के आठ बजे तक चेतराम के मंच से भाषण दिया करते थे। गद्दी से उन्हें अब तीन रुपये रोज़ मिलने लगे थे। चेतराम चन्दनगुरु के संग बस्ती-भर में चक्कर काटता फिरता था। खर्च दो बोतलों से बढ़कर आज सोलह तक पहुँच गया है, पैदल चलने वाले टैक्सी और ताँगे के आदी हो चुके हैं। जिस दिन चुनाव होने जा रहा है, उससे पिछली रात को मौलवी मुहम्मद शकूर कब्रिस्तान में दो मुर्गे ज़बह करेंगे। उनके संग बड़ा दरवाज़ा के सारे मुसलमान जुमा-मस्जिद में चेतराम की जीत के लिए नमाज़ पढ़ेंगे। राजू पण्डित के ठाकुरद्वारे में चुनाव की समाप्ति तक अखंड हरिकीर्तन चलेगा। घी के सवासौ चिराग़ अनवरत जलेंगे। अखंड मौन धारण करके राजू पंडित उधर गायत्री के सवा लाख मन्त्रों का जाप करेंगे।

चन्दनगुरु ने अपने घर के छज्जे पर क़रीब-क़रीब पाँच-छः सौ कबूतर पाल रखे थे। चुनाव के दिन सब कबूतरों की गरदन में 'चेतराम ज़िन्दाबाद' की चिट बाँधी जायगी।

अकस्मात् अगले दिन अपने मुनीम को लिये दिल्ली से गोरेमल आ टपका। शाम का समय था, और गद्दी सूनी पड़ी थी। न चेतराम, न उसके मुनीम, न कोई नौकर-चाकर। लेकिन पता नहीं कहाँ से उस समय गद्दी पर निरा अकेला सूरज फोन पर झुका बैठा था। गोरेमल को देखते ही उसने नमस्ते की और घर में ख़बर फैलाने के लिए दौड़ा।

गोरेमल आश्चर्य में खड़ा रहा। उसे कुछ सूझता ही न था कि आख़िर बात क्या है! दुकान और गद्दी सूनी क्यों है? उसने बढ़कर दुकान और गद्दी पर रोशनी कर दी। फिर फोन की घंटी बजी। गोरेमल ने फोन उठा लिया। अमृतसर का व्यापारी ढाई सौ मन बाजरा और दो सौ मन खाँड की बातचीत कर रहा था।

गोरेमल ने व्यापारी से सौदा करके फोन को इतने ग़ुस्से से रखा कि साथ में आया हुआ मुनीम घबरा गया। उसी समय सूरज आया।

गोरेमल ने बड़े डरावने स्वर में पूछा, "कहाँ हैं सब लोग?"

"इलेक्शन में लगे हैं।"

"इलेक्शन, कैसा इलेक्शन?"

"पिताजी चेयरमैनी के लिए······!"

"क्या? क्या कहा?"

गोरेमल की मुद्रा से ऐसा लग रहा था, मानो वह अपने-आपको काट खाएगा, पीसकर पी लेगा जो उसके सामने पड़ेगा। पर सूरज बड़े संयम और विश्वास से खड़ा था, और गोरेमल के एक-से-एक जलते हुए प्रश्न का सही-सही उत्तर देता जा रहा था।

और जब क्रोध ने गोरेमल की वाणी बन्द कर दी और वह पागलों की तरह दुकान में सिर्फ़ चक्कर काटने लगा, तब सूरज भगा वहाँ से

और बाज़ार में जा खड़ा हुआ। चौक से होता हुआ वह सीधे उसी साँस में महाजनटोला पहुँच गया।

थोड़ी देर बाद गोरेमल थककर दुकान से उतर सड़क पर आ खड़ा हुआ, अगले चौराहे तक बढ़ आया। पास और दूर, चारों ओर मोटी-मोटी आवाज़ें फैल रही थीं। तीन स्वर, तीन बोलियाँ—

चेतराम ज़िन्दाबाद, चेतराम को वोट दो!

चौधरी रामनाथ ज़िन्दाबाद, चौधरी साहब को वोट दो!

गुलज़ारीलाल ज़िन्दाबाद, गुलज़ारीलाल को वोट दो!

गोरेमल ने खड़े-खड़े विचार किया कि पहला स्वर, पहली बोली पूरी बस्ती में सबसे ऊपर उभर रही है, अन्य दो स्वर उसके नीचे दबे हैं। एकाएक उसी क्षण दुकान के दो नौकर हिरनू और मनोरथ दिखाई दिए। गोरेमल से नज़र मिलते ही वे दोनों जैसे सूख-से गए। उलटे पाँव ज़रा छिपते हुए पास की गली में मुड़ने लगे, लेकिन गोरेमल से वे बच न सके, उन्हें बँधी गाय की तरह पीछे-पीछे आना पड़ा।

गद्दी पर बैठकर उसने बड़े ठंडे स्वर में कहा, "तुम्हारे मालिक लोग कहाँ हैं, लाला चेतराम! बोलो। मुनीम लोग कहाँ हैं? अच्छा बैठो, वे सब अभी आ जायँगे।"

कुछ देर बाद सूरज के संग दोनों मुनीम भी आये। दुकान में घुसते ही जब उनकी दृष्टि गद्दी पर मौन बैठे हुए गोरेमल से मिली, उस क्षण उनके पैर तले की धरती ही खिसक गई। हाथ-पैर दबाये दुकान में वे इस तरह चुपचाप सिमटकर बैठ गए, जैसे जाड़े की रात में कोई रोगी कुत्ता। अपराधी की तरह सब चुपचाप बैठे थे। सिर उठाए केवल सूरज बारी-बारी सबकी आँखों को देख रहा था, जैसे वह उस भयानक सन्नाटे में कुछ देखने और समझने का प्रयत्न कर रहा हो।

उसी तरह, ठीक उसी मुद्रा में धीरे-धीरे रात के नौ बज गए, फिर चेतराम आया—बेहद थका और चुनाव के नशे में धुत! एक हाथ में कुछ लिपटे हुए कागज़, दूसरे में सिगरेट का टिन और दियासलाई।

भ-ुक में ही उसकी नज़र दुकान की ओर गई, फिर गद्दी पर जाकर टिक गई और जैसे उसका अस्तित्व ही काँप गया। पता नहीं, वह किस शक्ति से दुकान में पहुँचा और गोरेमल के सामने जा खड़ा हुआ।

तब गोरेमल का विष फूटा, सबसे पहले नौकरों पर। उन्हें पास बुलाकर कहा, "जाओ, तुम सब को नौकरी से छुट्टी। भाग जाओ यहाँ से, गोरेमल अभी ज़िन्दा है! यह मत समझो कि वह मर गया!"

हुम दबाए नौकर चले गए। फिर गोरेमल खड़ा हो गया और बेचैनी से चक्कर काटने लगा। एकाएक रुककर उबला, "आख़िर तुम लोगों ने समझा क्या है? गोरेमल मर गया, यही न! लेकिन कान फाड़कर सुन लो, गोरेमल एक नहीं सात जन्म तक नहीं मरेगा, क्योंकि उसे पता है कि वह क्या है, और वह उसी दायरे में चलता है। मरोगे तुम सब! समझो कि मर गए तुम लोग।"

एकाएक गोरेमल रुक गया। क्रोध से उसकी आवाज़ लड़खड़ा गई; फिर वह कसकर चीख़ा, "कल सुबह गोरेमल की यह दुकान बन्द हो जायगी! हुँ! गोरेमल चेतराम फ़र्म, गोरेमल चेतराम—बैंकर्स एण्ड कमीशन एजेण्ट! हुँ! कल से यह फ़र्म नहीं रहेगी! ख़त्म हो गई आज!"

गोरेमल दुकान से बाहर निकल आया—जहाँ चुपचाप सूरज बैठा था। उसे आठ आने पैसे निकालकर दिये, "जाओ, मेरे खाने के लिए बाज़ार से पूरी सब्ज़ी ले आओ!"

सूरज वहाँ से चला गया। लेकिन अपने पीछे गोरेमल की आवाज़ सुनकर वह बाज़ार न जा सका। सड़क पर छिपकर वहीं खड़ा-खड़ा कुछ देर तक सुनता रहा, "कल के बनिये आज के सेठ! दिमाग़ उलट गया! पेट में बल पड़ गए! चरबी बढ़ गई! चेयरमैन बनने चले हैं! देखूँगा, जब कल से भीख माँगते फिरोगे। ओफ़ ओ! तभी तो मैं समझ नहीं पाता था कि दुकान में आग क्यों लगी है!......तुम ख़ुद जलो चेतराम, पर मेरी दुकान में आग नहीं लग सकती! गोरेमल ने ख़ूब ज़माने देखे हैं। कोई माई का लाल गोरेमल को धोखा नहीं दे

सकता ! यह ग़ौर करने की बात है !"

गोरेमल फिर चुप हो गया, नफ़रत से चेतराम को देखता रहा, और ठंडी साँस लेकर गद्दी पर बैठ गया, "नालायक़, जा तेरी क़िस्मत फूट गई !"

इस तरह गोरेमल पूरे ढाई घंटे तक उफन-उफनकर बकता रहा, सुलग-सुलगकर भद्दी-से-भद्दी बातें और गालियाँ सुनाता रहा। झुँझला-झुँझलाकर जैसे बौखला गया था। सूरज को स्वभावतः बाज़ार से पूरी लाने में देर हो गई थी। गोरेमल ने उस पर भी आक्रमण किया।

भोजन करते समय भी वह चुप न था। उसकी हर बात घाव करने की शक्ति रखती थी।

रात का एक बजने को आ रहा था। गोरेमल थककर चुप हो गया था, और उसी तरह गद्दी पर ऐसे अधलेटा पड़ा था जैसे उसे ख़ुद भी किसी घाव का दर्द है।

तब ज्वार थम गया। तूफ़ानी समुद्र की फेनिल लहरें चेतराम के शान्त-मूक, निस्पंद-स्थूल तट से टकरा-टकरा, थककर चूर हो गईं और भाटे के संग वापस चली गईं।

सूरज को गोरेमल ने कई बार डाँटा कि वह जाकर सोये, पर वह वहाँ से टलकर दुकान के बाहर भरे बोरों के छल्लों के बीच छिपा बैठा रहा। घर में भी सब त्रस्त थे। रूपाबहू, मधु बुआ और मंगूदादी तीनों सामने खिड़कियों में बैठी हुई सब सुन रही थीं, जैसे किसी अभियोगी का सारा परिवार कोई फ़ैसला सुन रहा हो।

जब सब शान्त हो गया और गोरेमल को ज़रा-ज़रा-सी नींद आने लगी, तब चेतराम ने सिर उठाया, और दोनों मुनीम भी हिले-डुले। दुकान के सारे वातावरण में जो तनाव था, वह ज़रा-ज़रा-सा ढीला हुआ। फिर एकाएक चेतराम ने बढ़कर गोरेमल के पैर पकड़ लिये, और फूट-फूटकर रोने लगा।

पैर छुड़ाकर गोरेमल तपाक से उठ बैठा, "हुँ ! रोने चले हैं ! अब

क्या होगा रोने से ! मैं पूछता हूँ, यह इलेक्शन लड़ने की भयानक सलाह तुझे किसने दी ? कौन है वह दुश्मन ? ज़रा ग़ौर करने की बात है !"

"बस्ती की जनता चाहती थी," चेतराम ने रुँधे कंठ से कहा।

"बस्ती की जनता चाहती थी !" गोरेमल ने स्वर को बुरी तरह पीस डाला, "बस्ती की जनता तुझे भिखमंगा देखना चाहती है। गोरे-मल-चेतराम की यह शानदार फ़र्म बस्ती के दिलों में कील की तरह चुभ रही है। इसे निकाल फेंकने का केवल यही तरीक़ा है कि तुम जैसे बुद्धू को इलेक्शन में झोंक दिया जाय !"

चेतराम ने दबे स्वर में कहा, "मैंने सोचा, चेयरमैन बनने से अपना 'बिज़नेस' चौगुना हो जायगा, और ख़ानदान की इज़्ज़त बढ़ जायगी।"

"चौगुना हो जायगा ! इज़्ज़त बढ़ेगी !" गोरेमल के स्वर में व्यंग्य घृणा-भाव में बदलने लगा, "ख़ूब इज़्ज़त बढ़ेगी ! क्यों नहीं ! फ़र्म में ताले लग जायँगे ! और तू जेल में होगा ! बेवक़ूफ़ ! गाँठ बाँध ले। यह सारी बस्ती दुश्मन है एक-दूसरे की ! जब एक मरेगा तभी दूसरे का व्यापार बढ़ेगा !...ओफ़, गोरेमल की फ़र्म ! गोरेमल की फ़र्म ! ज़रा ग़ौर करने की बात है !" एकाएक गोरेमल क्रोध में उफन पड़ा, "उल्लू के पट्ठे ! आज दो साल से मैं तुझे क्या कहता चला आ रहा हूँ ? अख़बार पढ़ता है न ? सुनता है कि नहीं ! कुछ समझता भी है ! बोल !"

"समझता हूँ," चेतराम ने अभियुक्त स्वर में कहा, "ज़माना बदलने वाला है, तभी मैंने सोचा कि चेयरमैन बनकर.....।"

"डाके डालूँगा, यही न !" गोरेमल ने तुरन्त बात काट दी, "क्यों नहीं ! बिलकुल ठीक। ज़रा ग़ौर करने की बात है ! बाप-दादों ने कभी 'बिज़नेस' की भी है ! अरे, 'बिज़नेस' छिपकर होती है, जैसे जंगल के शिकारी का शिकार !.......नाम बढ़ाकर, फ़ैशन बनाकर, ऊँची दुकान सजा, अपने नाम का ढिंढोरा पीट, बड़े-बड़े आदमियों से दोस्ती

करके, 'बिज़नेस' नहीं चलती! तब तो आदमी नंगा हो जाता है। लक्ष्मी उठ जाती है वहाँ से। बस नाम, फैशन, इज़्ज़त और आबरू लेकर चाटा करो! मूर्ख! जब पास लक्ष्मी नहीं तो समझो कुछ नहीं।...... जानते हो गोरीमल यहीं बैठे-बैठे दसियों चेयरमैन खरीद सकता है! बड़े-बड़े लीडर हाल-चाल पूछने आते हैं!......खुशबू रुपये में होती है, फूल में क्या! दुनिया की सारी खूबसूरती, सारा ऐशो-आराम उस मुट्ठी में है जिसमें रुपया है!......मानता है कि नहीं?"

"मानता हूँ," चेतराम पसीने से तर हो रहा था।

"तो छोड़ दे अपना इलेक्शन!"

चेतराम पीला पड़ गया। उसके चेहरे से ऐसा लग रहा था कि वह कितने ही दिन का रोगी है! वह मुरदा आँखों से शून्य में देखता रहा और उसके कानों में गोरीमल की आवाज़ टकराती रही, "इलेक्शन छोड़ दे! बैठ जा! छोड़ना होगा, बैठना होगा!"

"बस्ती के सारे वोट अपने हाथ में आ गए हैं," चेतराम जैसे अपने ईश्वर से कह रहा हो, "विजय है अपनी!"

"मैं कहता हूँ, सब छोड़ दो! सब छोड़ना होगा! तुम्हारा वह रास्ता ही नहीं! जिसे तुम अपनी विजय समझ रहे हो, वह उसी तरह की भयानक हार है जो दुर्योधन से युधिष्ठिर की हुई थी। और यह बस्ती के वोट, यह शकुनी की चाल है चाल! समझे सूरख-नादान!"

"मैं बस्ती में मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाऊँगा।"

"रहोगे, और भी ठाठ से रहोगे! उसका उपाय गोरीमल के पास है।"

चेतराम ने गोरीमल को अपलक देखा, फिर कहा, "बहुत रुपया भी खर्च हो चुका है!"

"कितना खर्च हुआ है, मुनीम, बताओ झटपट!"

सारा हिसाब जोड़-घटाकर मुनीम ने बताया, "सात सौ तेरह रुपये बारह आने नौ पाई!"

"कोई परवाह नहीं ! समझ लो कि एक सट्टे में हार हो गई !" एकाएक गोरेमल चुप होकर कुछ सोचने लगा, फिर हड़बड़ाकर बोला, "लेकिन हार क्यों ? गोरेमल का रुपया हार खा जाय, लानत है गोरेमल की सूझ पर ! सात सौ तेरह रुपये बारह आने नौ पाई के वह दो हज़ार बनाएगा और चेतराम का माथा भी उठा रह जायगा !"

क्षण-भर में गोरेमल का सारा भाव ही बदल गया। सारी मुद्रा झट इस तरह बदल गई, जैसे वह हो ही नहीं। चेतराम को उसने और नज़दीक बिठा लिया, मुनीमों को पास कर लिया, फिर गम्भीरता से मन्त्रवत् बोला, "बेच दो सब वोट !......तुम्हारे ख़िलाफ़ उठे हुए उन दोनों लोगों में ज़्यादा ताक़तवर और मालदार कौन है ?"

"लाला गुलज़ारीलाल के पास पैसा अधिक है," चेतराम ने बताया, "*लेकिन इलेक्शन की ताक़त चौधरी रामनाथ के पास है।*"

"हमें ताक़त से क्या मतलब, हमारा काम पैसे से है ! जाओ, अभी गुलज़ारीलाल को बुला लाओ !"

"अभी ! इस समय !" शेष तीनों व्यक्तियों ने आश्चर्य से देखा।

"और क्या ! ऐसे काम तुरन्त हों, यह तो गुड़ की पाग है, ज़रा-सा रुके कि सब मिट्टी ! यह सारा काम इसी अँधेरी रात के सन्नाटे में हो जाय। और सुबह की हवा से सारी बस्ती में फैल जाय कि चेतराम लाला गुलज़ारीलाल के पक्ष में बैठ गया।"

और सचमुच सौदा हो गया। रात बीतने को आ रही थी। सूरज जागता-जागता बोरों की छल्लियों के बीच उसी तरह सो गया था। रूपा, बहू और मंगूदादी खिड़कियों पर बैठी-बैठी वहीं ज़मीन पर लुढ़क गई थीं। केवल मधु बुआ को नींद नहीं आई थी।

मुनीम लोग घर चले गए। लाला गुलज़ारीलाल को घर तक छोड़ने के लिए चेतराम स्वयं गया।

और जिस समय वह अकेला हुआ तथा उसके पैर घर की ओर बढ़े, उस समय उसे लगा कि किसीने उसकी आँखों में पट्टी बाँध और

गला दबोचकर उसे किसी गंदी नाली में डाल दिया है ।

घर की ओर उसके पैर बढ़ते ही न थे, जैसे वे पैर उसके न हों। वह बिना पैर का है। वह केवल एक घिनौना-सा पिंड-मात्र है—असहाय ग़रीब। वह बुरी तरह से मस्त था, उसे लग रहा था कि उसके घर के दरवाज़े पर चन्दनगुरु बैठा है, जो उसे देखते ही दबोच लेगा।

सूरज कहाँ है ? किसके संग, कहाँ सोया है ? बुआ और भी दुखी थी। सारा घर उसने छान डाला, पर कहीं पता नहीं। फिर रात के उस अन्तिम पहर में बुआ रो पड़ी। और उसी क्षण सूरज की आँख खुल गई। वह दरवाज़े से टकराया, आँगन में आ गिरा और फिर बुआ के पास आ पहुँचा।

बुआ शान्त हो गई, पर कुछ बोली नहीं। सूरज को संग लिये वह चुपचाप घर से निकली, और लाला गुलज़ारीलाल के मुहल्ले की ओर बढ़ी। एक चौराहे के बाद अगले तिराहे पर कोई पागलों की तरह चुप-चाप खड़ा था।

सूरज ने झट पहचान लिया, और दौड़कर चेतराम से लिपट गया। तीनों चुपचाप घर की ओर मुड़े। उस अन्धेरे में सूरज बार-बार कभी बुआ का मुँह देखता, कभी चेतराम का। फिर वह आग्रह से पूछ बैठा, "नाना तुम्हें क्यों इस तरह डाँटते हैं पिताजी ? मैं उनके यहाँ कभी नहीं जाऊँगा। माताजी को भी नहीं जाने दूँगा, हाँ ! नाना कहीं के लाटसाहब थोड़े हैं, हैं तो नाना ही न ! नहीं, मैं उन्हें नाना भी नहीं कहूँगा। सबके नाना तो प्यार करते हैं, दुलार करते हैं। यह नाना नहीं गोरेमल है !...क्यों पिताजी, यह गोरेमल कौन है ? बताइये न, कौन है यह ? गोरेमल होगा अपने घर का ! यह तो हमारा घर है।"

मधू बुआ निःशब्द रो रही थी और चेतराम चुपचाप आँसुओं को पीता चल रहा था। सनातन धर्म मन्दिर में अखण्ड रामायण पाठ समाप्त हुआ था। हवन के बाद अब धर्मोपदेश के गीत-भजन चल रहे थे। कोई बड़े ही मोटे स्वर में गा रहा था, 'कलियुग ही कलयुग छाय

रहो दिशि चारो, अब कस न कल्कि अवतार बेगि प्रभु धारो'।

उधर सुबह हो रही थी, इधर चेतराम की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। सहमा चेतराम ने पाँच सौ रुपये निकाले और उसे चोरों की तरह छिपाए वह चन्दनगुरु के यहाँ भागा।

चेतराम ने सारी बातें चन्दनगुरु से ज्यों-की-त्यों कह दीं। वह लाल-पीला होने ही जा रहा था कि चेतराम ने उसके सामने पाँच सौ रख दिये और चन्दनगुरु का मूल रंग क़ायम रह गया। उसने गंभीरता से कहा, "गुलजारीलाल से भी मुझे पाँच सौ रुपये दिलवाओ तो मैं चुप रह जाऊँगा, हाँ! जो कहना है साफ-साफ कहे दे रहा हूँ, तुम्हारी तरह मैं बुज़दिल और कायर नहीं हूँ चेतराम! मुझे लल्लो-चप्पो नहीं आती! तुम आख़िरकार बनिये ही तो ठहरे—कलेजा ही कहाँ! बंदर और घड़ियाल वाली कहानी के उस बंदर की तरह तुम भी अपना कलेजा अपने पास न रख किसी पेड़ पर टाँगते हो!"

चन्दनगुरु एकाएक चिंता में डूब गया। फिर गंभीरता से बोला, "लेकिन तुमसे एक बात कह दूँ चेतराम! जैसा मैंने देखा और पहचाना है—वह गोरेमल घड़ियाल भी है और वह पेड़ भी जिस पर तुम्हारा कलेजा टँगा है।"

यह कहकर चन्दनगुरु बड़ी ज़ोर से हँस पड़ा।

जिस दिन इलेक्शन का फ़ैसला हुआ उस दिन तक गोरेमल दुकान में टिका रहा।

पाँच सौ रुपये चन्दनगुरु ने गुलजारीलाल से भी लिये। और उधर एक हज़ार एकमुश्त चौधरी रामनाथ से लेकर वह अन्त में उन्हींके पक्ष में चला गया। और इस तरह बस्ती के चेयरमैन चौधरी रामनाथ हुए।

चेतराम अपना वोट तक देने न गया था। उसने आज तक घर

और दुकान की दीवारों के बीच अपने को इस तरह बन्द कर रखा था कि वही उसकी शरण हो, रक्षा और आवरण हो। वोट पड़ने के दिन, जिस क्षण लोग शोर मचाते हुए आते-जाते थे, चेतराम को लगता था, जैसे वे सब उसके प्राणों को कुचलते चले आ रहे हैं। और जिस शाम, विजयी चेयरमैन रामनाथ का बस्ती में शानदार जुलूस निकला था, शहनाइयाँ बजी थीं, आतिशबाजी छूटी थी और रात-भर पी-पिलाकर क़व्वाली हुई थी, उस रात चेतराम अन्धे साँप की तरह अपने सिर को टकराता घूम रहा था।

गोरेमल पूरे तेरह दिन के बाद बस्ती से विदा हुआ। राहु पूनम के चाँद को तेरह दिन तक घोटकर पिये रहा। उगलकर जब जाने लगा, उस समय चेतराम की गाँठ में वह खूब मज़बूती से बाँध गया कि चेतराम फ़र्म को छोड़कर एक क्षण के लिए भी किसी अन्य काम में हाथ नहीं लगायेगा। सट्टे का काम एकदम से बन्द। सारे गोदाम—अपने और किराये के दोनों—गेहूँ चावल से भरे रहें; इनके अलावा और कोई अनाज नहीं। और अपने इन गोदामों के भराव का पता किसी को न हो। केवल जौ, चना, अरहर, उर्द, मूँग, तेलहन, बाजरा और मटर की लेन-देन के काम से फ़र्म को सदा गर्म रखो। बाजार और भाव कितने भी ठंडे क्यों न पड़ जायँ, फ़र्म को सदा गर्म रखना है।

अब सीता बेटी की शादी भी हो जानी चाहिए, गोरेमल उस तेरह दिन की अवधि में इस समस्या को भी सुलझा गया। गोरेमल का मुनीम भूरादास, दिल्ली से मालिक के संग आया था; उसीके मझले लड़के रामदास से सीता की शादी तय करा दी गई; क्योंकि भूरादास मरने के बाद अपने तीनों लड़कों के नाम सोलह हज़ार रुपया छोड़ जायगा; क्योंकि भूरादास का वह मझला लड़का रामदास हिन्दी-उर्दू मिडिल पास है और हाथरस में बीड़ी का एक छोटा-मोटा कार-

खाना खोलेगा; क्योंकि यह शादी केवल पाँच सौ रुपये में हो जायगी, और इसमें किसी भी तरह की झंझट नहीं—सब घर का मामला। रुपया कम-से-कम खर्च हो, और जो खर्च भी हो वह घर ही में रहे इससे उत्तम क्या! शादी-ब्याह भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसमें पैसा खर्च किया जाय? कतई नहीं, कभी नहीं।

लेकिन भूरादास के लड़के से सीता बेटी की शादी—चेतराम का पूरा घर इसके खिलाफ़ था। चेतराम मन-ही-मन सुलगता—मुनीम के छोकरे से मेरी बेटी नहीं ब्याही जायगी! अपनी बेटी की शादी मैं सोलह हज़ार के खर्च से करूँगा—दिल खोलकर। बेटी मेरी है, सारी कमाई ऐसे ही दिनों के लिए होती है! रूपाबहू चेतराम को झकझोर देती है—होगा गोरेमल अपने घर का। उसे क्या तमीज़ कि बेटी कहाँ और कैसे ब्याही जाती है! उसके लिए बस सब-कुछ रुपया है, मेरा बस चले तो मैं सारे रुपयों में आग लगा दूँ! और वह होता कौन है मेरी बेटी की शादी अपने मनमानी तय करने वाला! मंगूदादी कहती थी—मेरे जीते-जी जे शादी न होगी। मालिक की बेटी किसीके नौकर के घर न ब्याही जायगी। हम लाला वो मुनीम! बड़े चलो हे शादी करने! जे भूरादास पानी मा अपनो मुँह तो देखे। चाँद जैसी मेरी नतिनी उस काले-कलूटे से नायँ ब्याही जायगी। जे हम अगरवाल्ला वो बन्नियाँ। मैं जाको पाँव छूने जाऊँगी! जे सात जनम नायँ! मधू-बुआ चुप थी, क्योंकि वह धीरे-धीरे सत्य को पहचान रही है—वह जीवन-सत्य, जो बेहद करुण है, विपरीत और भयावह है; जिसके आगे सारी शक्तियाँ ठण्डी पड़ जाती हैं! और सूरज तो बुआ से साफ़-साफ़ कहता था—बुआ! यह गोरेमल बड़ा बदमाश मालूम होता है। यह मेरा नाना नहीं, रूपाबहू का बाप है यह!

१०

एक दिन चेतराम की डाक में एक अजीब चिट्ठी निकली। सूरज के नाम एक बन्द लिफ़ाफ़ा था। चेतराम ने बन्द लिफ़ाफ़े को ज्यों-का-त्यों घर में पहुँचा दिया—बुआ के पास। संयोगवश सूरज बैठा भोजन कर रहा था।

बुआ ने तुरन्त अत्यन्त कौतूहल से लिफ़ाफ़े को फाड़कर देखा, काशीपुर से सन्तोष का पत्र आया था—एक पत्र सूरज के नाम दूसरा बुआ को।

खत पाकर सूरज फूला न समाया। सन्तोष इतना अच्छा पत्र लिख लेती है! नहीं उसने अपने मामा से लिखवाया होगा। लेकिन लिखावट तो सन्तोष की है। सूरज इससे भी सुन्दर लम्बा-चौड़ा पत्र लिखेगा।

"देखूँ सन्तोष ने क्या लिखा है," बुआ ने सूरज से आग्रह किया।

"देखो न, पढ़ लो, लिखा है कि मेरी माताजी की तबीयत यहाँ आकर ठीक हो रही है। बुख़ार बहुत कम हो गया है। खाँसी भी बहुत कम आती है। अब खूब बोलने लगी हैं। मैं बहुत जल्द वापस आ जाऊँगी। मेरा जी यहाँ नहीं लगता। तुम्हारी बड़ी याद आती है। ठाकुरद्वारे में अकेले न जाना, मैं आऊँगी तब संग हम ठाकुरद्वारे में चलेंगे। यहाँ मामा के बाग में एक अन्धा साधू रहता है, उससे मैंने पाँच भजन सीखे हैं। यह साधू पक्का कांग्रेसी है। मामाजी ने बताया है, यह गांधीजी के साथ चम्पारन में सत्याग्रह कर चुका है। यहाँ लड़कियों की एक पाठशाला है। सारी लड़कियाँ खादी पहनती हैं, सूत कातती हैं, चर्खे चलाती हैं। यहाँ जवाहरलाल नेहरू आये थे। यहाँ रोज़ रात के चार बजे से प्रभात फेरी होती है—मर्दों की अलग, स्त्रियों की अलग। लोग गाते हैं—'स्वदेश मन है, स्वदेश तन है, स्वतन्त्रता

पर बलिदान होंगे।' लेकिन माँ को छोड़ मुझसे कहीं रहा नहीं जाता। मेरे बड़े मामा की एक लड़की है उषा, और छोटे मामा की एक लड़की है किरन; दोनों मुझे जीजी कहती हैं। मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

पढ़ते-पढ़ते खत उसने बुआ को दे दिया और बुआ के पत्र को पढ़ने लगा। और उसे सन्तोष पर गुस्सा आने लगा। पत्र तो था बुआ के पास, पर उसमें सारी-की-सारी उसी की शिकायत लिखी गई थी। 'उसे छेदामल के अहाते में न जाने देना, उसे रम्मन के संग न रहने देना, उसे जगनू, रजुआ, चन्दर और शीबू के साथ न खेलने देना; वे सब-के-सब बड़े बदमाश लड़के हैं।'

सूरज को बेहद ताव आया। बुआ की चिट्ठी फेंककर वह बहुत तेज़ी से जाने लगा और रास्ते में उसने अपनी चिट्ठी को गुस्से से फाड़ दिया—एक ही बार फाड़ा कि स्वयं रुक गया, जैसे उसकी चिट्ठी किसी और से फट गई हो। वह सब भूल गया; उसका सारा भाव ही बदल गया। चुपके से दुकान पर गया; गोंद की शीशी ली और फटी चिट्ठी को जोड़ने लगा।

और उसी दम सूरज सन्तोष के पत्र का उत्तर देने बैठा—एक पत्र अपनी चिट्ठी के जवाब में, और दूसरा पत्र बुआ के पास आई हुई चिट्ठी के उत्तर में! अपनी चिट्ठी में उसने लिखा कि यहाँ भी प्रभात फेरी होती है—लेकिन केवल मर्दों की। सब गाते हैं, 'आलम का डंका भारत में बजवा दिया वीर जवाहर ने।' और यहाँ आर्यसमाज की ओर से भी बड़े ज़ोर की प्रभातफेरी होती है। एक बार काली चौरा गेट पर दोनों प्रभातफेरियों में लड़ाई हो गई।

स्वभावतः ख़त मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे गए थे, और उनके ऊपर एक बुआ का ख़त, सब मिलाकर लिफाफे का वज़न तिगुना हो गया। आग्रह और हठ करके वह बुआ को डाकघर तक लाया। लिफाफा तौला गया, टिकट लगे फिर अपने ही हाथ से उसने चिट्ठी भी डाली, तब उसके मन को शान्ति हुई।

अब वह डाक आने के समय गद्दी पर ज़रूर पहुँच जाता। वह रोज़ सोचता था कि सन्तोष का पत्र आयेगा। एक दिन उसे एक ऐसा ख़त मिला जो मधू बुआ के नाम आया था। लिखावट भी सन्तोष जैसी न थी, फिर भी उसे पूरा विश्वास था कि वह सन्तोष का ही पत्र है, जो सूरज के पत्र से नाराज़ हो बुआ के नाम पत्र भेज रही है, और ऊपर का पता उसके मामा ने लिखा है।

मधू बुआ ने लिफाफ़ा खोलकर जैसे ही भीतर के पत्र को देखा, पागलों की तरह उसने सूरज को अपने कंठ से कस लिया, "मेरे सूरज राजा बेटा! तेरे फूफा का ख़त है।"

फिर सूरज के संग भागती हुई वह छत पर गई; बिलकुल एक किनारे, जहाँ से कोई आदमी नहीं दीख पड़ता, वहाँ मुँडेर के सहारे बैठकर वह ख़त पढ़ने लगी—उसके ईशरी ने बम्बई से उसे वह ख़त लिखा था, और बड़े भाग्य से अपना पूरा पता भी दिया था।

ख़त पढ़ते-पढ़ते बुआ एकदम रो पड़ी—फफककर। लेकिन रुदन को चीख़ नहीं बनने दिया। आँचल में ख़त, और बाँहों में सिर डालकर बुआ रोती रही, और सूरज आँखों में आँसू भरे चुपचाप देखता रहा।

"सूरज भइया, तेरे फूफा बम्बई में बीमार पड़े हैं," बुआ का सारा कंठ जैसे पिघल रहा था, "उन्होंने तीन सौ रुपये के लिए लिखा है।"

सूरज तपाक से बोला, "बुआ तीन सौ रुपये मैं दूँगा! दुकान के बक्स में से निकाल लाऊँगा।" बरसाती आँखों से बुआ सूरज को तकती रही—निस्सहाय-सी, अबला-सी। "उसमें तो बहुत सारा रुपया रहता है बुआ! मैं निकाल लाऊँगा बुआ!"

"नहीं बेटे! ऐसा नहीं," बुआ ने भरे कंठ से कहा, "बहुत बुरी बात!"

नीचे आकर बुआ चुपचाप अपनी खाट पर जा गिरी। सूरज खड़ा देखता रहा, बुआ ने आँचल से सारा मुँह ढक लिया था।

सूरज दुकान में गया। गद्दी पर जा बैठा। गल्ले के उस लकड़ी के बक्स को छूता रहा, सबके मुँह और सबकी आँखें भी देखता रहा, पर आज चारों ओर से उसे बुआ के वे गीले शब्द सुनाई दे रहे थे—'नहीं बेटे ! ऐसा नहीं ! बहुत बुरी बात !'

सूरज दोपहर के एक बजे से रात के नौ बजे तक गद्दी और दुकान पर चक्कर काटता रहा, पर उससे कुछ न हो सका। पर वह उतना ही परेशान था। बुआ के पास जाने की उसकी हिम्मत तक न हो रही थी।

फिर वह एक अजीब विश्वास से रूपाबहू के पास गया, बोला, "माँ ! मुझे तीन सौ रुपये चाहिएँ !"

रूपाबहू आश्चर्य में डूबी सूरज को ताकती रही।

"बुआ के पास बम्बई से फूफा का ख़त आया है। वह बीमार हैं वहाँ। तीन सौ रुपयों के लिए लिखा है बुआ को !"

रूपाबहू चुप-की-चुप रह गई। कुछ क्षण बाद बोली, "जा अपनी बुआ को भेज दे !"

सूरज ने बुआ से कुछ न बताया। बुआ को माँ के कमरे में पहुँचा स्वयं बाहर चला आया, किवाड़ के पीछे से चुपचाप देखने लगा। रूपा बहू बक्स खोल रही है। बुआ के सामने तीन सौ रुपये सहेज रही है, "यह रहे तीन सौ रुपये, उन्हें लिख दो कि रुपया पाते और चिट्ठी देखते ही सीधे यहीं चले आयें।"

रूपाबहू बुआ को निहारती रही और उसे चुप कराती और समझाती हुई खुद रोने लगी। "रुको ! पचास रुपये और ले लो ! लिख देना, ये पचास किराये के रुपये हैं। आराम से यहाँ चले आयें, अब एक क्षण भी वहाँ रुकने की ज़रूरत नहीं।"

और अगले दिन से बुआ सूर्य को अर्घ्य देने लगी। आँगन में चौक पूरकर घी के दीपक जलाने लगी। आटे की लोई, और गोटे बनाकर, वह शाम-सुबह उसे सिन्दूर चढ़ाने लगी। दिन को भोजन नहीं करती, व्रत रहती, शाम की पूजा के बाद मुँह में अन्न डालती—बिना नमक

का अन्न।

ठीक बारहवें दिन, सन्ध्या समय ईशरी बम्बई से आ गया। गोरा-चिट्टा, हृष्ट-पुष्ट ईशरी बीमारी से स्याह पड़ गया था। आँखें बुझी-बुझी-सी लग रही थीं। और उसे दुख क्या था—कमर से नीचे के भाग में फुंसियाँ और पीले-पीले दाने, दाँये पैर में एक जगह ऊपर का चमड़ा काला और मोटा हो गया था और उस पर जैसे हरदम आग फूँकने वाली खुजली मची रहती थी।

और बुआ ने यह भी पाया कि ईशरी बेतरह बीड़ी पीने लगा है, एक-पर-एक—लगातार। और उसे बिगड़ी हुई खाँसी भी है, जिससे उसकी पसलियों में दर्द भी है। बुआ ने एक-एक देख लिया, सब पहचान लिया और सबको चुपचाप सिर-आँखों पर रख वह अपने-आपमें तपने लगी।

सच, ईशरी को जीवन में अब तक इतनी ममता कभी न मिली थी। और यह भी सच था कि वह ऐसे जीवन और ऐसे क्षेत्र से स्वयं ही भाग गया था। उसके अनुमान और स्वप्न में भी शायद यह सत्य न आया हो। ईशरी ने अब तक खोया-ही-खोया था, जो मधू बुआ उसे मिली भी थी, उसे पूरा सम्पर्क भी न दे सका था। यहाँ वह अभागा भी था। लेकिन उससे पहले वह सौभाग्यशाली था। आँख मिली थी, पर उससे कभी देखा ही न था। और जीवन के पिछले कई बुरे वर्ष, जहाँ उसे केवल ठोकर, अपमान, जीने के कटु संघर्ष और अनेक तरह की यातनाएँ मिली थीं, इन सबने सचमुच उसे भर दिया था। बहुत नज़दीक से उसने सत्य देख लिया। ऐसा सत्य जो विश्वास देता है, शक्ति और धैर्य देता है। ईशरी की दवा होने लगी। उसे प्यार-शुश्रूषा मिलने लगी।

और वह अक्सर ऐसी बातें करता था, जो कटु-से-कटु होकर शुभ

जाती थीं, पर उनसे घाव-जैसा दर्द नहीं उठता था, बल्कि वे बस, छू देती थीं। बातें तीखी और उलटी लगती थीं, पर मन को कहीं-न-कहीं बाँध लेती थीं—जैसे उसकी बातें सामने बैठकर न सुनी जायँ, छिपकर दूर से सुनी जायँ सीधी लहरों को काटकर तैरनेवाली मछली की तरह, सँपेरे के बीन से ओझल नन्हे-से साँप की तरह।

और रूपाबहू को तो वह ईशरी बहुत प्यारा लगता था। उससे उसे मोह-सा हो गया था। वह ईशरी से अक्सर इस तरह खुलकर बातें करती थी, जैसे माँ अपने खूब पढ़े-लिखे लायक़ बेटे के संग करती है। ईशरी की अनेक तरह की दवा, और विभिन्न प्रकार के उपचार एक संग चल रहे थे। डॉक्टर के यहाँ इन्जेक्शन से लेकर राजू पंडित के जप-तप, दिवंगत धमू वैद्य की पुरानी पोथी से ढूँढ़कर तैयार किये हुए चूरन और लेप, उस्ताद बन्ने खाँ की तावीज़ और गढ़ी के हनुमान तथा बड़े दरवाज़ा के शिव-दर्शन तक के उपचार फैले थे। पर एक महीने तक उसके रोग में कोई विशेष परिवर्तन न था, हाँ उसका शारीरिक स्वास्थ्य अवश्य कुछ सुधर चला था।

रूपाबहू का मन घर में खूब लग गया था। वह अब अक्सर खुलकर हँस लेती थी। और ईशरी के संग वह प्रायः सारी दुपहरी बातों में काट देती थी।

एक बार कई दिन तक रूपाबहू बहुत उदास और चुप-चुप रही। ईशरी के संग बैठती-उठती, पर जैसे उसे कुछ बाँध बैठा था और वह उस गाँठ को खोलने में असमर्थ थी। इसलिए उसमें अवश्य कुछ मथ रहा था। और एक दिन रूपाबहू ने ईशरी से पूछा, "भइया, पाप किसे कहते हैं?"

कुछ क्षणों बाद ईशरी अनुभूति और प्रज्ञा से बोला, "पाप, पाप कुछ नहीं है, मन का एक विकार मात्र है। एक ऐसा असत्य है, जो हमारे संस्कार पर लाद दिया जाता है।"

"और पुण्य?"

"पुण्य ! अर्थात् जिसे पाप का उलटा कहते हैं !...... मेरे ख्याल यही वह झूठा साँचा है, जो पाप के असत्य को सदा गढ़ता रहता है।"

"तो पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है ?" रूपाबहू का सारा मुखमंडल दीप्त हो आया; अणु-अणु से हँसी बरसने लगी। उसने अतुल आश्चर्य से कई बार बच्चों की तरह दुहराया, "तो पाप-पुण्य कुछ नहीं है ! कुछ नहीं है भइया ! क्या कहते हो तुम, सच, पाप-पुण्य कुछ नहीं है ?"

"कुछ नहीं ! कुछ नहीं ! ये ऐसे भयानक असत्य हैं, जिनसे हमारी सारी ज़िन्दगी घुट-घुटकर तबाह हो जाती है !" ईशरी का भी सारा मुख तमतमा आया था, "हम खुलकर जियें, और सब को उसी तरह जीने दें। जो हम अपने लिए चाहते हैं; वही हम सबके लिए चाहें, इससे बड़ा सत्य और कुछ नहीं हो सकता।"

रूपाबहू को जैसे अपना अस्तित्व मिल गया। उसका माथा चमक आया। जैसे वह न जाने कितने वर्षों बाद आज माँ हुई है।

पर यह स्थिति कुछ ही दिन रह सकी।

मुश्किल से एक महीना बीता होगा कि एक दिन राजू पण्डित ने खबर दी कि सन्तोष की माँ शारदा का स्वर्गवास हो गया।

इस घटना से रूपाबहू के मन पर फिर कुछ लद गया। वह उदास-उदास रहने लगी। रह-रहकर कहीं से कुछ उसे फिर कुरेदने लगा। उसकी भी इच्छा होने लगी कि वह मर जाय। एक दिन दुपहरी में उसने फिर ईशरी से पूछा, "स्त्रियों में पतिता और कलंकिनी किसे कहते हैं ? कब और कैसे कोई स्त्री पतिता हो जाती है, और उसके माथे पर कलंक चढ़ जाता है ?" जब तक ईशरी चुप रहा, रूपाबहू अपनी बात अनेक तरह से दुहराती रही।

ईशरी के मुँह से निकला, "ईश्वर ने स्त्री क्या, सबको पवित्र और अच्युत बनाया है; यह समाज है जो हमें अपवित्र और च्युत करता है।"

रूपाबहू झट बोली, "लेकिन अगर किसी व्यक्ति से स्वयं ही माया

और भूलवश एक बार कोई चूक हो गई हो तो ? अगर वह स्वयं च्युत हो गया हो तो ?"

"स्वयं कोई च्युत नहीं होता, न अपवित्र ही होता है ! कराया जाता है। मजबूर किया जाता है। उसके स्वयं का क्या दोष ? अगर उसके स्वयं का दोष हो, मूलतः वही च्युत और अपवित्र हो तो उसमें कभी यह द्वन्द्व या प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वह तो अपने को इस तरह भूल जायगा और अपनी उसी च्युत स्थिति में ही इतना आनन्द-विभोर रहेगा, जैसे कि गन्दी नाली का कीड़ा।"

रूपाबहू भारी आँखों से मन्त्रमुग्ध सुनती रही—सुनती रही।

"लेकिन मानव इसलिए अपवित्र, च्युत और पतित नहीं है, क्योंकि उसे चेतन होकर परिणाम भोगना पड़ता है। कहीं भूलकर, कहीं गिरकर, धोखा देकर या पाकर वह स्वयं को क्षमा नहीं करता। वह अन्तस् में स्वयं को यातना और पीड़ा देता है, और अनेक तरह से अपने को तपाता है—रोकर, सुलगकर, जलकर—तभी वह सदा अच्युत है, सदा पवित्र और महान् है !"

रूपाबहू ईशरी के पैरों से लिपट गई और बच्चों की तरह रोने लगी।

११

चुनाव में एकाएक बैठ जाने से चेतराम पर बेहद बीती—उसके अन्तस् पर भी और बाह्य पर भी। जैसे किसी ने उसके दोनों पक्ष कुचल दिये हों और वह आकाश से ढकेल दिया गया हो !

यद्यपि वह घटना अब कई महीने की हो गई, लेकिन चेतराम को लगता था जैसे अभी कल घटी है और वह 'कल' उसमें चिपक गया है।

चेतराम की गद्दी पर सुबह अख़बार सुनने अब भीड़ नहीं जुटती। चन्दनगुरु ने तो तब से चेतराम को तज ही दिया। जब से छः सूबों में कांग्रेस की मिनिस्ट्री हुई तब से छेदामल स्वयं अख़बार मँगाने लगा है। हिन्दी का अख़बार वह ख़ुद पढ़ लेता है, अंग्रेज़ी का अख़बार वह कीरतसिंह से पढ़वाने लगा है। कीरतसिंह जात का नाऊ था—उसी गंझपाजन मुहल्ले का। फौज में सूबेदार था। उस पर राष्ट्रीय भाव तथा राष्ट्रीय पक्षपात का अभियोग लगाकर अंग्रेज़ों ने उसे एक वर्ष की कड़ी सज़ा देकर फौज से निकाल दिया था। रम्मन का 'ट्युटर' भी था वह।

अख़बार सुनने अब कोई कच्चा आढ़तिया भी नहीं आता। अब घर-घर अख़बार आने लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन, तथा भारत-वासियों पर अंग्रेज़ों की निर्ममता और क्रूर दमन का संघर्ष सदा बढ़ता ही जा रहा था। बस्ती के हर चौराहे, हर गली, हर गद्दी और दुकान पर लोग सुबह झुंड-के-झुंड अख़बार पढ़ने और सुनने लगे थे।

चेतराम की गद्दी पर, जब मास्टर चन्दूलाल अपने चश्मे के भीतर से आँख नचा-नचाकर, बड़ी अदा से उस दिन का अख़बार सुना रहे थे, और बीच में रुक-रुककर जैसे भाषण दे रहे थे, उस समय वहाँ बिहारी, नैनू और कुंसामल—तीनों दलालों के अलावा सूरज आ बैठा था। वह इधर प्रायः नित्य अंग्रेज़ी का अख़बार सुनने आता था और हिन्दी का पूरा अख़बार स्वयं पढ़ता था—जैसे दोनों अख़बारों में वह रोज़ कुछ ढूँढ़ता हो।

अख़बारों के बीच से मास्टर चन्दूलाल ने बताया—बम्बई, मद्रास, यू० पी०, सी० पी०, बिहार और उड़ीसा के लेजिस्लेचर्स में कांग्रेस का बहुमत। ······सूबों के गवर्नरों ने कांग्रेस के लीडरों को मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया था, और अब सातों सूबों में मन्त्रिमण्डल बनकर तैयार हो गया। ······चुनाव में ज़मींदार तालुकेदारों की भयानक हार से अंग्रेज चिन्तित और किसानों में जाग-

रहा। ......ग्रामोन्नति के लिए मन्त्रिमण्डल जागरूक। हरिजन और पिछड़ी जातियों के प्रति सरकार की विशेष दृष्टि। दक्षिण भारत में समाजवादी नेताओं के विकास के साथ-ही-साथ रूस की लाल झंडी फहराने लगी है। ......सूबों में लगान और ज़मींदारी का रिवीज़न होगा, लगान कम होगा, काश्तकारों को अनेक छूटें मिलेंगी। वह ज़मीन जिस पर ऐसे ज़मींदारों का अधिकार चला आ रहा है जो लापता हैं, उसे या तो सरकार ज़ब्त कर लेगी, या काश्तकार की मौरूसी हो जायगी। ......ग्राम उद्योग-धन्धों, और सहकारी समितियों की स्थापना के प्रति कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कटिबद्ध। ......बंगाल और पंजाब की जेलों में अब तक असंख्य राजनीतिक क़ैदी नज़रबन्द।

तब गद्दी के उस अशान्त वातावरण में सहसा सूरज ने बड़ी गम्भीरता से पूछा, "क्यों मास्टर साहब! उस अंग्रेज़ी अख़बार में कहीं सन्तोष की माँ के स्वर्गवास के बारे में कुछ नहीं छपा है?"

सब लोग तो आश्चर्य से चुप रहे, लेकिन मास्टर चन्दूलाल को हँसी आ गई। सूरज का जैसे रक्त खौल गया। उसने डाँटकर कहा, "आप हँसते हैं! आप ही ने तो उस दिन बताया था कि अँग्रेज़ी अख़बार हिन्दी से अच्छा होता है, क्योंकि उसमें संसार-भर की ख़ास-ख़ास घटनाएँ और खबरें छपती हैं!" मास्टर चन्दूलाल की हिम्मत न हुई कि वह सूरज से कुछ बोलते। चेतराम उसे शान्त करता हुआ बोला, "बेटे! यह तो ठीक है—लेकिन सन्तोष की माँ शारदा के स्वर्गवास की घटना बहुत छोटी है—दुनिया में रोज़ ऐसे लाखों मरते हैं।"

सूरज ने आवेश में बात काट दी, "सन्तोष की माँ के स्वर्गवास की घटना छोटी है? क्यों छोटी है? वह क्यों नहीं अख़बार में छपने लायक़ है? सब झूठे हैं। बेईमान हैं ये अख़बार वाले!"

सूरज उसी गति में वहाँ से चला गया।

सूरज फूफा के पास आया। वहाँ बुआ भी बैठी थी। लगता था, सूरज अभी रो देगा या किसी पर आक्रमण कर बैठेगा। बुआ के

पूछते ही वह रुदन के गीले स्वरों में फूट पड़ा, "मैं काशीपुर जाऊँगा। सन्तोष की माँ मर गई—सन्तोष रोती होगी, जभी इतने दिन हो गए उसका कोई पत्र नहीं आया। बुआ! वह पत्र क्यों नहीं लिखती? वह कैसी होगी? अखबार वाले क्यों नहीं खबर देते?"

बुआ सूरज के अंतस् से परिचित थी। वह उसके हर आँसू, हर मुस्कान के अर्थ समझती थी।

सब काम छोड़कर वह सूरज को संग लिये राजू पंडित के घर गई। राजू पंडित अपने आँगन में बैठे किसी योग-पूजा के बीच जैसे समाधिस्थ थे—ऊपर से नीचे तक रेशमी वस्त्र में। पत्नी की मृत्यु से अब दाढ़ी-मूँछ बढ़ा ली थी। सिर के बाल भी पट्टे हो रहे थे—पर रूखे और बिखरे न थे, माँग काढ़कर करीने से सँवारे हुए थे। सामने एक ऊँचे आसन पर सरजू सुनार का दस वर्ष का लड़का हीरालाल बैठाया गया था।

मधू बुआ और सूरज को देखते ही राजू पंडित ने उन्हें संकेत से बरामदे की खाट पर बैठा लिया और पन्द्रह-बीस मिनट के बाद अपनी योग-क्रिया भी समाप्त कर ली।

हीरालाल चार आने पैसे और दो लड्डू प्रसाद पाकर उसी दम अपने घर गया। राजू पंडित ने बुआ और सूरज को प्रसाद देकर गम्भीरता से कहा, "दिवंगता शारदा की आत्मा को अभी बुलाया था। उसे चन्द्रलोक मिला है—सती थी न, इसीलिए। मुझसे कह गई है कि मेरे वियोग से दुखी होकर कभी घर न छोड़ना। और मुझे अपनी कसम रखा गई है कि कभी उदास न होना, नहीं तो चन्द्रलोक में मेरा उपहास होगा। इतना कठिन दुख भोगकर वह क्यों मरी है—मेरे इस प्रश्न पर शारदा की आत्मा ने बताया है कि पूर्व जन्म में वह किसी बड़े राजा की पटरानी थी—राजा आस्तिक था, पर यह जन्म भर नास्तिक थी। शारदा की आत्मा केवल तीन मिनट के लिए मेरे पास आ सकी थी—चन्द्रलोक से केवल इतने ही क्षणों की छुट्टी मिलती है। जाते-

जाते जब मैंने उससे यह पूछा कि फिर तुम्हारा जन्म होगा या नहीं, फिर तुमसे मिलन हो सकेगा या नहीं, तब उसने बताया कि अपने सतीत्व तथा पति की अनन्य भक्ति और आशीष से मैं आवागमन से मुक्त हो गई हूँ—पर हमारा मिलन तब हो सकता है जब तुम दिवंगत होकर सूर्यलोक में आवोगे !"

मधू बुआ तो इतने आश्चर्य में पड़ गई थी कि उससे कुछ सोचा ही नहीं जा रहा था। बस, वह एकटक सूने आँगन में देख रही थी।

सूरज के मुँह से एकाएक निकला, "राजू पंडित, तुम बड़े झूठे हो। शारदा माँ काशीपुर से चन्द्रलोक पहुँच गई, और अखबार में तो कुछ नहीं छपा है !"

राजू पंडित कुछ बोलने जा रहे थे कि सूरज ने अपने भावावेश में उन्हें चुप कर दिया, "अगर शारदा माँ को तुम अब भी बुला लेते हो, तो शारदा माँ मरी कहाँ ? और वह जब आई थी तो तुमने जाने क्यों दिया ? मुझसे और बुआ से तो मिलाते ! संतोष से मिलाते !" राजू पंडित चुप रह गए। बुआ ने सूरज का दाहिना हाथ पकड़ रखा था। सूरज ने बड़े विश्वास और आग्रह से कहा, "सन्तोष को झट यहाँ बुला लो। काशीपुर बड़ी बुरी जगह है। उसे वहाँ से बुला लो, नहीं तो कौन जाने वहाँ वह भी न मर जाय !"

बुआ ने उसका मुँह भींच लिया, "नालायक, मुँह से ऐसा अशुभ निकालते हैं ?"

बुआ की मुख-मुद्रा देखकर सूरज डर गया। भयाकुल हो उसने बुआ का हाथ छोड़ दिया। उसे स्वयं लग गया कि उसके मुँह से जो संतोष के प्रति वाणी निकली है, वह बहुत बुरी है—गाली से भी बहुत बुरी।

"मुझे ऐसा नहीं चाहिए था भगवान् ! मुझे क्षमा करो," सूरज ठाकुरद्वारे में जा घुसा, और भगवान के सामने नतशिर हो कहने लगा। "क्षमा करो भगवान् ! सन्तोष को भी क्षमा करो ! अब मैं कभी ऐसा

नहीं कहूँगा; देख लेना, कभी नहीं कहूँगा !"

और वह वहीं बैठा रोता रहा, रोता रहा। मधू बुआ ने देखा, उसे बहुत मनाया, घर चलने का आग्रह किया, पर वह मूर्तिवत वहीं बैठा रोता रहा—जैसे वही उसका अपने से पाया हुआ न्याय हो, अपने को दिया हुआ सात्विक प्रतिशोध हो !

सन्ध्या समय सूरज ने सरजू सुनार के लड़के हीरालाल को घण्टा-घर के नीचे पकड़ा और उसे धमकाते हुए बोला, "सच-सच बता हीरा, आज राजू पंडित की पूजा में सचमुच तूने सन्तोष की माँ को देखा है? वह सच आई थी वहाँ?...सच-सच बता ! राजू पंडित ने तुझे चार आने दिये हैं, मैं तुझे एक रुपया दूँगा ! यह लो !"

सूरज ने रुपया पेशगी दे दिया। हीरा ने बताया, "सब झूठ है ! कोई कहीं से नहीं आया था। उसने जैसे-जैसे कहा, मैंने वैसे-वैसे कर दिया !"

सूरज आवेश में बोला, "चल, तुझे यह राजू पंडित के सामने कहना होगा। मधू बुआ और फूफा के सामने कहना होगा, मुहल्ले के सब लड़कों से कहना होगा !...जहाँ-जहाँ मैं ले चलूँ, वहाँ-वहाँ तुझे अब चलना पड़ेगा।"

"मैं कहीं नहीं जाऊँगा। यह लो तुम अपना रुपया !"

हीरा ने रुपया वापस दे दिया; पर सूरज ने क्रोध से रुपये को तुरन्त फेंक दिया, और हीरा को पूरी शक्ति से खींचने लगा। हीरा ने विरोध किया। फिर सूरज लड़ गया उससे। पक्की सड़क पर दे मारा और पागलों की तरह उसे पीटने लगा।

हीरा अस्पताल ले जाया गया और सूरज पुलिस थाने। थाने के बाहरी फाटक पर गोपालन मुहल्ले के सब खास-खास लड़के मौजूद थे—रम्मन, जगसू, लाले, रजुआ, चन्दर, विपिन और पहलाद वगैरा। सब सूरज के लौटने की राह ताक रहे थे, और वे सब योजना भी तैयार कर रहे थे कि अगर सूरज नहीं छोड़ा गया तो हम सब थाने में घुस

चलेंगे और पुलिस को खूब ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देंगे।

शाम के पाँच बजे जब हीरालाल अस्पताल से सिर में पट्टी बँधवाकर लौट रहा था, थाने के फाटक पर वह भी लड़कों के बीच खड़ा हो गया। सूरज थाने में लाया गया है, हीरा को बिलकुल नहीं पता था।

सूरज को छुड़ाने के लिए चेतराम थानेदार को पचास रुपये दे रहा था। वह सौ माँग रहे थे। तभी हीरालाल को सामने किये हुए फाटक के सब लड़के थाने में घुस आये। हीरालाल को थानेदार के सामने ले जाकर रम्मन ने कहा, "यह और हम सब चाहते हैं कि सूरज तुरन्त छोड़ दिया जाय।"

और सूरज न जाने क्यों, कैसे उसी दम छुट गया। सूरज को लेकर जब सब लड़के थाने के फाटक को पार कर रहे थे, जगनू ने थानेदार को एक भद्दी-सी गाली दी, और सब लड़के हँस पड़े।

रात को सरजू सुनार की पत्नी कुलवंती राजू पंडित के घर आ धमकी, और राजू की उसने वह गति की, इतनी लड़ी कि राजू पंडित चुपके से घर के पिछवाड़े से बाहर निकल गए—महाजन टीले की ओर। फिर पक्के एक घण्टे तक कुलवंती के मोरचे पर राजू पंडित की बुढ़िया माँ अपनी रक्षा में लड़ती रही।

अगले दिन राजू पंडित ने ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सूरज को चौक की एक गली में जगनू और रम्मन के संग चाट खाते हुए पाया।

बड़ी प्रसन्नता और साध से राजू पंडित ने चाटवाले का पैसा चुकाया। जगनू को एक बंडल बीड़ी, और रम्मन को बारह आने पैसे इतना सब देने के बाद वह उनके बीच से सूरज को अपने संग ले जा सके।

जाड़े के दिन थे। सुबह कसकर कुहरा पड़ रहा था। कुत्तों का एक झुण्ड

किसी से लड़ रहा था। सूरज घर में से निकलकर जैसे ही सड़क पर आया, चौराहे की ओर गया, उसने देखा—चौधरी छेदामल खड़ा कुत्तों को रोटियाँ खिला रहा था। झुण्ड के बाहर, तीन कुत्ते ऐसे खड़े थे, जो बीमार थे, मरने को थे। किसी की टाँग टूटी थी और शरीर में घाव थे; किसी के सिर में कीड़े थे और शरीर पर एक भी रोंआँ नहीं था, देह का सारा चमड़ा भयानक खुजली के कारण फूलकर कथरी-जैसा हो गया था। जब छेदामल कोई रोटी का टुकड़ा उन दूर खड़े कुत्तों के पास फेंकता तो कुत्तों का पूरा झुण्ड उस टुकड़े पर न दौड़कर पहले उस ग़रीब कुत्ते पर झपटता, जिसके सामने वह टुकड़ा गिरता। फिर वह घायल बीमार कुत्ता बड़ी देर तक दर्द से चीखता रहता और एक अजीब करुण और टूटी दृष्टि से रोटी वाले को देखता। तब छेदामल अपनी घनी-सफ़ेद मूँछों में पान चबाता हुआ मुस्कराता, और हँसकर दूसरा टुकड़ा फेंक देता। और जब उसे झुण्ड के कुत्तों में लड़ाई करानी होती तब वह एक समूची रोटी शून्य में उछाल देता और झुण्ड के कुत्ते आपस में एक-दूसरे पर इतनी बेदर्दी से टूटते कि लगता, एक कुत्ता दूसरे को खा जायगा।

सूरज खड़ा देखता रहा। सारे कुत्ते उसी मुहल्ले के थे। वह करीब-करीब सब कुत्तों को पहचान रहा था। उनमें वे कुत्ते भी थे, जिन्हें उसने कई बार अपने हाथों से मिठाइयाँ, परांवठे और खीर खिलाई थी। वे दूर खड़े दीन कुत्ते छेदामल के उस अहाते में रहते थे, जहाँ सूरज लड़कों के संग 'किरिया काँटा', 'आँती पाती' और 'गुप्प डाल', 'खन खन' के खेल खेलता था। उसने कई बार नज़दीक से सुना है, देखा है, जब वे बीमार कुत्ते जाड़े की धूप में वहाँ सो जाते तो उनके पेट से चों-चों की बड़ी तीखी आवाज़ आती थी। मधू बुआ ने बतलाया था—वह आवाज़ भूख की है। फिर सूरज या तो पिताजी से माँगकर या उनसे नज़र बचाकर स्वयं गद्दी के बक्स से रुपया लेकर बाज़ार जाता, ताज़ी पूरियाँ ख़रीदता और उन्हें तब तक खिलाता, जब

तक भूखी अंतड़ियों की वह आवाज़ बन्द न हो जाती।

आज छेदामल को उस रूप में रोटियाँ खिलाते हुए देखकर सूरज ने मन-ही-मन में उसे अनेक गालियाँ दीं। कई ज़ोर से भी दीं और घने कुहरे में छिपकर उसने अन्त में एक ऐसा सधा हुआ पत्थर छेदामल के हाथ में मारा कि उसकी सारी शेष रोटियाँ ज़मीन पर गिर गईं।

जबसे जाड़ा कम हुआ था, सुबह बहुत तड़के अँधियारे ही में ईशरी-मधू बुआ दोनों बस्ती के बाहर तक टहलने जाते थे, और सुबह के झुट-पुटे तक लौट आते थे, क्योंकि इस बस्ती में कोई पुरुष अपनी पत्नी के संग इस तरह कहीं टहलने नहीं निकल सकता था। परम्परा ही नहीं थी।

कभी-कभी जैसे अपनी साध बनाने रूपाबहू भी ईशरी के संग घूमने जाती थी। पर जिस दिन जाती, उस दिन बस्ती के बाहर तक नहीं, अपने चौराहे से अगले चौराहे तक ही, बस।

कमल-जैसी खिली हुई बुआ के संग जब रूपाबहू ईशरी को देखती तब उसकी आँखें अनायास डबडबा आतीं। पता नहीं क्यों उसका मन भर आता। कुछ कण्ठ में, कुछ तालू में बरस पड़ता; फिर मन-ही-मन वह अपने एक बीते हुए स्वप्न को स्मृति में बाँधती---उसके मन का एक ऐसा जीवन्त स्वप्न, जिसकी सुधि में वह अब भी झूम उठती थी; पर वह स्वप्न बिना जागे ही बीत गया था। उस स्वप्न को रूपाबहू कभी स्पर्श भी न कर सकी थी, बाँध भी न सकी थी, कि एकाएक वह स्वयं बीत गई, और स्वप्न स्मृति के पंख से अतीत में उड़ गया—कहीं छिपकर खो जाने के लिए।

ईशरी और मधू बुआ को देखकर रूपाबहू को एक ऐसा अद्भुत आनन्द मिलता था कि वह चाहती थी, वह पवित्र जोड़ी सदा उसकी आँखों के सामने रहे; वह उनकी सेवा करे, और अपने स्नेहांचल से

उन्हें कहीं कभी दूर न जाने दे। फिर वह अपने में स्वप्नजाल बुनती कि 'मैं अपनी सीता बेटी की शादी किसी ऐसे पुरुष के संग करूँगी जिसके पास और कुछ न हो, केवल प्यार हो, शक्ति और श्रद्धा हो; बस वह सच्चा पुरुष हो, जैसे प्रकृति का वर होता है।

एक सुबह ईशरी मधू बुआ, रूपावहू, सूरज और सीता को अपने संग लिये टहलने गया था। तब तक जाड़े का रूप गुलाबी हो चला था। तब तक चेतराम के घर में सुबह इस तरह टहलने-घूमने की जैसे परम्परा बन चुकी थी। पूरी बस्ती में जगह-जगह के लोग फबतियाँ कसकर थक चुके थे, मन-भर बातें कर जी बुझा चुके थे।

सबको संग लिये ईशरी चौराहे से घर की ओर आ रहा था। सब हँसी और स्नेह-भरी बातों में लगे थे, एकाएक ईशरी ने देखा कि आगे-पीछे पुलिस है और सामने पुलिस-जीप खड़ी है। घर के सामने आया, दुकान पर देखा, कोतवाल साहब बैठे हैं। और जैसे ही सबके संग ईशरी तेज़ी से घर में दरवाज़े की ओर मुड़ा, वह देखते-ही-देखते पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिया गया।

ईशरी ने ज़रा भी विरोध न किया। उसे न आश्चर्य हुआ, न दुःख। वह निर्विकार रहा। पुलिस से उसने कोई प्रश्न तक नहीं किया। वारंट तक नहीं देखा।

पुलिस-हिरासत में वह वहीं देहलीज़ में खड़ा-खड़ा, अपनी मधू रानी, रूपाभाभी, मंगूदादी, सीता-गौरी तथा उसका दायाँ हाथ पकड़े खड़े हुए सूरज और सामने चेतराम—इन सबको अपलक देखता हुआ चुप था। सब इतने ठगे-से आश्चर्य में खड़े थे कि जो वे देख रहे थे, उस पर उन्हें जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। शायद तभी वे रो नहीं पा रहे थे।

सहसा ईशरी ने कहा, "तुम सब मुझे क्षमा करना, मैंने तुम सबसे अपना यह सत्य छिपा लिया था कि पिछले दो वर्षों से सरकार मुझे अपना दुश्मन समझती है। मैं इस घर के प्रेम और श्रद्धा के प्रति कृतज्ञ

हूँ, परिपूर्ण हूँ।" फिर वहाँ सब-के-सब रो पड़े—केवल मधूरानी को छोड़कर, जो एक अजीब तपी हुई, विश्वस्त दृष्टि से, भरी-भरी, किवाड़ पकड़े सामने बंदी पति की ओर ताक रही थी, जैसे आशीष दे रही हो।

ईशरी ने बढ़कर एकाएक अपनी मधूरानी के चरण छू लिए—मधू भागकर किवाड़ की ओट में चली गई। आँचल में तुलसी के फूल भरे वह तब निकली जब ईशरी रूपाभाभी, चेतराम और दादी के चरण छूकर दहलीज़ से बाहर जा रहा था। पीछे से उसने सारे फूलों को पति के सिर और कंधों पर बरसा दिया।

सूरज इस सारे दृश्य में हतप्रभ-सा रहा। उसे कुछ सूझता ही न था। वह कुछ सोच ही न सका। यन्त्रवत वह उस जीप के पीछे दौड़ा, जो ईशरी फूफा को लिये थाने की ओर भागी।

थाने के दरवाजे पर खड़ा-खड़ा दूर से पुलिस से आक्रान्त ईशरी फूफा को देख वह मानो सत्य को पकड़ने लगा। और जब वही पुलिस-जीप ईशरी फूफा को लिये स्टेशन की ओर चली, तब सूरज को सम्पूर्ण सत्य मिल गया। ईशरी फूफा के प्रति उसकी सारी दीनता शौर्य में बदल गई। मन का सारा अनुताप उत्साह बन गया। मारे प्रसन्नता के वह उछलता हुआ अपने मुहल्ले में आया; रम्मन, जगनू, हीरा, रजुआ और चन्दा को लिये वह दौड़ता हुआ चौक भागा; फूल के गजरे, माले लिये और वह सब को लिये स्टेशन भागा। प्लेटफार्म पर वह गाड़ी खड़ी थी, जिसके एक सीकचेदार डिब्बे में पुलिस से रक्षित ईशरी फूफा बैठे थे।

सूरज और उसके पाँचों साथी अपने-अपने हाथ में फूल की मालाएँ और गजरे लिये चुपचाप उस डिब्बे के सामने खड़े थे और कभी वे पुलिस की आँखों में देखते और कभी ईशरी फूफा को। पुलिस बराबर डाँट रही थी, धमका रही थी कि वे सब वहाँ से हट जायँ, पर ईशरी फूफा बड़ी शक्ति से पुलिस से बाहर आ बच्चों की पुष्पाञ्जलि लेने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

जब गाड़ी उनकी आँखों से ओझल होने लगी, तब एकाएक सूरज ने देखा सामने 'क्रासिंग' के पास तार के खम्भे से लगी हुई मधू बुआ खड़ी है—चुप, निःस्पन्द, जैसे वह स्वयं विदा बनकर वहाँ जम गई हो, और तार के खम्भे से कान लगाकर वह भागती हुई गाड़ी के स्वरों के बीच जैसे किसी की आवाज़ सुन रही हो—अब तुम घर जाओ! मैं फिर मिलूँगा! तुम्हारी तपस्या मुझसे बड़ी है—बल्कि यूँ समझो मधूरानी, तुम्हारा ही तप मेरा बल है, मेरी प्रेरणा है! मैं हूँ, क्योंकि तुम हो! जाओ विदा, फिर मिलने के लिए विदा, बिछुड़ने के लिए नहीं।

तीसरे दिन सुबह गद्दी पर आये हुए अंग्रेज़ी-हिन्दी दोनों अखबारों में प्रकाशित हुआ था—'बम्बई क्रान्तिकारी दल का वह प्रमुख कार्य-कर्त्ता गिरफ़्तार किया गया, जिसकी पार्टी ने अनुमानतः पिछले वर्ष 'फ्रन्टियर मेल' से सरकारी ख़जाना लूटा था।'

१२

ईशरी जैसे पारस पत्थर था। रूपावहू को स्पर्श कर गया। उसमें न जाने कैसी आँच थी, जो सबको प्रकाश दे गई।

कई महीने बीत गए।

एक दिन रूपावहू ने अपना सारा घर-आँगन धो डाला। अपने कमरे को गोबर से लीपा, फिर मिट्टी से पोता और दोपहर होते-होते फिर पानी से धोकर कमरे में गंगाजल छिड़क लिया।

खिड़की के पास अपने हाथों ईंटें सजाकर छोटी-सी चौकी बना ली। कीमती आसन बिछाकर उसने शिव-पार्वती, राम-सीता और विष्णु-लक्ष्मी की उन तीनों मूर्तियों को स्थापित किया, जो पिछले दिनों मुनीम जी द्वारा वृन्दावन से मँगाई थीं।

अनवरत चौबीस घण्टों तक घी का दीप जलता रहा। धूप और अगरबत्तियाँ सुलगती रहीं। विधि से आरती हुई, भोग लगे और मधू बुआ, सूरज, सीता और गौरी को लिये अखण्ड रामायण का पाठ हुआ।

एक रात वह मधू और सूरज को संग लिये चौक बाजार गई और शीशे के चौखटे में जड़ी हुई कई धार्मिक तस्वीरें ख़रीद लाई और सबको पूजा की चौकी के आसपास, ऊपर-सामने टाँग दिया।

जिस नियम से सूरज ठाकुरद्वारे की आरती में शामिल होता था, उसी नियम से वह माँ के भगवान् की पूजा में भी भाग लेने लगा था। लगता था, उसमें सहज धार्मिक श्रद्धा थी, प्रीति थी और सबसे ज़्यादा उसमें इस भाव का सत्य था कि ठाकुरद्वारा उसके घर के पिछ-वाड़े है, सन्तोष के पिताजी उसके पुजारी हैं—जो उसे बेहद मानते हैं। सन्तोष का वहाँ घर है—सन्तोष जो काशीपुर में अब पाँचवीं कक्षा में पढ़ती है, जो उसे बराबर ख़त भेजती है। और उधर दूसरा मन्दिर उसके ही घर में है, जहाँ उसकी माँ पूजा करती है।

चेतराम धीरे-धीरे बस्ती की कई संस्थाओं और संगठनों का सदस्य हो चुका था। नगर कांग्रेस-कमेटी का सदस्य, और आर्य समाज का सहायक मन्त्री था। पिछले दिनों वह भारतीय वैश्य परिषद् की भी सदस्यता में आ गया था।

उन दिनों बस्ती में एक ओर आर्यसमाज और दूसरी ओर सनातन-धर्म के व्याख्यानों का बड़ा ज़ोर था। नित्य नये-नये उत्सवों और समा-रोहों से बस्ती गूँजा करती थी। बाहर से बड़े-बड़े विद्वान् वक्ता और प्रचार-मण्डलियाँ आया करती थीं। चेतराम सब में चन्दा देता, सबका सदस्य बनता और जहाँ कहीं भी उसे ज़रा भी अवसर मिलता, वह बिना भाषण दिये न रहता। सभापति का आसन ग्रहण करने से तो वह

जैसे जी जाता; कोई चिन्ता नहीं, अगर कुछ खर्च भी करना पड़े तो क्या ! बस्ती में कोई किसी तरह का राजनीतिक भाषण, सांस्कृतिक समारोह हो और किसी भी पार्टी का कोई लीडर आये, चेतराम बिना उसमें सम्मिलित हुए चैन नहीं लेता था। कहता था, वह भारत माता की सन्तति है और उसकी सम्पत्ति राष्ट्र का धन है।

लेकिन चेतराम के व्यवहार, भाषण अथवा अन्य कार्यों से कभी कोई पुलिस का एक सिपाही भी असन्तुष्ट नहीं होता था। वह पता नहीं कैसे सबसे कुछ-न-कुछ विश्वास पाता था।

पर बस्ती में स्पष्टतः उसके केवल तीन प्रतिद्वन्द्वी थे—चेयरमैन साहब चौधरी रामनाथ, और बड़ी कोठी वाले सैयांमल तथा छिपे-छिपे चन्दनगुरु।

बीते हुए इलेक्शन का सबसे बड़ा घाव गुलज़ारीलाल के सीने में हुआ था। और वह अब तक बढ़ता जा रहा था। रुपये-पैसे से तो वह टूटा ही, उसकी मानसिक स्थिति में एक ऐसी भयानक गाँठ पड़ गई, जिसने उसे शून्य और निष्क्रिय बना दिया। न वह अपनी गद्दी पर ही बैठता, न अपने व्यापार में ही दिलचस्पी लेता। बस, इधर-उधर बैठकर दम-पर-दम बीड़ी पीता और खाँसता रहता। घर-गृहस्थी और व्यापार का सारा भार उसके बड़े लड़के नारायणदास, जिसकी उमर चौदह वर्ष से ज्यादा न थी, पर पड़ गया था।

चेतराम गुलज़ारीलाल को बेहद प्यार करने लगा था; नारायण-दास को सारी सहायता देता था, और इस तरह इन दोनों घरों में परस्पर प्रीति बढ़ गई थी। नारायण दास और सूरज में बहुत स्नेह था, और नारायणदास की बड़ी बहन नारायणी मधु बुआ और रूपाबहू की प्रीति में बँध गई थी।

चेतराम गुलज़ारीलाल के अन्तस् के दर्द को खूब समझता था। वह चाहता था कि गुलज़ारीलाल का घाव किसी तरह भर जाय। उसका धोखा खाया हुआ, टूटा हुआ व्यक्ति उसे नये सिरे से वापस मिल जाय।

छेदामल का अहाता अब बिलकुल सूना पड़ गया था। लड़ाई की खबरें आने लगी थीं, जिसका फल बस्ती के व्यापार पर इतना पड़ रहा था कि सारा व्यापार रुक-सा गया था। सारे भाव, सारी व्यवस्था जैसे किसी अपूर्व सत्य की प्रतीक्षा में थम गई थी। गाँव के किसान अपने को बाँधकर जैसे बाट जोहने लगे थे। अब छेदामल के अहाते में बहुत ही कम गाड़ियाँ आती थीं।

और वह बालकों की जो मंडली थी उसका सरदार रम्मन भी था, और उससे भी बढ़कर जगनू।

रम्मन अब आठवीं क्लास में था। पिछले दो वर्षों से वह लगातार फेल हो रहा था, और इस तरह अब सूरज उसकी कक्षा में पहुँच गया था।

सूरज रम्मन को स्कूल में ढूँढ़ता, कक्षा में पूछता, पर पिछले कई हफ्तों से वह उसे मिला नहीं। छेदामल और वसंता से पूछने पर तो पता लगता कि रम्मन स्कूल गया है—तब सूरज चुप रह जाता, लेकिन बाद में रम्मन का पता नहीं मिलता।

और जगनू अब स्टेशन पर जला हुआ कोयला बीनने लगा था। सुबह बहुत ही तड़के सोने से जागकर उठ भागता—कंधे पर झोली लिये रामलखन पनवाड़ी की बन्द दूकान पर आता। जली-बुझी और पीकर फेंकी हुई बीड़ियों के टुकड़े उठा लेता और चोथमल हलवाई की भट्टी से एक बीड़ी सुलगाकर और उसी तरह एक बीड़ी की आग से दूसरी को सुलगाता और क्रम से पीता हुआ वह सीधे स्टेशन पहुँच जाता।

संयोग से जिस दिन उसकी झोली का पूरा बोझ दोपहर तक पूरा हो जाता, उस दिन उसके बड़े भाग्य होते। लेकिन ऐसा बहुत कम होता; प्रायः होता तो यह था कि कहीं तीसरे पहर उसकी झोली भर पाती थी।

स्टेशन पर कोयला बीनने और बेचने का काम कम-से-कम बस्ती

के पचास-साठ मज़दूर बसाने करते थे। इनमें तीन भाग औरतों का था—ढली हुई तीन-चार बच्चों की माताएँ। और एक भाग में पाँच-छः वर्ष से लेकर दस-बारह वर्ष तक के लड़के और लड़कियाँ रहते थे। इनमें सबसे उत्तम कारोबार औरतों का था। दिन भर में कम-से-कम दो बार कोयले बेच लेती थीं। प्वाइंट मैन, चौकीदार, वाच एण्ड वार्ड वाला और क्रासिंग का जमादार, इन सब तक औरतों की पहुँच होती थी। उन्हें पता नहीं क्यों, बड़ी रियायत और छूट मिलती थी। तीन चार औरतें तो उनमें ऐसी भी होतीं, जो इंजिन के खलासियों और 'फायरमैन' तक से विशेष सुविधाएँ पाती थीं। उन्हें कोयला भी उम्दा मिलता था और खूब मिलता था—ढेर-के-ढेर; और ऊपर से उन्हें बीड़ियों के बंडल भी मिलते थे।

इसलिए लड़के और लड़कियों का कारोबार बहुत मन्दा रहता था। और लड़कियों से भी खराब लड़कों का काम था। वे चारों ओर से भगाए जाते थे, सबकी निगाहों में वे चोर समझे जाते थे। लड़कियों को तो केवल स्टेशन वालों की गालियाँ सहनी पड़ती थीं, पर लड़कों पर गालियों के अलावा कभी-कभी मार भी पड़ती थी; कोयले समेत झोलियाँ छिन जाती थीं।

लड़कों में अव्वल दर्जे की बदमाशी भी चलती थी। हमेशा आपस में लड़ते रहते थे, गालियों से तो उनकी जबान कभी खाली नहीं रहती थी।

और जगनू तो वहाँ लड़कों का सरदार था। रोज़ नई-से-नई गालियाँ लाता, खेल-तमाशे करता और आपस में नई-से-नई शरारतें करता।

एक दिन तीसरे पहर, चौक में हलवाई की एक दूकान पर सूरज की भेंट जगनू से हुई।

सूरज ने पूछा, "रम्मन कहाँ रहता है जगनू! दीख नहीं पड़ता!"

जगनू ने छूटते ही उत्तर दिया, "साला हरम्मा हो गया है। चौक

की सराय में घूमता है।"

"चौक की सराय ?"

"हाँ बे, वहीं जहाँ रंडियाँ रहती हैं।" जगनू ने बीड़ी के एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े को दागते हुए कहा, "क्यों, अब तक तूने सराय नहीं देखी ? हाय-हाय ! 'छल्ला दे दे निशानी, तेरी मेहरबानी'।" यह कहते-कहते जगनू बीच बाज़ार में नाच पड़ा। सूरज के कन्धे पर हाथ रखकर बड़े अन्दाज़ से बोला, "वह तो ऐसी गली है राजा, कि मार कटारी मर जाना।"

सूरज चुपचाप हँसता हुआ जगनू की सारी अदाएँ खड़ा देखता रहा।

एकाएक जगनू उसके कान में मुँह गड़ाकर बड़े रहस्य से बोला, "राजा ! आज शाम को वहाँ चलेंगे ! क्यों मालिक, पक्की रही न ?"

"क्या वह कोई बुरी जगह है ?" सूरज को जिज्ञासा हुई।

"अबे ! अंगूर की दूकानें हैं वहाँ, बड़े-बड़े लोग पहुँचते हैं," जगनू ने स्वर दबाकर कहा, "बड़े-बड़े पेट वाले। साला चन्दनगुरू भी वहाँ जाता है !"

और शाम को, रोशनी जलने के बाद जगनू बड़े ठाट से मुँह में दो बीड़े पान डाले, और ऊपर से एक सिगरेट सुलगाए सराय के एक कोने से दूसरे कोने तक सूरज का दायाँ हाथ पकड़े उसे टहलाता-घुमाता रहा। और नीचे-ऊपर, अगल-बगल चारों ओर उसे दिखाता हुआ अजीब-अजीब तरह से मुँह बनाता रहा।

सब घूमने-घुमाने के बाद जब जगनू सूरज को लिये गली से चौक की ओर मुड़ने लगा, तब धीरे-से बोला, "राजा, किसीसे कहियो मत, नहीं तो सिर पै जूते भी पड़ेंगे और बदनाम भी हो जाओगे।"

सूरज के पैकेट से नया सिगरेट जलाकर वह बोला, "जगनू बादशाह का कोई क्या कर लेगा ! खुद कोयले का रोज़गार करता हूँ, किसीके बाप की कमाई थोड़े खाता हूँ; चाहे जो करूँ, कोई परवाह

नहीं। जब मेरा बाबू मुझे मारता है, तो बेटे को मैं इतनी गालियाँ सुनाता हूँ कि मुहल्ले वाले भी थू बोल जाते हैं!"

सूरज चुप उदास था। उसके मुख से लग रहा था जैसे वह कहीं से बुरी तरह पिटकर आया है और वह रो देगा।

जब वह इतनी बुरी जगह थी, तब तू मुझे क्यों वहाँ ले गया?" सूरज के स्वर में जैसे डर समा गया था।

"जगह बुरी नहीं होती, अपनी-अपनी नीयत होती है।" जगनू ने यह कहकर मुँह में उँगली डालकर एक ज़ोर की सीटी दी। सामने से रम्मन मुड़ा चला आ रहा था।

फिर सूरज वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

ठाकुरद्वारे में आरती हो चुकी थी। माँ ने भी अपने भगवान् की पूजा समाप्त कर ली थी।

उसका मन फूल रहा था। वह बेहद चाहता था कि वह किसीसे बात करे। किसी ऐसे व्यक्ति से वह अपने अनेक उठते हुए प्रश्नों को पूछे जो उसे सही-सही उत्तर दे सके और सारी बात अपने मन में ही रखकर पचा ले—किसी अन्य से न बताए कि ये प्रश्न, ये बातें सूरज की हैं।

लेकिन जगनू की चमकती हुई आँख उसे बार-बार डरा जाती थी कि 'किसी से कहियो मत! नहीं तो सिर पै जूते भी पड़ेंगे और बदनाम भी हो जाओगे!'

ऐसी भी क्या बात? क्या क़सूर किया है सूरज ने? बदनामी किसे कहते हैं? क्यों कोई उसे मारेगा?

तो शायद वह जगह बहुत बुरी है!

रात को सूरज के मन में रह-रहकर आता कि वह अकेला उस गली में जाकर घूमे। जो जगनू बताता है, उसे जाकर स्वयं देखे।

एक बार उसके जी में आया कि वह सन्तोष को ख़त लिखे। उससे सारी बातें कह दे; उसे सब प्रश्न लिख भेजे।

अगले दिन वह सन्तोष को पत्र लिखने बैठा, पर उससे कुछ लिखते ही न बनता था। वह जो चाहता था, सोचता था और जो उसके मन में उमड़-घुमड़ रहा था, वह जैसे लिखा ही नहीं जा सकता था; किसी-से बताया तक नहीं जा सकता था। उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई साधन नहीं है।

और अगले दिन रम्मन स्वयं उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता स्कूल में जा मिला। उसे स्कूल से भगाकर कम्पनी बाग़ में ले गया, और तरह-तरह की बातें बताता रहा। ऐसी-ऐसी बातें करता रहा, जिस पर कोई विश्वास नहीं कर सकता।

पर सूरज विश्वास करता था। और रम्मन की बातों में उसे प्रच्छन्न रूप से रस भी मिल रहा था।

रम्मन किस तरह से छेदामल की गाँठ से रुपये ले लेता है, किस तरह गल्ले में से झाड़ देता है, किस तरह अनाज बेच लेता है, किस तरह रूठकर बसन्ता से रुपये लेता है, और किस तरह वह एक दिन बसन्ता की माँ की दो सोने की चूड़ियाँ चुराकर उसी गली में भेंट कर आया था—इस पूरे ब्यौरे को वह सूरज से बताता रहा।

कम्पनी बाग़ से चलते समय रम्मन ने सूरज का हाथ पकड़कर धीरे से कहा, "बस, केवल दस रुपयों का ख़र्चा है प्यारे! आज चलो मेरे संग, मज़ा आ जायगा। पतली कमर बल खाय गई...हाय दइया... ऊई!"

सूरज चुप था। रम्मन की बाहें फड़क रही थीं। बार-बार वह दस रुपये की बात अनेक आकर्षक ढंग से दुहराता रहा, जैसे यही वह बात मूल बात थी, जिसे कहने के लिए वह सूरज को क्लास से भगाकर कम्पनी बाग़ में ले आया था, और उसकी अन्य बातें केवल एक मज़बूत भूमिका-मात्र थीं।

स्कूल के फाटक पर पहुँचकर सूरज ने उत्तर दिया, "मैं ऐसी गंदी जगह नहीं जाऊँगा। वह बुरी जगह है, और मैं अच्छा लड़का हूँ। मेरी

बुआ है, माँ है, फूफा है और सन्तोष है !"

यह कहता हुआ वह भागकर क्लास में चला गया, लिखने लगा, पढ़ने लगा, पर जी उसका जैसे वहीं फाटक पर था। वह बार-बार क्लास से निकलकर बहुत चुपके-से बाहर फाटक पर देखता—रम्मन कहाँ है ? कहाँ चला गया ? हाय वह कहाँ चला गया ? रूठ तो नहीं गया !

उसी रात सूरज राजू पण्डित से दस रुपये का नोट लेकर रम्मन के घर आया। रम्मन था ही नहीं। फिर वह चौक में आया। वहाँ मिला रम्मन उसे।

"चलते हो ?" रम्मन ने एक तीव्र आवेग से सूरज के दोनों हाथों को बाँध लिया, और ललचाई हुई दृष्टि से उसे देखने लगा।

सूरज ने रम्मन के हाथ में वह दस रुपये का नोट देते हुए कहा, "लो ! तुम जाओ ! मैं नहीं जाऊँगा ऐसी जगह ! तुम जाओ, मैं नहीं जाऊँगा ! मैं नहीं जाऊँगा !"

रम्मन मुस्कराता हुआ चला गया, सूरज खड़ा देखता रहा; पहले वह धीरे-धीरे गया है, फिर कितनी तेज़ी से वह उस गली में मुड़ा है।

सूरज को जैसे पता नहीं, पर वह भी छिपे-छिपे रम्मन के पीछे चलता गया—बढ़ता गया।

गली जहाँ मुड़ती थी, जहाँ तीन-चार बीमार कुत्ते शरीर में मुँह छिपाकर बैठे थे, जहाँ म्युनिसिपैलिटी का एक बहुत धीमा-धीमा लालटेन जल रहा था, वहाँ से ज़रा हटकर दीवार के सहारे गन्दी नाली में खड़ा हो गया और वहीं से देखने लगा। रम्मन सामने के एक कोठे पर चढ़ रहा था। बारजे पर पहुँचकर उसने कोई आवाज़ दी। दरवाज़ा खुला, और वह तेज़ी से भीतर चला गया।

सूरज का पूरा शरीर काँपने लगा। फिर भी वह तेज़ी से आगे बढ़ा। ज़ीने के पास पहुँचकर उसका दायाँ पैर उस गंदे कूड़े में चला गया, जिसमें हड्डियाँ थीं, शीशे के टुकड़े थे, टूटी हुई बोतलें थीं, कुल्हड़

थे, दोने और चीथड़े थे।

वह काँपता हुआ, बहुत सँभल-सँभलकर, बहुत धीरे-धीरे ऊपर गया। बारजे में लकड़ी का एक पाया पकड़े वह खड़ा हो गया। और उसका जी हो आया कि वह चीख़कर रोये।

फिर दम बाँधकर वह बन्द दरवाज़े से चिपककर खड़ा हो गया। एक जगह किवाड़ की दरार से वह भीतर देखने लगा—बेहद गन्दा, अस्त-व्यस्त-सा कमरा है। एक किनारे लालटेन की पीली-पीली रोशनी हो रही है। फ़र्श पर शायद फटी-सी दरी बिछी है, या केवल एक मट-मैली, अनेक दागों वाली कोई साड़ी बिछी है। दीवारें कच्ची हैं, और जगह-जगह उन पर पान की पीकें फैली हैं, खटमल मारे गए हैं।

सूरज की तीव्र इच्छा हो रही थी कि वह उस बन्द कमरे को भर-पूर देखे। दरवाज़े से ऊपर दाईं ओर एक छोटी-सी लकड़ी की खिड़की थी। सूरज बारजे पर पाँव टिकाकर खिड़की को पकड़कर खड़ा हो गया—फिर पूरा सत्य उसके सामने था। ऐसा सत्य, जो उसे आरपार बेध गया। उसके सामने क्षण-भर के लिए अँधेरा फैल गया और उसमें चिनगारियाँ उठने लगीं। उसका सारा अस्तित्व ही जैसे काँप गया, और वह वहीं बारजे में बेहोश-सा गिर पड़ा। गिरते ही उसे लगा, जैसे वह चोर है, उसे पुलिस पकड़ने आ रही है, उसकी दाईं गाँठ फूट गई थी, फिर भी वह तेज़ी से लड़खड़ाता हुआ ज़ीने से नीचे उतर गया। गली में बेतहाशा भागा। मुड़-मुड़कर पीछे देखता हुआ भागता जा रहा था—भागता जा रहा था, जैसे पुलिस के साथ वे सारे बीमार और घिनौने कुत्ते उसका पीछा कर रहे हैं।

एकाएक गली के अन्त पर वह किसी आदमी से टकरा गया, और मुँह के बल वहीं गिर पड़ा।

जिससे टकराकर वह गिरा था, वह आदमी एक क्षण वहाँ रुककर फिर आगे बढ़ गया, जैसे सूरज को देखा तक नहीं।

सूरज में कुछ दीप्त हो आया। वह घायल सिंह-शावक की भाँति

झपटकर पीछे से उस आदमी पर टूट पड़ा। वह आदमी राजू पण्डित था, जिसे देखकर सूरज एक अजीब भयावह डर से चीख पड़ा—"मैं नहीं! मैं नहीं! मैं नहीं! मैं कभी नहीं!"

अपने घर आकर सूरज एकान्त कमरे में छिप गया। चूर-चूर होकर वहीं फ़र्श पर लेट गया। गाँठ का ख़ून पता नहीं कब कैसे जमकर रुक गया था।

अधिक रात बीते, नींद की बेहोशी में जब उसके मुँह से फिर वही चीख निकली 'मैं नहीं! मैं नहीं!' तब पूरे घर को सूरज के अस्तित्व का पता लगा।

मधू बुआ उसे गोद में भरकर अपने कमरे में उठा ले आई। उसकी दशा देखकर उसे रोना आ गया।

चेतराम आज सुबह से गद्दी पर जमा बैठा था। क्षण-क्षण पर इधर-उधर से न जाने क्यों लगातार फ़ोन आ रहे थे। कई तार भी आये थे। दिल्ली से गोरेमल ने अकेले चार बार 'ट्रङ्क कॉल' किया था। तीन तार आ चुके थे। उसने दिल्ली से आज्ञा दे रखी थी कि चेतराम फ़ोन के पास से हट नहीं सकता।

घर से चेतराम को बुलाने के लिए रूपाबहू ने कई बार सीता को भेजा। संगूदादी पर यद्यपि दमा का दौरा पड़ रहा था, फिर भी वह चेतराम के पास यह कहने आई थी कि सूरज की तबियत ख़राब है। रूपाबहू स्वयं उसे बुलाने के लिए गद्दी तक आई थी, पर चेतराम पर जैसे कोई और ही बेहोशी थी।

सूरज के साथ पलंग पर जैसे ही मधू बुआ सोई, वह एकाएक उठ गया, "मैं किसी के संग नहीं सोऊँगा! नहीं, कभी नहीं!"

सुबह हुई; रात बीतने पर जो सुबह होती है।

पर सुबह तो हुई, लेकिन वह सुबह अपने संग एक अजीब काली

रात ले आई। उस दिन के अखबारों में, रात के टेलीफ़ोनों में, तार के लिफ़ाफ़ों में भरकर वह रात आई-- लड़ाई छिड़ने की रात।

जो जहाँ जितना ही फैला था, जितना ही ढीला पड़ा था, वह वहाँ उतना ही सिकुड़कर बँध गया, उतना ही वह कस गया।

हर चीज़, हर वस्तु, प्रत्येक जड़-चेतन---यहाँ तक कि बस्ती का एक-एक कण किसी अपूर्व सत्य से छू गया और छूकर एकदम बदलने लगा; बेहद तेज़ दौड़ा---सीधा नीचे से ऊपर, नली में ताप पाकर ऊपर भागते हुए पारे की तरह।

जो बाहर था, वह भीतर चला जाने लगा और जो भीतर था, उसे अन्धकार में छोड़ दिया गया। सारा मूल्य बदला। बदलने लगा---यूँ ही अपने-आप। क्योंकि मूल्य का किसी ने भाव ही नहीं पूछा; और सारा माल, समस्त सत्य अपने-आप ही बिकने लगा।

दूसरा भाग

छोटा रुपया

१

जिस नुक्कड़ पर पहले लड़के छेदामल के अहाते से गोबर बीन-बीनकर उसकी बड़ी-बड़ी ढेरियाँ लगाते थे, अब वहाँ गिमतीनुमा एक दुकान चालू हुई थी—पान बीड़ी सिगरेट, दूध और चाय की; और उसका नाम था 'आज़ाद रेस्टोरेन्ट'।

जो गली चौक के तिराहे से दाईं ओर घूमकर सर्राफे की ओर गई थी, उसमें पचास-एक क़दम आगे चलकर जहाँ से लोहे वाली गली मुड़ती थी, उस पर जो हरिकीर्तन वाला घर था, अब उसमें एक भोजनालय खुल गया था; नाम पड़ा था 'वृन्दावनलाल व श्रीकृष्ण भोजनालय'।

और चौक में पनवाड़ियों से आगे जहाँ खोंचेवाले बैठते थे, मशहूर गज़कवाली दुकान के सामने, वहाँ जो पाटनवाले मारवाड़ी के दो पौसले चलते थे अब उस जगह एक दोमंज़िला मकान खड़ा हो गया था और उसमें एक होटल खुला था—नीचे भोजन, ऊपर विश्राम; नाम था उसका 'राष्ट्रीय होटल'।

बड़े दरवाज़े से आगे चलकर हनुमान वाटिका के पास रामलीला का जो छोटा-सा मैदान था, वहाँ अब 'राबर्ट्स कम्पनी' की एक फैक्टरी खुल गई थी। उसमें तीन चीज़ों का व्यापार होने लगा था—कपास की तैयारी, अलसी-तेलहन की पिराई और बर्फ का काम।

स्टेशन की ओर, राईसत्ती के दाएँ जो पूरब-पश्चिम फैला हुआ मैदान था वह पूरी जगह अब एक पक्की चहारदीवारी से घिर गई थी।

अब उसमें एक कारख़ाना खुल गया था, जिसे बस्ती के लोग 'साहब का पेंच' कहते थे। उसमें खाँड और शीरे का काम होता था।

स्टेशन के मालगोदाम और मार्टिन कम्पनी के बिजलीघर के बीच जहाँ धीवरों के चार-छः फूस के घर थे, वहाँ अब टिन का एक लम्बा-चौड़ा गोदाम बन गया था, जिसका मालिक था 'रैली ब्रदर्स' मिलिटरी राशन कान्ट्रैक्टर, जो वहाँ से पूर्वी मोरचे पर राशन सप्लाई करता था।

म्युनिसिपल बोर्ड के पीछे जो सनातन धर्म की बिल्डिंग बनी थी, जिसमें एक ओर लाइब्रेरी, और दूसरी ओर जहाँ अनेक महात्माओं और विद्वानों के भाषण हुआ करते थे—उस समूचे भाग में अब राशनिंग दफ़्तर खुल गया था।

बस्ती के अन्दर दो पुलिस चौकियाँ भी क़ायम हो गई थीं। एक चौकी थी मैयासल और चन्दनगुरु के घरों के बीच, और दूसरी थी ठीक घण्टाघर के पीछे जहाँ अब महातांत्रिक पंडित बमशंकरजी ज्योतिषी लाहौर से आ बसे थे।

लेकिन ये विकास और परिवर्तन बस्ती के व्यक्तित्व को जैसे कहीं से भी नहीं छू सके थे, क्योंकि वे सब बाह्य थे, महज़ विकास थे।

पर जिस भयानक सत्य ने बस्ती के मूल व्यक्तित्व को छूकर, इस तरह छूकर कि उसकी दसों उँगलियों से बस्ती के शरीर पर अनेक काले-काले दाग़, धब्बे और निशान पड़े, बस्ती के मन का हर रेशा जिससे उलझ गया, जिसने बस्ती की समूची शाश्वत गति को ही मोड़ दे दिया, जो सबके मूल में घुन की तरह पैठ गया, जो कहीं छिपे-छिपे बस्ती के प्राणों में उन पर्तों को उभारता चला, जो अशुभ थे, निन्द्य थे, बेहद घिनौने और अपावन थे, जिन्हें अब तक किसी ने न देखा था, किसी ने न सुना था, न जिनकी कभी किसी ने कल्पना ही की थी, न किसी ने जिन्हें चाहा ही था, वह सत्य था महायुद्ध से प्राप्त राशनिंग और कंट्रोल। हालाँकि उस बस्ती में खाद्य सामग्री की राशनिंग नहीं लागू हो सकती थी फिर भी राशनिंग की व्यापक आत्मा वहाँ कुंडली मार-

कर बैठी थी।

तभी बस्ती बदल गई।

ऐसी बदली कि जैसे उससे उसका मूल ही छूट गया।

अब बस्ती की सड़कों पर किसानों की वे बैलगाड़ियाँ नहीं दीख पड़तीं जो गुड़, गेहूँ, जौ, चना, खाँड, अरहर, तेलहन, मटर से सरी-लदी आती थीं। इनका दिन-रात जैसे ताँता ही नहीं टूटता था, लगता था अन्नपूर्णा माँ की बाँहें हैं जो आजानु हैं, असीम हैं, रक्षक और गरिमामयी हैं।

अपेक्षाकृत अब बस्ती की पक्की चौरस सड़कें बैलगाड़ियों और ठेलों से सुनसान थीं, जैसे किसी मोड़ पर किसी निरंकुश शक्ति ने सारी आतायात ही रोक दी हो। छेदामल का अहाता, चेतराम का अगवारा, सैयांमल का द्वार, गुलजारीलाल की बारादरी, छीतरमल, गिरधारी-लाल और दयाराम जैसे कच्चे आढ़तियों के बरामदे और गोदाम अपने पुराने रूप में वीरान हो गए थे, लेकिन नये अर्थ में बेहद आबाद थे, किसी को दम मारने की भी फुरसत न थी।

जिन गली-पिछवाड़ों, सड़कों और दूकान-दूकान के बरामदों और बैठकों में दलालों का व्यस्त ताँता लगा चलता था अब वह पहले अर्थ में थम गया था, लेकिन नये अर्थ में दलालों की तेज़ी, जीवन की व्यस्तता बेहद बढ़ गई थी; रामजुहारी करने की फुरसत नहीं थी।

इस तरह बाँध तोड़कर जीवन फूटा था, कहीं सीमा छोड़कर वह भी रहा था, क्योंकि व्यापार कहीं बँधता नहीं, उसकी धुरी में गोल-गोल पहियेदार रुपये जो बँधे हैं। लोग दिन-रात जागने लगे। पर जाग-कर भी लोग कभी शोर नहीं करते थे, आपस में बोलते नहीं थे। ऐसा लगता था कि लोग थकी नींद में सोये हुए हैं, और जैसे उसी अवस्था में बस्ती का व्यापार चलता था—संकेतों की भाषा में, गूँगों की बोली में, आँखों और उंगलियों के इशारों के बीच व्यापार की कठपुतली नाचती थी और इस तरह नाचती थी कि न रुपयों के घुँघरू बजते थे

न साज़िन्दों की गत सुनाई पड़ती थी ।

एक के पाँच !

एक के दस !

एक के बीस, और बीस के असंख्य असीम !

मिट्टी-सोना एक भाव ! गधे-घोड़े एक भाव ! एक लगाओ बीस पाओ ! तरकीब लगाओ राज पाओ !

खूब बोल थे उस संगीत के । बस्ती के व्यापारी, आढ़तिये और महाजन बेहद प्रसन्न थे । सदा उनके मुँह में पानी भरा रहता था । कहते थे क्या शानदार ज़माना आया है ! क्या बाप-दादों ने कमाई की होगी, एक-एक पैसे के लिए मरते थे, कंजूसी करते थे, पेट काटते थे, तब कहीं चार पैसे देखते थे । अजी, अब तो एक ही रात में लखपती हो जाओ ! धन्य है ज़माना, वाह रे अंग्रेज बहादुर ! तुम सदा बसो इस देश में ! अजी, का पूछे हो ! व्यापार के लिए महायुद्ध चाहिए, अकाल चाहिए, कंट्रोल चाहिए और रात चाहिए ! न पूँजी की जरूरत, न कोई मूलधन पूछने वाला, न भाव की जरूरत, न कोई मूल्य पूछने वाला, अब भी जो अपना घर रुपयों से न भर ले वह क्या आदमी !

हनुमानगढ़ी, ठाकुरद्वारे, भैरो बाबा, जोगियानाथ और सती अखाड़े के बाघम्बरी बाबा के शिवाले अब रात को भी बन्द नहीं होते थे । लगातार लोग एक-दूसरे से अपने को छिपाकर पूजने आते थे, देवताओं से लेने आते थे, उनसे स्तुतियाँ करते थे—'परमिट' की 'लाइसेंस' की; उन्हें कोई देख न सके, कोई पकड़ न सके इसकी प्रार्थना । उनकी घूस स्टेशन मास्टर स्वीकार कर लें, माल बाबू माल लें, एस० एम० आई, एस० ओ, डी० एम० और इनसे भी ऊपर के लोग उनकी डालियों को कबूल कर लें, उन देवालयों और गढ़ी-अखाड़ों में इन्हीं बातों की पूजा होने लगी ।

फरवरी के प्रारम्भिक दिन थे; तीसरे पहर का समय। छेदामल के अहाते में खड़ा चन्दनगुरु अपने कबूतरों के झुंड को दाना चुगा रहा था, और आसमान में उसके चार सफेद कबूतर सूरज के चार काले कबूतरों के संग गिरहबाज़ी कर रहे थे।

सूरज अपने घर की छत पर खड़ा था और उसके शेष कबूतर छत की बरसाती में बने कबूतरखाने में बन्द हो चुके थे। पिछले दो दिनों से चन्दनगुरु के कबूतर सूरज के कबूतरों की गिरहबाज़ी की होड़ में हार रहे थे। आज की होड़ को बहुत से लोग अपने-अपने दरवाज़े, चबूतरे और छतों-कोठों से देख रहे थे।

सरजू सुनार के पिछवाड़े कच्ची नाली की मोरी पर रखे हुए पत्थर पर, तहमद बाँधे और कसी बनियाइन पहने जगनू बैठा था। उसके संग लाले, रजुआ, बिपिन और पहलाद भी थे। सबके हाथ में सिगरेटें थीं। कभी आसमान में कबूतरों को देखते, कभी आपस में बातें करने लगते, और कभी अपनी हँसी में इस तरह मस्त हो जाते कि लोट-लोट हो जाते।

जगनू ने कहा, "अबे रजुआ, तूने नहीं सुना! सैयांमल मुझसे कहता था अगर तू जगनू मेरा एक काम कर दे तो मैं तुझे एक जोड़ा धोती इनाम दूँ।"

"एक जोड़ा धोती!" सब आश्चर्य में रह गए। रजुआ ने पूछा, "अबे सैयांमल से कह दे, वह काम मैं कर दूँगा। एक जोड़ा धोती के लिए दुनिया का कोई काम किया जा सकता है बे।"

लाले, बिपिन और पहलाद तीनों ने कहना शुरू किया, "और क्या, देखते नहीं, सरकारी दुकान पर दो-दो गज़ कपड़े के लिए कितनी भीड़ जमा रहती है। और पुराने चेयरमैन चौधरी रामनाथ की दुकान पर एक-एक जनानी धोती के लिए…।" तीनों ने अपनी-अपनी जबान दाँत तले दबा ली। जगनू ने बड़े जोर से थूका, फिर बोला, "और वह रम्मनवाँ, जो अब लाला हो गया है, छेदामल को उल्लू बनाने के

लिए जो गद्दी पर बैठने लगा है, वह एक-एक बोतल मिट्टी के तेल के लिए क्या करता है ? सब सालों के कीड़े पड़ेंगे।"

"छोड़ बे इन बातों को !" रजुआ ने कहा, "कबूतरों की गिरह-बाज़ी तो देख ! मुझे ऐसा लगता है कि आज चन्दनगुरु जीत जायगा ! सुना है, पोस्ता, दालचीनी और घी में तलकर लहसुन खिलाता है अपने उन सफेद कबूतरों को !"

"हट बे !" जगनू ने कहा, "अपना राजा सूरज जीतेगा। देख लेना, उसके कबूतरों के डैनों में अफ़ीम का पानी चढ़ाया है मैंने। गलों में तावीजें बँधी हैं मालिक !"

उसी बीच रजुआ ने पूछा, "तो सैयांमल किस काम के लिए कह रहा था, बताता क्यों नहीं ?"

"बा हरम्मा जे कह रहा था कि तुम मुझे यह पता लगाकर दो कि चेतराम के किस गोदाम में अब भी गेहूँ भरा है।"

"तो जे कउन बड़ी बात है बे ?" रजुआ ने कहा। "बता दे कहीं उत्तर-दक्खिन अबे, एक जोड़ा धोती के मतलब हैं तीस रुपये ! कौन पहनता है आजकल धोती। बड़े-बड़े लाला के शाहजादे सुटन्ना पहनने लगे। लाला लोग भी पैजामा पहनने लगे !"

जगनू ने बीच ही में कहा, "अबे, अपुन को देख न, अठारह साल का मोंछ-मुछक जवान हूँ और मेहरिया की फटी धोती दुहरकर लङ्गबन्द बाँधे बैठा हूँ। लेकिन सैयांमल की धोती पर धार मारने नहीं जाऊँगा। बड़ा भारी घाघ है। लाला चेतराम की बढ़ती देखकर बौखला गया है, किसी तरह लाला को पकड़वाने का दाँव ढूँढ़ रहा है।"

उसी समय सरजू सुनार के पिछवाड़े की खिड़की खुली और हीरालाल दिखाई पड़ा। उसने नये सिरे से सबको सिगरेट पिलाई।

जगनू ने शरारत से पूछा, "क्यों भाई मीडियम लाल, सुना है आजकल राजू पण्डित के यहाँ बड़ा आना-जाना है।"

"अरे कस्तूरी जो वहाँ है !" लाले ने कहा।

"क्या बात कही है !" विपिन ने आँख मार दी।

जगन्नू ने पूछा, "क्यों हीरालाल, राजू पण्डित तुम्हें अब भी आत्मा बुलाने के खेल का मीडियम बनाता है न !"

"बनाता तो है, पर बहुत कम, जब कोई नहीं मिलता, क्योंकि अब मुझपै आत्माएँ नहीं आतीं। मेरी उमर ज़्यादा हो गई है, मीडियम के लिए बारह साल से नीचे का ही बालक होना चाहिए !" हीरालाल बताने लगा, "और जब से काशीपुर से सन्तोष आई है, तब से राजू पण्डित अपने घर में यह आत्मा बुलाने का काम नहीं करता। बड़ा रोब है बेटी का बाप पर !"

"अरे लायक बेटी जो निकली," ताले कहने लगा। "धर्मू पण्डित के खानदान में अब तक किसी ने हिन्दी मिडिल तो पास नहीं किया था, चलो बेटा न सही बेटी ने ही कुल उजागर किया।"

"हिन्दी मिडिल ही नहीं," हीरालाल ने तपाक से कहा, "सुना है एक दर्जा संस्कृत और एक दर्जा अँग्रेज़ी भी। मैंने किताबें देखी हैं, आठवीं क्लास की अँग्रेज़ी-किताबें हैं उसके पास। और कैसी निखरी है वह, जैसे चन्द्रमा की फाँक !"

विपिन और पहलाद दोनों एकाएक बिगड़ उठे, "अबे, क्या बात उठा ली सिर पै खामखाह ! देखो न, कबूतर कहाँ चले गए, कहीं आसमान में तो दिखाई नहीं पड़ रहे हैं !"

सब उठकर चौकन्ने से इधर-उधर देखने लगे, गली से सड़क पर चले आये, घण्टाघर के नीचे खड़े होकर देखने लगे, आसमान में कबूतर लापता थे। फिर वे गोपालन गेट से चेतराम की छत पर सूरज को देखने लगे, सूरज भी वहाँ से लापता था। फिर वे सब-के-सब छेदामल के अहाते में आये। वहाँ देखा, लोगों की भीड़ लगी है।

अहाते के एक किनारे चन्दनगुरु के सारे कबूतर अब भी सरसों के दाने चुग रहे थे। चन्दनगुरु बड़े आवेश में सूरज से बोल रहा था। सूरज विजय की मुस्कान में आकाश की ओर देख रहा था। उसके

कबूतर अब भी बहुत गहरे आसमान में उड़ रहे थे। चन्दनगुरु के चारों हारे हुए कबूतर सामने के छज्जे पर थके बैठे थे। चन्दनगुरु उन्हें झुँझला-झुँझलाकर अपने पास बुला रहा था, लेकिन पता नहीं क्यों, वे कबूतर मालिक के पास नहीं आ रहे थे, जैसे वे अपनी पराजय से डर रहे थे।

जगनू, रजुआ, ताले आदि को देखते ही सूरज खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसी समय सामने के छज्जे से उड़कर चन्दनगुरु के चारों कबूतर अहाते में उतरे और कबूतरों में मिल गए। चन्दनगुरु ने बढ़कर उनमें से एक कबूतर को पकड़ लिया और न जाने किसे बड़ी भद्दी-भद्दी गालियाँ देता हुआ अपनी मुट्ठी में उस कबूतर को इस तरह भींचने लगा कि चीं-चीं के आर्त स्वर से वहाँ का वातावरण करुण हो गया और एकाएक लोगों ने देखा चन्दनगुरु ने उस कबूतर को इतनी शक्ति से ज़मीन पर दे मारा कि उसके सफेद-सफेद दूध से धुले जैसे पंख उसी क्षण हवा में बिखर गए। चन्दनगुरु उसी आवेश में दूसरे कबूतर की ओर झपटा। सूरज दौड़कर सामने तन गया और उसका विरोध करने लगा। चन्दनगुरु उबल गया था; विवेकशून्य उसने अपने क्रोध को सूरज ही पर उतार दिया। ऐसा चपेटा उसने सूरज को दिया कि वह लड़खड़ाकर चारों शाने चित्त ज़मीन पर गिर पड़ा। अहाते के सारे कबूतर उड़ गए और अहाते की सारी भीड़ हतप्रभ रह गई।

ज़मीन से उठते-उठते सूरज ने ऐसी दृष्टि से चन्दनगुरु को देखा कि उसका अर्थ सब समझ गए। सूरज के सारे साथी जगनू, रजुआ, ताले, पहलाद, विपिन और हीरा चन्दनगुरु पर पिल पड़े और जमकर मार होने लगी। पर वहाँ के उपस्थित लोगों ने बीच में पड़कर उसको पूरा होने से रोक लिया जो वहाँ एकाएक विकास पा गया था।

लेकिन करीब-करीब चोट सबको लग गई; चन्दनगुरु की खूब मरम्मत हुई और उसके मुँह पर कई जगह नाखूनों के घाव हो गए। मुख्यतः सूरज, जगनू और रजुआ पर चन्दनगुरु के कई तमाचे और

घूँसे लग गए।

लेकिन सूरज का सीना फिर भी तना रहा, उसके सारे मित्र तब भी खिलखिलाकर हँस रहे थे, क्योंकि मूलतः विजयी वे थे। चन्दनगुरु भद्दी-भद्दी गालियाँ बकता हुआ अहाते से बाहर चला गया।

शाम होते-होते एक अजीब गुल खिला; चन्दनगुरु की जीते जलाने के लिए एक समा बाँधा गया। हरे बाँस की एक छोटी-सी अर्थी सजाई गई। चन्दनगुरु के मरे हुए कबूतर को कफ़न देकर उसे अर्थी पर रखा गया और रजुआ, जगनू, ताले और पहलाद के चार कन्धों पर वह अर्थी श्मशान की ओर बढ़ी। पीछे-पीछे सूरज, हीरा, रम्मन, किशन, विपिन, चन्दर और पचीसों अन्य हम-उमर एक संग चले। अर्थी छेदामल के अहाते से उठाई गई थी और पीछे-पीछे ये नारे बुलन्द किये जाने लगे, "चन्दनगुरु हाय-हाय! चन्दनगुरु मुरदाबाद!

सूरज इण्टर प्रथम वर्ष में था। स्वभावतः वह इस वर्ष इण्टर फ़ाइनल की परीक्षा में पहुँचा होता, लेकिन पिछले वर्ष राष्ट्रीय क्रान्ति की लहर में वह अपने कालेज की ओर से एक विशेष आन्दोलन में अग्रणी होने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया था और मुरादाबाद जेल में वह चार महीने की कड़ी सज़ा भी भुगत आया था। उसी सिलसिले में एक दूसरी सज़ा का गहरा चिह्न उसकी दाईं बाँह में अब भी तरो-ताज़ा था।

पिछले वर्ष ईशरी और सूरज के कारण चेतराम ने बस्ती के पुलिस आफ़िसर को एक लम्बी रक़म घूस में दी थी और अपने नाम तथा फ़र्म को सरकार की नज़रों में बहुत ऊँचा रखने के लिए उसने एकमुश्त ढाई हज़ार की थैली कलेक्टर को 'वारफण्ड' में दी थी। इसके फल-स्वरूप चेतराम को एक निश्चित कोटे में सीमेंट बेचने का परमिट मिला था, और उसी की सिफ़ारिश से लाला गुलज़ारीलाल के लड़के नारा-

यणदास को लोहा और नमक बेचने का परमिट मिल गया था।

चन्दनगुरु के कबूतर को विधिवत दफ़नाकर जब सूरज का गोल बस्ती में वापस आया, उस समय सूरज को सूचना मिली कि चन्दनगुरु ने अपने यहाँ से सब कबूतरों को निकाल दिया है। इस ख़बर ने सूरज को कहीं इस तरह छू दिया कि उसका मन भर आया।

अकेला गली-मुहल्लों में घूमता-घूमता, सबसे अपने को छिपाकर वह चन्दनगुरु के घर के ठीक सामने एक माल गोदाम में बैठकर देखने लगा—चन्दनगुरु के हाथ में एक गुलेल है, वह घायल भेड़िये की तरह नीचे-ऊपर, छत-दरवाज़ा, मुँडेर और ज़ीना सब पर चक्कर काटता हुआ बड़ी बेरहमी से अपने कबूतरों को भगा रहा है। उसने कबूतरों के निवास-स्थान को उजाड़ दिया है, मिट्टी के सारे लटके हुए सूराख वाले घड़े, लकड़ी के लटके हुए सब बक्से तोड़कर नीचे फेंक दिये हैं। वह लम्बा बाँस, जिस पर कबूतरों के बैठने के लिए ख़ूबसूरत छतरी बनी थी टूटने से केवल वही शेष थी; सम्भवतः चन्दनगुरु अपने आवेश में उसे भूल गया था। जितना ही वह कबूतरों को मार-मारकर उड़ाता, कबूतर उतने ही बिखर-बिखरकर उसके घर के सब हिस्सों में फड़फड़ा-फड़फड़ाकर, आपस में न जाने कैसी-कैसी गुटुरूँ गूँ-गुटुरूँ गूँ की बोलियाँ बोल-बोलकर सारे वातावरण को करुण बना रहे थे। वर्षों के प्यार और लाड़ से पले हुए वे कबूतर उतनी रात को अपने मालिक के घर से कैसे और क्यों जायँ? उनका अपराध क्या था? क्या भूल-चूक हो गई थी उनसे? जैसे वे सारे बिखर-बिखरकर उड़ते-लौटते, गिरते-बैठते और जहाँ कहीं भी उन्हें दुबककर छिपने की जगह मिल जाती, वहाँ अँड़सकर वे कबूतर अपनी अजीब डरी-डरी, त्रस्त आँखों से, फिर भी तूफ़ान में झूमती असंख्य बल खाती हुई कोमल डालियों की तरह अपनी गर्दनें घुमा-घुमाकर, अपनी शिशु-निगाहों से न जाने क्या देख रहे थे, पता नहीं क्या ढूँढ़ रहे थे!

एकाएक चन्दनगुरु ने एक हाथ में टार्च ली और पूरे घर में वह

उन स्थलों को न जाने क्यों देखने लगा, जहाँ दुबके, धँसे, छिपे और अँड़सकर वे सारे कबूतर बैठे थे। फिर उसने गुलेल पर गोली साधी और उसे खींचकर जैसे ही वह संधान करने चला, उसी क्षण सूरज दौड़कर चन्दनगुरु से लिपट गया, और गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगने लगा, जैसे वही कबूतरों का गिरोह हो, जिसे चन्दनगुरु बनवास दे रहा था।

"ऐसा न करो गुरु चाचा।"

"अब तो कर चुका, अब क्या होगा, अब कुछ नहीं हो सकता!"

बहुत देर चुप रहने के बाद सूरज फिर बोला, "कबूतरों को आज इस रात को तो न निकालो!"

चन्दनगुरु कुछ बोला नहीं, निर्विकार-सा बैठा रहा। सूरज को लगा कि चन्दनगुरु उसकी बात मान गया है, अब वह इस तरह कबूतरों को नहीं त्यागेगा।

और आश्वस्त हो सूरज घर चला गया।

वह घर!

जिसकी संगूदादी का स्वर्गवास पिछले वर्ष हो गया; सीता बेटी की शादी के दो महीने बाद। सारी अनिच्छाओं, सारे मानसिक विरोधों के बावजूद भी अन्त में सीता बेटी की शादी गोरेमल के मुनीम भूरादास के लड़के रामदास से ही हुई।

ब्याह के दिन संगूदादी अपने कमरे से एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं निकली थी, सिर थामकर रोती रह गई थी। रूपाबहू ब्याह के दस दिन पहले ही अपने पिता गोरेमल से लड़ चुकी थी, और लड़कर हार चुकी थी, और उस हार का दण्ड उसने अपने-आपको इस रूप में दिया था कि पूरे ब्याह में उसने एक बार भी अपने दामाद का मुँह नहीं देखा, और तीन दिन तक उसने एक दाना अन्न भी अपने मुँह में नहीं डाला। वह कहीं अपने-आपमें चीख़-चीख़कर कह रही थी कि कौन होता है गोरेमल मेरी सीता बेटी का ब्याह रचाने वाला। यह गोरेमल दुकान का मालिक होगा, लेकिन मेरे घर का मालिक यह क्यों बनता है!

सूरज जब अपने घर में पहुँचा, उस समय सभू बुआ चौके में बैठी सूरज की प्रतीक्षा कर रही थी।

सूरज को पाते ही बुआ ने गम्भीरता से कहा, "क्यों रे सूरज, इधर तो आ! तेरी उमर अब कबूतर लड़ाने की रह गई है? क्यों चन्दनगुरु से लड़ाई की थी तूने? सुना है, उसने मारा है तुझे!" यह कहती-कहती बुआ सूरज के पास चली आई और उसका निरीक्षण करने लगी कि कहीं चोट तो नहीं लगी, "बताता क्यों नहीं रे? कहाँ मारा है उस दाढ़ीजार ने? उस आवारा के संग तू खेल-तमाशे करने चलता है!"

ऐसे अवसरों पर सूरज बुआ के सामने बस चुप्पी साध लेता था, एक चुप, हज़ार चुप!

सूरज के उत्तर के लिए जब बुआ बहुत हैरान होने लगी, तब सूरज ने केवल इतना ही कहा, "चन्दनगुरु तो पैंतालीस साल का है बुआ! जब वह इस तरह कबूतर उड़ाता है, तो मैं तो केवल अठारहे साल का ही हूँ!"

बुआ और चिढ़ गई, "उस नीच से तू अपनी बराबरी करेगा? जानता है, वह पुलिस की निगरानी में है, कितनी बार वह जेल काट आया है!"

"जेल तो एक बार मैं भी काट आया हूँ, बुआ!"

बरबस बुआ को हँसी आ गई। सूरज के मुँह पर स्नेह से एक चपत मारकर वह चौके में जा थाली लगाने लगी।

सूरज और बुआ दोनों एक संग भोजन करने लगे।

सूरज ने पूछा, "रूपाबहू कहाँ है?"

"फिर रूपाबहू कहा?" बुआ बिगड़ खड़ी हुई। "सीधे माताजी क्यों नहीं कहते, या अम्माँ ही कहो, कोई बेटा नाम लेकर पुकारता है, अपनी माँ को?"

"अच्छा-अच्छा! माताजी कहाँ गईं!" और यह कहते-कहते सूरज के मुख पर हँसी बिखर गई।

"माताजी ठाकुरद्वारे की ओर गई हैं," बुआ ने बताया। "सन्तोष आई थी, कम-से-कम दो घंटे तक वह यहाँ बैठी थी। घुमा-फिराकर तेरी ही बात कर रही थी; उसी ने यह सारा किस्सा बताया कि चन्दनगुरु के संग तुमसे क्या-क्या हुआ है, और कैसे-कैसे तुम लोग उस मरे हुए कबूतर को अर्थी पर सजाकर श्मशान में दफ़नाने ले गए।"

बुआ चुप हो गई, सूरज कुछ सोचने में डूब गया।

बुआ फिर कहने लगी, "रूपाभाभी सन्तोष के संग उसके घर को गई हैं।"

बीच ही में बल देकर सूरज ने बात काट दी, "बुआ, मुझे पता चला है कि ईशरी फूफा मेरठ जेल से अम्बाला जेल में भेज दिये गए हैं।"

बुआ का सारा मुख उस एक क्षण के लिए सुर्ख हो आया, फिर सफेद पड़ने लगा, और धीरे-धीरे उसकी आँखें बरसने लगीं, जैसे मुख-मण्डल में सारा उमड़ा हुआ रक्त आँसू के रूप में बहने लगा हो!

दोनों ने भोजन करना बन्द कर दिया और चुप-उदास अलग-अलग शून्य में न जाने क्या देखने लगे।

बुआ ने भरे कण्ठ से पूछा, "भइया, तुझे कैसे पता लगा कि वे अम्बाला जेल में भेज दिये गए?"

"उस दिन अलीगढ़ में पता लगा," सूरज कहने लगा। "मेरठ जेल से कुछ कांग्रेसी क़ैदी छूटकर आये हैं। उन्होंने बताया कि जितने क़ैदी टेररिस्ट दल के थे, उन सबको वहाँ से अम्बाला भेज दिया गया। मेरठ जेल में केवल नर्मदल और गांधीवादी दल के ही राजनीतिक क़ैदी रखे गए हैं।"

"तो उन लोगों ने उन्हें देखा था?" बुआ ने सिसकियों के बीच पूछा।

"देखा नहीं, सुना था, लेकिन यह पक्की बात है बुआ!"

"सूरज! वे कब आयेंगे, छूटेंगे तो आयेंगे न! वे छूट जाय ंगे न सूरज……!"

अपने गीले स्वरों में बुआ ने इस तरह, इतनी उदास आँखों से सूरज को देखा कि वह उस वेदनापूर्ण दृष्टि के सामने टिक न सका। वह उठकर भागा वहाँ से, ऐसे भागा जैसे वह डर गया हो।

लेकिन भागकर वह घर से बाहर भी न जा सका। बाहर ही से थककर, चूर होकर वह घर में आया था। वह दहलीज़ में चुपचाप, जड़वत् खड़ा रहा।

बरामदे की छोटी गद्दी पर चेतराम लेटा हुआ था। भीतर के कमरे में दोनों मुनीम रोकड़बहियों और अन्य खातों से न जाने क्या मिला-घटाकर कई दिनों से कोई हिसाब तैयार कर रहे थे।

चेतराम के दायें-बायें कुरसियों पर उसके खास दलाल बिहारी, नैनू और कुंसामल बैठे थे। कुंसामल कुछ पढ़ा-लिखा था। पहले वह स्वयं कुछ आढ़त का काम-धन्धा करता था, लेकिन सट्टे ने जब से उसकी कमर तोड़ी, तब से वह गंगा नहाकर दलाली करने लगा था।

बातों-बातों में कुंसामल कहने लगा, "भाई, ये बात नहीं। व्यापार तो आज पहले से चौगुना है! हाँ, लड़ाई के पहले और आज में अन्तर यह हुआ कि व्यापार की प्रकृति बदल गई और क्षेत्र भी बदल गया। अभी तो जमा चार ही वर्ष बीते हैं। पहले यहीं बैठे-बैठे इसी फोन के ज़रिये सारे हिन्दुस्तान से व्यापार होता था—कहाँ है हैदराबाद, कहाँ है मद्रास और आसाम, कहाँ है लायलपुर, कराची, अमृतसर, लुधियाना और कहाँ हैं कलकत्ता, बम्बई। रेलवे से धड़ाधड़ गाड़ी-के-गाड़ी अनाज! हिन्दुस्तान भर की बात छोड़ो ही, अरे, अपने पास-पड़ोस हापुड़, खुरजा, हाथरस, कालपी, उरई, कानपुर और अलीगढ़ की मंडियाँ तो देखो; जैसे आग लग रही हो! न किसी को भाव पूछने की फुरसत, न किसी को बताने की फुरसत! मिट्टी-मिट्टी एक भाव, औ सारी मिट्टी सोना!

एकाएक उसी बीच चेतराम हड़बड़ाकर उठा। गद्दी पर लेटते ही शायद वह कुछ सो गया था। इस बीच चेतराम बहुत मोटा हो गया

था, करीब-करीब तोंद लटक आई थी। आवाज़ भी कुछ मोटी होकर हड़हड़ाने लगी थी। अक्सर अब उसका मुँह खुला ही रहता था; स्थूलता के अनुपात से भी अधिक जैसे उसके ओंठ मोटे हो आये थे।

उठते ही उसने अपने अँगोछे से मुँह पोंछा; ओंठ के इधर-उधर, बच्चों की तरह जो लार बहा था, उसे सुखाया। कैंची सिगरेट का नया पैकेट निकाला। दलालों के बीच एक आराम कुरसी पर बैठकर सबको सिगरेट देकर, स्वयं पीने लगा।

और पीते-पीते बड़े उत्साह और उमंग से बोला, "जो बात यहाँ तुम लोगों में चल रही थी, उसे मैं भी सुन रहा था! भाई बात यह है कि व्यापार का मतलब ही अब तक लोग ग़लत लगाते थे। सही मतलब तो अब जाकर लगा है। खुले मार्केट का जो व्यापार था, वह तो एक रोज़ी थी, व्यापार थोड़े ही था वह। व्यापार का मतलब है बहु-पार, एक से बहुत। और बहुपार होता है बन्द मार्केट में, बन्द भाव में। जब सब चीज़ों का कण्ट्रोल होता है तब ख़रीदने और भोगने की इच्छा उस तरह बढ़ती है जिस तरह ग़रीबी में लालच बढ़ता है। पहले आदमी मुश्किल से उतनी ही ख़रीदता था, जिसकी कि उसे आवश्यकता होती थी, और कण्ट्रोल में अब आदमी इतना ख़रीदना चाहता है, इतना कि वह स्टोर कर ले! कण्ट्रोल ही में स्टोर की भावना छिपी है, हम क्या करें। और वह बात जो कही कि तब यहीं बैठे-बैठे सारे हिन्दुस्तान भर-से व्यापार होता था, क्या बहुत फ़ायदा था उससे? दुनिया की परेशानी-ही-परेशानी थी— कम्पटीशन के मारे ऊपर से नाक में दम था। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास तक अपने गल्ले भेजो, दुनिया की ज़हमत उठाओ, फिर कहीं जाकर महीने-दो-महीने बाद चेक या हुण्डी मिलती थी! लेकिन आज हाथ-के-हाथ बेच दो, एक के अनेक, और आँख मूँद के ले लो! न भाव न तौल, बस रुपये-रुपये! कौन फोन करता फिरे है इधर-उधर!"

चेतराम ने दूसरी सिगरेट जला ली, और बड़े गिरे स्वर से बोला,

"लेकिन ससुरा आज कहीं-न-कहीं बहुत बुरा है—बेहद बुरा। इससे लाख दर्ज़ा वही अच्छा था—खुले बाज़ार में बेचना और कमीशन लेना। ससुरा कितनी तेज़ी आ गई ज़िन्दगी में। एक मिनट की चैन नहीं। एक ओर रुपये की चमक दूसरी ओर यह सरकार, अन्धाधुन्ध कमाई, पता नहीं इसका नतीजा क्या होगा।"

सूरज दहलीज़ में चुपचाप खड़ा था, और उसी निर्विकार-जैसी स्थिति में वह चेतराम की बातें सुन रहा था—दोनों तरह की बातें, पहली तरह की वह बात जिसके भीतर से गोरेमल के स्वरों की साँस उभर रही थी, और दूसरी तरह की वह बात, जिसके भीतर चेतराम का अन्तस् बोल रहा था।

और घर के भीतर से मधू बुआ का धीमा-धीमा रुदन भी दहलीज़ तक आ रहा था।

सूरज जैसे जागकर भीतर लौट गया। बुआ के ठीक सामने जा खड़ा हुआ, संकल्प के स्वर में बोला, "क्या चाहती हो बुआ! आज्ञा दो मुझे।"

बुआ ने सिर उठाया और सूरज की आँखों को किसी अनिर्वचनीय तत्त्व से भरी देखकर वह काँप गई और एक क्षण के लिए बुआ ने स्पष्ट देखा कि सूरज की आँखों में ईशरी खड़ा है। फिर बुआ जैसे सूरज को स्वयं समझाने लगी, "वे स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक हैं—राष्ट्र के वीर सेनानी, इसलिए हम भी तो उन्हीं के दल के हैं! हम कहीं निर्बल थोड़े हैं कि अपने स्वार्थों के लिए किसी को बाँध बैठें, रोने लगें! जो हमारा है वही देश का भी है, फिर क्या रोना! और वे तो बहुत जल्द आयेंगे न! देखो न सूरज भइया, वे तो अब यहाँ हर साल दो-तीन बार दर्शन दे जाते हैं। रात को आते हैं, और रात ही को चले जाते हैं। तुम लोग उन्हें इतनी उदार-प्रीति से विदाई भी देते हो। कितने महान् हो तुम लोग! निःस्वार्थ प्रेम देना, और उसके साथ-ही-साथ इतना अतुल विश्वास देना, साधारण बात नहीं है सूरज!"

सूरज को फिर कुछ असह्य होने लगा। वह इस बार खिड़की के रास्ते घर से बाहर आया। ठाकुरद्वारे की गली में उतरकर वह अपने से बेसुध, चुपचाप सरजू सुनार की गली के तिराहे की ओर चला जा रहा था। एकाएक असमय उसे ठाकुरद्वारे से राजू पण्डित की आवाज़ सुनाई दी। वह बढ़कर नीम के पेड़ के पास से ठाकुरद्वारे में देखने लगा—नीचे से ऊपर तक रेशमी वस्त्र का अँचला मारे राजू पण्डित बैठा है, सामने मन्त्रमुग्ध-सी रूपाबहू बैठी है। सूरज इधर-उधर बढ़कर झाँककर यह देखने लगा कि वहाँ कहीं सन्तोष भी बैठी होगी। लेकिन वहाँ कहीं सन्तोष न थी, केवल थे राजू पण्डित, रूपाबहू और उनके बीच में श्रीमद्‌भागवत की खुली हुई पोथी, दाईं ओर ठाकुर जी की खुली हुई झाँकी, और दरवाज़े पर बिजली का केवल एक तेज़ बल्ब।

सूरज खड़ा देखता रहा, और सुनता रहा। राजू पण्डित जो रूपा-बहू को उस पोथी से सुना रहे थे काफी मीठा और आकर्षक था। उसका जी हो आया कि वह भी ठाकुरद्वारे में जा बैठे और रूपाबहू की तरह मन्त्र-मुग्ध होकर सुने।

उसी क्षण एकाएक उसे लगा कि उसके पीछे कोई बड़ी तेज हँसी उठी हो। वह इधर-उधर देखने लगा और अपने-आप में न जाने क्यों भय और ग्लानि के मिश्रित भाव से सिहर उठा।

वह बड़ी तेजी से मुड़ा और गली के पार जाने लगा। फिर भी उसके पीछे-पीछे वह भाव जैसे किसी साक्षात् व्यक्ति की तरह बड़ी तेजी से पीछा करने लगा—ऐसा पीछा जैसे किसी व्यक्ति पर किसी फरार मुलज़िम की पहचान पाकर कपट वेष में पुलिस पीछा करती है।

गली को पार करते-करते, जैसे ही वह तिराहे पर पहुँचने को हुआ, कुण्डली मारकर बैठे हुए किसी रोगी कुत्ते पर एकाएक उसके पाँव पड़ गए, और वह बचते-बचते गिर पड़ा।

गिरकर जब वह उठने लगा, तब अनायास उसकी आँखें भर आईं

और उन आँसुओं में उसे एक घटना याद आई—जब वह एक बार सराय गया था और मारे भय के उस गली से बेतहाशा भागा था और गली के अन्तिम मोड़ पर वह इसी तरह एक आदमी से टकराकर गिर पड़ा था।

उस आदमी का चित्र एकाएक उसके सामने उभर आया और उभरता गया। और एक विचित्र कड़ुआहट से उसका जी भर आया।

अगले दिन कालेज जाने से पहले सूरज छत पर गया। चीड़ के बक्से में केवल सात कबूतर थे; एक-एक करके वह कबूतरों को उड़ाने लगा। जब सारे कबूतरों को उसने अपने घर से निकाल दिया, और वे अनजान कबूतर रोज़ की तरह निरभ्र आकाश में गिरहबाज़ी करने लगे, तब सूरज वहीं बैठकर कबूतर वाला घर तोड़ने लगा—बड़े संयम और तटस्थ भाव से, जैसे उस क्रिया के पीछे कोई अनोखा संकल्प हो।

उसी समय न जाने कैसे, कहाँ से वहाँ छिपी-छिपी सन्तोष आई। छत की अन्तिम सीढ़ी पर वह खड़ी रह गई। सूरज को सन्तोष की उस उपस्थिति का कोई भास न हो सका।

सन्तोष कितनी बड़ी हो गई थी, सोलह-सत्रह साल की अवस्था में वह उतनी बढ़ गई थी कि उसके सामने मधू बुआ का भी क़द जैसे छोटा लगने लगा था। उसकी आँखें गम्भीर बड़ी-बड़ी थीं और जैसे सदा गहरे काजल में डूबी-डूबी। ओठ भी पतले और गम्भीर थे, जैसे सदा बन्द, लेकिन उसके मुख के विकास पर पता नहीं क्या था और कहाँ छिपा था कि उसकी मुख-मुद्रा से सदा निश्छल मुस्कान बरसती थी—ऐसी स्निग्ध और पावन मुस्कान जैसे करुणा के बीच से सौन्दर्य का हास। और उसका रंग ऐसा खुला था, जिस पर कोई भी स्पर्श जैसे धब्बा डाल सकता था। सीधे पल्ले का आँचल और आँचल से ढका हुआ सिर उसके माथे पर शुचिता की ऐसी छाँव डालता था जैसे

तृतीया की चाँदनी के बीच क्वार का कोई छोटा-सा भूरा बादल तैर रहा हो। और चाल झुकी-झुकी, धीमी, नपी-तुली, जैसे उसकी दिवंगत शारदा माँ की मधुर राग की कोई लोरी, जो सन्तोष बेटी की गति के चारों ओर गरिमा मण्डित करती चल रही हो!

सूरज जब कबूतरों के घर को पूरी तरह उजाड़ चुका, तब वह वहीं छत से आकाश में उड़ते हुए कबूतरों को देखने लगा, जैसे अन्तिम बार देखकर वह उन्हें अपने मन से अब त्यागने चला हो, त्याग रहा हो।

उसी क्षण सन्तोष सामने आई और अपनी सहज स्थिति में लजाकर बोली, "यह क्या हो रहा है?"

सूरज कहने लगा, "घर में कबूतर रखने से साँप बहुत आते हैं। बेकार की हिंसा होती है, अच्छा नहीं लगता। माथे पर पाप आता है।"

कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोला, "और जब आदमी इस देश के सारे कबूतरों को नहीं पाल सकता, तो केवल सात-आठ कबूतरों को वह क्यों पाले? वह कबूतर-वर्ग के प्रति क्या अन्याय-अत्याचार नहीं करता? जरूर करता है।"

कहते-कहते वह फिर एकाएक चुप हो गया। तब जैसे सोचकर उसने कहा, "और कबूतर पालना, कबूतरबाज़ी करना कोई अच्छा काम थोड़े है! बड़ा बेकार चस्का है—मुफ़्त में झगड़ा-लड़ाई, समय की बरबादी और बिलकुल बेकार चीज़!"

फिर कुछ रुककर सन्तोष के नंगे स्वच्छ पैरों पर जैसे दृष्टि गड़ाकर बोला, "जिसे दुनिया में कोई काम न हो, जिसे कोई चिन्ता न हो, जो पत्थर जैसा निर्द्वन्द्व निःशेष हो, वह कबूतर पाले!"

सन्तोष को एकाएक हँसी आ गई, "बातें न बनाओ सूरज, असल बात यह है कि तुम चन्दनगुरु से डर गए........! लेकिन डर किस बात का? क्या कर लेगा वह? वह तो स्वयं बहुत डरने लगा है तुम

लोगों से।"

"अरे डरेगा न तो जायगा कहाँ ?"

सन्तोष धीरे-धीरे सीढ़ियों की ओर खिसकती जा रही थी, आखिरी सीढ़ी पर पहले की भाँति खड़ी होकर बोली, "बेचारे उन कबूतरों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? इस तरह अपने घर से उन्हें नहीं उड़ाना चाहिए ! ऐसा था तब उन्हें पाला ही क्यों ? वे तुमसे आश्रय माँगने तो आये नहीं थे। और इतने स्नेह का उदार आश्रय देकर······!"

शेष बात अपने मन में लिये वह सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी। कहीं बीच में रुककर फिर बोली, "आओ, नीचे उतर आओ सूरज !"

लेकिन सूरज छत से नीचे नहीं उतरा, कुछ क्षण सन्तोष वहीं सीढ़ियों पर खड़ी रहकर बुआ के पास चली आई। वहाँ बैठी भी वह जैसे सूरज के उतरने की राह ताक रही थी। फिर निराश हो वह घर चली गई।

दिन डूबने के पहले एक बार वह फिर सूरज के लिए आई। पर सूरज घर में न था। शाम को, ठाकुरजी की आरती के समय वह दूसरी बार आई, तब भी उसे सूरज न मिला। अपने पेट के दर्द का बहाना बनाकर वह एक बार रात को भी आई, सूरज से तब भी उसकी भेंट न हो सकी। इस बार वह चुपचाप अकेली छत पर गई। और देखकर दंग रह गई—नंगी छत पर, सिरहाने तौलिया लपेटे सूरज पड़ा इस तरह सो रहा था, जैसे वह बीमार हो—दीन-असहाय !

द्वादशी की चाँदनी पूरी छत पर बिछी थी, पर सन्तोष को लग रहा था। जैसे उतनी परिधि में घुप अंधेरा बरस रहा है, जहाँ सूरज पड़ा था और सन्तोष की आँखें एकाएक भर आईं। सारा कण्ठ उसका भीग आया। उसने देखा सूरज के चारों ओर उसके वही सात कबूतर पंखों में मुँह छिपाए अचल योगियों की तरह जैसे समाधि लगाए बैठे थे—तीन सिरहाने, एक दायें, एक बायें और दो उसके पैरों के पास—वही दो गिरहबाज़ विजयी कबूतर ! जैसे वे अपने ईश्वर की रक्षा में अविचल

खड़े थे, जैसे केवल वे ही सब-कुछ थे।

सन्तोष को कुछ न सूझा, वह भागी गई मधू बुआ के पास। बुआ को संग लिये वह छत पर आई।

उस दृश्य को खड़ी बुआ भी देखती रह गई—ठगी-सी, करुण नयनों से।

"पता नहीं क्या हो गया है सूरज को कल से?" बुआ जैसे सन्तोष के सामने रुँआसी हो गई, "कल रात कुछ नहीं खा सका, आज दोपहर थोड़ा-सा चावल दही खाकर उठ गया। कहने लगा, 'पेट में जलन है बुआ'। मैं रोकने लगी कि कोई दवा दूँ, जरा पेट देखूँ, अनार-सन्तरे का रस दूँ, लेकिन वह यह कहता हुआ चला गया कि 'ज़रा टहल लूँ बुआ, अभी ठीक हुआ जाता है।' और इस समय मैं इसका अब तक रास्ता ही देख रही हूँ। हाय! यह क्यों इस तरह यहाँ पड़ा है? क्या हो गया मेरे सूरज को?"

सन्तोष वहीं खड़ी-की-खड़ी रह गई। बुआ झपटकर सूरज के पास आई। कबूतर धीरे-धीरे खिसककर कुछ दूरी पर सावधानी से खड़े हो गए।

बुआ ने सूरज को उठाया। जगाने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि सूरज सोया नहीं था, केवल आँख मूँदे पड़ा था।

उठते ही वह हँसने लगा, जैसे वह सब-कुछ देखते-देखते छिपा लेना चाहता हो। कहने लगा, "मैं तो यूँ ही पड़ा था, चाँदनी बहुत अच्छी लग रही थी!"

"लेकिन पता भी है, तुमसे सटकर ये कबूतर कैसे सो रहे थे?" सन्तोष ने पूछा।

"कितना भी इन्हें तुम त्यागो भइया, ये कबूतर तुम्हें छोड़कर कहीं जायँगे नहीं।"

"गुस्सा लगेगा तो एक दिन इन्हें मार भी डालूँगा।"

"क्यों नहीं, अब तक अपने देश से अंग्रेज़ों को ही भगाने में उन्हें

मारने चले थे, उन्हें न मार सके तो कबूतर ही सही !"

सन्तोष यह कहती हुई उन बिखरे हुए कबूतरों के बीच में चली गई। और उन्हें एक-एक कर अपने पास बुलाने लगी।

सूरज भोजन करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था, अनेक तर्क दे रहा था।

बुआ ने क्रोध के अभिनय में कहा, "जवान हो गया तो क्या, चलेगा तू क्यों नहीं ? मैं पीठ पर न लाद लूँगी तुझे ? क्या समझ रखा है तूने मुझे !"

सूरज ने देखा, बुआ शिशुवत् हँस रही थी। कहीं से भी किसी पछतावे की लीक उसके मुखमंडल पर न थी। एक अजीब सन्तोष का भाव था वहाँ, जिस पर अदम्य आस्था का आलोक उभर रहा था।

रात के दस बजे से ऊपर का समय हो रहा था। रूपाबहू अब तक ठाकुरद्वारे से लौटी न थी।

२

हर शाम को ठीक दिन डूबते-डूबते, पता नहीं कहाँ से, कौन, किस तरह, 'धुआँधार' नामक एक चारपेजी दैनिक पत्र सारी बस्ती में जैसे बिखेर देता था। फिर एक घण्टे के लिए, जहाँ देखो, जिसके भी हाथ में देखो वही 'धुआँधार' छोटा-सा न्यूज़ पेपर—मटमैला कागज़, बेहद जल्दी-जल्दी में तैयार किया हुआ, कभी पूरा छपा हुआ, कभी एकाध पेज खाली। कभी पूरा छपा हुआ कभी पूरा-का-पूरा साइक्लोस्टाइल, जिसका सम्पादक लापता, प्रेस लापता और सब-कुछ लापता, लेकिन फिर भी जिसके व्यक्तित्व से वह बस्ती पिछले वर्ष से कहीं-न-कहीं बँधी चली आ रही थी—उसके प्रभाव में आकर, कोई सत्य पाकर, अँधेरे में किसी नए उजाले की निष्ठा पाकर, और एक परोक्ष नेतृत्व

पाकर ।

'धुआँधार' के मुखपृष्ठ पर छपा था—लाल-लाल अक्षरों में 'सर बाँधे कफ़नियाँ हो शहीदों की टोली निकली' यह शीर्षक था और उसके नीचे छपा था—

'जब रोज़ जल रही हो होली ।
फिर कैसे मनावें हम होली ॥
तुम करो हमारी बरबादी ।
बंदी रखो बीर जवाहर औ गांधी ॥
इधर तुम्हारा महायुद्ध औ वारफंड
इधर तुम्हारा कंट्रोल औ परमिटखंड
उधर तुम्हारी भरी जेल औ दमन कांड
इधर हर रही सीता उधर लंकाकांड
इधर सत्य अहिंसा
उधर तुम्हारी गोली—फिर कैसे मनावें हम होली ।'

इसके नीचे छपा था, 'बस्ती होली मनाये, निम्नलिखित कार्यक्रम दिखाये ।'

आर्यसमाज की ओर से, प्रभातफेरी, दोपहर को बज़ाज़ा टोले में बाबा हरिनाथ के फाटक में यज्ञ समारोह, सन्ध्या समय स्वामी वेदाचार्यजी का भाषण ।

सनातनधर्म की ओर से, सनातनधर्म मन्दिर में अखण्ड हरिकीर्तन, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, उसके अनन्तर हनुमान वाटिका में जलपान

हिन्दू महासभा की ओर से, राई सत्ती के मैदान में प्रातःकाल आठ बजे मंगलतिलक और प्रीति-मिलन समारोह । प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का ज़बरदस्त भाषण ।

सतसंगी समाज की ओर से सन्ध्या पाँच बजे से कॉलेज मन्दिर के घिरे चबूतरे पर सत्संग और स्वामी त्रियानाथ का प्रवचन और प्रोफेसर सतसंगी का स्वस्तिवाचन ।

अग्रवाल मण्डल की ओर से छेदामल के अहाते में सुबह चार बजे होलिका दहन, दोपहर को चेतराम के फाटक पर भाई-बिरादरी से मिलन और जलपान तथा सन्ध्या को गोपालन मुहल्ले की ओर से ठाकुरद्वारे में राजू पण्डित का कीर्तन।

साहू समाज की ओर से ऊँची हवेली में, साहू रायबहादुर साहब का दरबार।

सन्ध्या समय, चौधरी सभा की ओर से, चौधरी रामनाथ की बैठक में गीता और रामायण पाठ, तदुपरान्त एक कवि-गोष्ठी, जिसमें नगर के कवियों के अतिरिक्त बाहर से भी कुछ कवि पधार रहे हैं।

वार्ष्णेय सभा मण्डल की ओर से, बड़ा दरवाजा के अहाते में ठीक आधी रात की बेला होलिका दहन (इधर-उधर किसी हालत में नहीं), दोपहर तक रंगरेली, और वार्ष्णेय युवक सभा में अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, तथा रायबहादुर तुलाराम द्वादश श्रेणी, एम० ए० द्वारा पुरस्कार वितरण। सन्ध्या समय बस्ती के समस्त वार्ष्णेय बन्धुओं का श्रीराम रोड पर कंठ-मिलन।

मारवाड़ी व्यापार मण्डल की ओर से जैन मन्दिर के अहाते में सुबह आठ बजे से दस बजे तक लड्डू का प्रसाद-वितरण।

भार्गव लोग तथा खत्री भाई ये दोनों वर्ग इस वर्ष की होली पर गरीबों को एक-एक गज़ कपड़ा दान करेंगे। इनके घरों में रंग नहीं चलेगा। वृन्दावन बिहारी लाल भार्गव के दोनों लड़के सियाराम तथा राधेश्याम अब तक आगरे की जेल में नजरबन्द हैं। मोहनदास, कांग्रेस सोशलिस्ट लीडर, मुरादाबाद जेल में यातना सह रहे हैं। इसलिए महाजन टोला में विदेशी वस्त्रों की होली मनाई जायगी और पूरे दिन विट्ठलराम भार्गव के बाग में चर्खा चलाया जायगा।

'धुआँधार' के सम्पादकीय स्तम्भ से यह अपील की गई थी कि हर मुहल्ले की होलिका दहन में विदेशी वस्त्रों की होली प्रत्येक का धर्म है।

और होलिका दहन की रात, पूरी बस्ती के चौराहों, मोड़ों, तिराहों तथा हर मुहल्ले, नाकों तथा अहातों में सशस्त्र पुलिस, सिविक गार्ड्स, खुफ़िया पुलिस। और इस शक्ति के ऊपर एस० डी० ओ० तथा स्पेशल मजिस्ट्रेट की जीपें बस्ती में आ घुसीं।

रात के ठीक चार बजे, होलिका दहन के उपरान्त म्युनिसिपल हॉल में जिस समय अंग्रेज़ मजिस्ट्रेट मिस्टर टामसन, पुलिस अफ़सरों तथा सिविकगार्ड्स के बीच दमन का भाषण दे रहा था, उस समय आर्य समाज की प्रभात फेरी बज़ाज़ा टोले से निकलकर गोपालन मुहल्ले से गुज़र रही थी और उनकी स्वर-लहरी से बस्ती की नीरवता में एक अलौकिक संगीत उभरता चल रहा था—

उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥

दिन निकलते-निकलते राजू पण्डित ने ठाकुरजी का शृङ्गार कर लिया। शृङ्गार का सारा सामान रूपाबहू ने दिया था। सन्तोष ने उसे सजाया-बजाया था।

शृङ्गार कर चुकने के बाद राजू पण्डित ने चेतराम की खिड़की तक जाकर रूपाबहू को आवाज़ दी। आने की आहट पाकर वह चट से ठाकुरद्वारे में पहुँचे और सुसज्जित ठाकुरजी को चँवर डुलाने लगे।

कुछ ही क्षण बाद रूपाबहू आई—सद्यस्नाता, पीठ पर बिखरकर खुली हुई लटें, सफ़ेद जार्जेट की साड़ी में रूपाबहू का भरा-भरा शरीर, दमकता हुआ, गिन्नी सोना जैसा स्निग्ध। वह ऐसी लगती थी कि उसके गठे हुई शरीर के अंग जैसे बोलते थे कि मुझे छुओगे तो मुझ पर चिह्न पड़ जायगा।

रूपाबहू ने ठाकुरजी की अर्चना की। होली के रंग, गुलाल, अबीर रोरी और इत्र से उन्हें पूजा। आरती-पूजन के बाद जब वह प्रतिमा के सम्मुख आँचल पसारकर नतशिर हुई, उसी समय राजू पण्डित ने रंग से भरे लोटे को रूपाबहू पर उँडेल दिया, और उस आह्लाद में वे मंजीरा

बजा-बजाकर नाचने लगे—

बिरज माँ फाग रच्यो जदुराई
इधर सों निकरीं सुघर राधिका
उधर सों कुँवर कन्हाई
बिरज माँ फाग रच्यो जदुराई।

रूपाबहू महज़ हँसके रह गई और उसके चेहरे से एक अजीब खिसियाहट का भाव उभरने लगा, और भीगी हुई साड़ी को जहाँ-तहाँ से निचोड़ती रही। 'बाजूबंद खुल-खुल जाय,' 'मेरी चुनरी में परि गयो दाग पिया,' 'छोड़ो लँगर मोरी बँहियाँ गहो न,' 'दास कबीरा जतन से ओढ़ यो ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चुनरिया,'—जैसे रूपाबहू के कानों में हँसता हुआ कोई गाता रहा।

रूपाबहू से रुका न गया। वह भागकर घर चली गई। राजू पंडित वहीं यन्त्रवत् खड़ा रहा। मुहल्ले के लोग—स्त्री-पुरुष—ठाकुरद्वारे में पूजन-हेतु आने लगे। राजू पंडित निष्प्रयोजन ठाकुरद्वारे में इधर-से-उधर घूमने लगे, कभी फूलों के बहाने, कभी तुलसीदल के बहाने, कभी आरती-चढ़ावा के बहाने और बड़े वेग से अनाप-शनाप गाते रहे—

थके नयन रघुपति-छवि देखे, पलकन्हिहू परिहरीं निमेखे।
अधिक सनेह देह भई भोरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पगु धरैं न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीति जिय केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।

"जे सब का गा रहो है पुजारी बाबा, अरे आजु कुछ होली फाग उहै।"

"क्या कहा सरजू सुनार ?"

"अरे यही पुजारी बाबा कि···"

"सो तो ठीक है, पर कैसी अद्भुत माया मोह में हम आ फँसे हैं सरजू भाई कि तीनों पना ही व्यर्थ गयो, संग सेली लगी न नवेली

लगी !"

ठाकुरद्वारे में अनेक लोग आ चुके थे। सब हँस पड़े। एक ने कहा, "पुजारी बाबा, जे तुम्हारा जनम काहे कूँ व्यर्थ गओ ?" दूसरे ने उठाया, "व्यर्थ तो हमारे जा रहो है पुजारी बाबा, यह राशन औ कंट्रोल का जमाना, मन औ शरीर, यह लोक औ वह लोक, सबकूँ मरना पड़ रहा है !"

तीसरा कहने लगा, "यह सब तो लगा ही रहेगा यारो, अरे पुजारी बाबा, कुछ हो जाय ठाकुरजी के सामने, होरी फाग !"

एकाएक गली से चन्दनगुरु निकल रहा था। कह बैठा, "अजी आज क्या, यहाँ तो रोज़ ही होली फाग है ठाकुरजी का दरबार है कि कोई मज़ाक है, राधाकृष्न ! राधाकृष्न !! देखो न पुजारीजी की उँगली में, ताँबे की सर्पिनी पहने हैं ! हाथ में रामराजा, कंठ में बीन बाजा! राधाकृष्न···राधाकृष्न !"

पुजारीजी जब तक कुछ उत्तर दें, चन्दनगुरु सामने से ओझल हो गया। कुछ देर बाद राजू पण्डित अपने-आप गा उठे—

'अब लौं नसानी अब न नसैहों।'

राई सत्ती के मैदान में प्रोफेसर दयाराम शास्त्री के भाषण के लिए अच्छी खासी जनता इकट्ठी थी। भाषण के पूर्व तुमुल स्वर में जैनाद—महाराणा प्रताप की जै !

वीर केशरी शिवाजी की जय !

'परमवीर ! धर्मवीर ! हिन्दू भाइयो ! आज होली का पर्व है, हिन्दू संस्कृति का परम जीवनपूर्ण पर्व। यह आर्य-पर्व अनादिकाल से, बल्कि यूँ कहें कि यह भारतीय आर्य पर्व सतयुग, त्रेता, द्वापर से होता हुआ आज कलियुग में भी अपने उसी रूप में विद्यमान है। अनेक बार हिन्दुओं पर संकट पड़े, असंख्य बार यवन, हूण, मंगोल, सीथियन

वग़ैरह, आदि-आदि भारतवर्ष पर भयानक-से-भयानक आक्रमण कर गए। पर क्या हुआ, हम आज भी ज़िन्दा हैं। (ताली बजती है) यह है हिन्दुत्व का पवित्र और महान् गौरव। गीता में भगवान् ने अपने मुँह से कहा है, क्या कहा है (सस्वर) 'जब जब होहिं धर्म की हानी' नहीं-नहीं यह तो रामायण में महात्मा तुलसीदास ने कहा है। गीता में कहा है, (सस्वर)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अर्थात्—हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ, अर्थात् अवतार लेता हूँ। आज (आवेश बढ़ने लगता है) जब कांग्रेस-महात्मा गांधी, समाजवादी लोग, अम्बेडकर और सबसे भयानक मुस्लिम लीग—मिस्टर जिन्ना जैसे दुश्मन हिन्दुत्व की जड़ को खोदने और उसमें मट्ठा डालने में लगे हैं, तब इन्हें नहीं मालूम कि हिन्दुत्व की रक्षा के लिए भगवान् का अवतार महाराष्ट्र में हो चुका है। (करतल ध्वनि)। हमने माना कि १९३७ के इलेक्शन में हमारी हार हुई, लेकिन हम कहीं बीस से उन्नीस नहीं हुए हैं। जिस स्वतन्त्रता-संग्राम में कांग्रेसी लोग लगे हुए हैं, हम उनसे पीछे नहीं हैं। (एक गिलास पानी पीते हैं, रूमाल से मुँह पोंछने के बाद) आज राष्ट्र की क्या दशा है? जिस वर्ष में आज की होली पड़ी है, यह दिन भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व है। राष्ट्र की नैया आज भँवर में फँसी है। इसके सारे कर्णधार जेल में हैं, सींकचों के पीछे बन्द हैं, असंख्य शहीद हो चुके हैं और अब राष्ट्र की किस्मत, भाग्य, तक़दीर, 'फेट' आपके हाथ में है। आपको मालूम है, पूरब में जापान फेनी और चिटगाँव तक पहुँच गया है, पश्चिम में हिटलर काले समुद्र तक दौड़ लगा चुका है और अँग्रेज़ी हुकूमत, शासन, इस देश को इस महायुद्ध में अपने साधन बना रही है—सारे राष्ट्र में भूख, तबाही, दमन और ग़रीबी फैल रही है। यह राशनिंग और कण्ट्रोल

हमें इन्सान से हैवान बनाती चल रही है। जानवर हो रहा है आज का आदमी। न पेट का भोजन, न तन ढकने का कपड़ा!"

उसी क्षण बस्ती के मुसलमानी मुहल्ले से जैसे किसी ज़बरदस्त भीड़ की आवाज़ आई, 'नारये इस्लाम, अल्लाहो अक़बर!'

और एक अजीब-सा शोर बढ़ने लगा। उसी क्षण बस्ती-भर में पुलिस की जीपें दौड़ीं। कलेक्टर ने दफ़ा एक सौ चवालीस लागू कर दी। प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का भाषण बन्द हो गया और राईसत्ती का मैदान देखते-ही-देखते सूना हो गया।

स्थानीय कालेज के एक अध्यापक, श्री राजाराम चौरसिया राईसत्ती के मैदान से होस्टल की तरफ जाते समय अपने संग के कुछ लड़कों को बता रहे थे, "कितनी नीच भावना है इस अंग्रेजी हुकूमत की! देखा कि बस्ती में इधर-उधर के आयोजनों के माध्यम से लोग भाषण दे-देकर कुछ-न-कुछ काम कर लेंगे, अतएव मुसलमानों से झट मिलकर मुफ्त का हल्ला मचवा दिया और बहाना निकालकर ऐन होली के दिन बस्ती में दफ़ा एक सौ चवालीस लगवा दी। यह है इनका कमीनापन!"

घण्टाघर तक जाते-जाते प्रोफेसर दयाराम शास्त्रीजी गिरफ़्तार कर लिये गए।

लेकिन दूसरे दिन सुबह पुलिस को सूचना मिली कि डेढ़ सौ मोम-बत्ती जलाकर बस्ती के कुछ नौजवानों ने बस्ती से डेढ़ मील दूर ईद-गाह वाले बाग में रात को कवि सम्मेलन किया। मुख़बिरों ने यह भी बताया कि कोई मास्टर था, आँखों पर चश्मा लगाए, वही सभा-पति बना था। इन्तज़ामकार था कोई हट्टा-कट्टा, गोरा-गोरा-सा नौजवान, बाल कुछ-कुछ घुँघराले थे, पाजामा-कुर्ता पहने था। पुलिस ने सभापति के नाम पर मास्टर चन्दूलाल पर शक किया और इंतजाम-कार के नाम पर सूरज पर।

'आज़ाद रेस्टोरेण्ट' में शाम के वक्त जब रेस्ट्राँवाला जियालाल खौलते पानी में चाय की पत्तियों की धूल डालने लगा और ज्यों-ज्यों पानी का रंग सुर्ख़-से-सुर्ख़ होता गया वह बेहद भद्दे स्वर से गाने लगा, 'चल-चल रे नौजवान, चल-चल रे नौजवान, रुकना तेरा काम नहीं बढ़ना तेरा काम, चल-चल रे नौजवान !'

'हिन्दू प्याले में आध पाव चाय, चार पैसे प्याले में आध पाव चाय। चाय पीयें मेरे भाय, चाय पीयें मेरे भाय।'

सामने से चेतराम, नारायणदास, मास्टर चन्दूलाल, और छीतरमल को आते देखकर रेस्ट्राँवाला जियालाल उनके स्वागत में बोला, "आवो सेठ सरकार लोग !"

और उन्हें भीतर लोहे की अलीगढ़ी कुरसियों पर बिठाते हुए जियालाल कहने लगा, "सेठ! दिल्ली से बराबर तीन दिनों तक सनीमा देखकर आया हूँ। क्या गाना था, 'चल-चल रे नौजवान !' एक सनीमा यहाँ भी खुलना चाहिए !"

मास्टर चन्दूलाल के अलावा चेतराम, नारायणदास और छीतरमल इन तीनों ने कुर्ते की थैलियों से अपने-अपने चाय पीने के लिए मुरादाबादी गिलास निकाले।

मास्टर चन्दूलाल ने अपने प्याले से पहला घूँट लिया और खँखारकर बोले, "वारफण्ड के लिए परसों मुरादाबाद में गवर्नर साहब आ रहे हैं। दो दिन वहाँ रहेंगे, और सुना यह है कि गवर्नर साहब यहाँ भी आने वाले हैं। तीस हज़ार पर 'रायसाहब', और पचास हज़ार पर 'रायबहादुर' की उपाधि धड़ाधड़ मिल रही है।"

"और राजा की पदवी कितने में मिल रही है ?" चेतराम ने पूछा। और उसकी आँखों में कुछ ऐसा चमका, जैसे वह कोई-न-कोई पदवी अवश्य ख़रीदेगा। उसके पास तो बहुत रुपया है, क्या कर लेगा गोरेमल !

"यही लाख-डेढ़ लाख वारफण्ड में देने से !"

"क्यों मास्टर चन्दूलाल," नारायणदास ने पूछा, "जब हमारे देश में न कोई लड़ाई हो रही है, न यहाँ जर्मन और जापान के हमले का कोई खतरा ही है, तब फिर क्यों चारों ओर, हर ज़िला, तहसील, कालेज-स्कूल, शहर और कस्बे में लड़ाई का नाटक खेला जा रहा है— फ़र्ज़ी बम्ब, फ़र्ज़ी तोप, हवाई जहाज़, टैंक और गोलाबारी। यह क्या है एटम बम्ब, यह क्या है एण्टी एयर क्रैफ्ट गन!"

बीच ही में छीतरमल उफन पड़ा, "और यह ब्लैक आउट, जहाँ देखो, तहाँ वी (V) का निशान और यह क्या है ससुरा 'सेल्टर' चारों ओर गहरी-गहरी खाइयाँ कि हवाई हमले के समय, जब साइरन बजेगा तब लोग इन्हीं खाइयों में छिपेंगे। हद हो गई! इन्सान, ब्लैक, खाई और गड्ढा!"

"अरे पहले ब्लैक आउट, फिर ब्लैक मारकिटिंग, ये अंग्रेज़ जो-जो न हमें सिखा दें!" नारायणदास ने कहा, "ब्लैक, ब्लैक, सारी ज़िन्दगी में ब्लैक!"

"कांग्रेस ने कहा कि तुम्हारे महायुद्ध से हमारे देशवासियों का कोई सम्बन्ध नहीं! महायुद्ध से हमारा कोई सहयोग नहीं, उसीका बदला चुका रहे हैं ये अंग्रेज़। असली लड़ाई न सही तो नकली ही सही। अगर वे चैन से नहीं, तो हमीं चैन से क्यों रहने पायें?"

चन्दूलाल की बात काटकर चेतराम ने कहा, "क्यों मास्टर साहब! सुना है हिटलर आर्य समाजी है! और यह भी अफ़वाह है कि वह अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से भगाकर हमें आज़ादी देगा!"

"नहीं जी लाला! वह नाज़ी है नाज़ी।"

"नाज़ी, यानी पाजी, क्यों?" चेतराम ने पूछा।

"अजी, सुना है उसे वेद ज़बानी याद हैं। बरहमचारी है वह, बारह बरस हुआ, वह सोया नहीं है," छीतरमल ने कहा।

'बिल' देने के बहाने से जियालाल ने मास्टर चन्दूलाल के सामने एक पुर्जा पेश कर दी। उस पर लिखा था, 'बाहर बेंच पर पाँच ग्राहक

बैठ गए हैं, उनमें से गाँव वाले के रूप में सर से पाँव तक खद्दरधारी एक सी० आई० डी० आया है। खबरदार, होशियार !'

अपने-अपने गिलास पाकेट में रखकर वे चारों दुकान से बाहर चले गए।

तब उस सी० आई० डी० ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ इधर-उधर की बातों के बीच में पूछा, "अजी भाई रेस्ट्राँवाले ! मुझे भी रोज़ाना 'धुआँधार' की एक कापी चाहिए। कहाँ मिलती है यह ? किससे बात करूँ ? छपती तो यहीं है न, क्यों, कहाँ से निकलती है ? बड़ी उम्दा चीज़ है ! कितनी बड़ी सेवा की है यह ! मैं तो सच दो-ढाई सौ रुपये दान देना चाहता हूँ उसके सम्पादक को।"

"चाहता तो मैं भी हूँ कि उसे दो-चार कप चाय पिलाऊँ, लेकिन उसका तो पता ही नहीं है," जियालाल कहने लगा। "सुना है वह कहीं कब्रिस्तान में रहता है। जिन्नात है कोई उसके क़ाबू में, उसी से वह करता-धराता है। मैं तो सोचता हूँ कि वह सम्पादक कभी अपने जिन्नात को मेरी दुकान से चाय लेने के लिए भेजता, तो मैं उसके बाल काटकर रख लेता और बादशाह बन जाता। या कम-से-कम जयप्रकाश नारायण को ही पकड़वा देता। पाँच हज़ार इनाम रखा है सरकार ने ! सुना है सरदार भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद के बाद जयप्रकाश ही का नम्बर है···हाय-हाय···क्या झूम के गाया है—'सर बाँधे कफ़नियाँ हो शहीदों की टोली निकली !"

चाय पीकर सी० आई० डी० चला गया। फिर जियालाल दुकान के पिछवाड़े जाकर ठहाका मारकर हँसा, और चाय की दूसरी क़िस्त तैयार करता हुआ गाने लगा—

'मोरे देशी चुनरिया हो राम,
सजन मोरे रंग विदेशी न डारियो !
जा को गांधी बाबा बुन दयी

रँग दयी है जवाहरलाल,
सजन मोरे रंग विदेशी न डारियो !

थोड़ी देर के बाद चार साथियों के संग चन्दनगुरु आया और बाहर बेंच पर ही जम गया।

जमते ही वह बोला, "इस 'वार' और 'कण्ट्रोल' के ज़माने में ससुरी ये रंडियाँ कितनी बढ़ रही हैं। पहले कुल बीस-पचीस ही थीं और अब तो पचास-साठ से कम न होंगी, जो रजिस्टर्ड हैं; और बे-रजिस्टर्ड तो अनगिनत हैं !"

"अजी वे रंडियाँ तो लाख दर्जे ठीक हैं, दुनिया को उन्होंने बता तो दिया कि वे रंडी हैं, लेकिन वे पर्दानशीन औरतें, बड़ी-बड़ी भक्तिन, बड़े-बड़े दरवज्जों वाली, जो छिपके मार करती हैं, उनका लेखा-जोखा कौन करेगा ?"

"अबे वही ठाकुरजी करेंगे !" चन्दनगुरु ने तपाक से कहा, "और राजू पण्डित चिराग दिखायेगा ठाकुरजी को ! साला किस अदा से नाच-नाचकर कीर्तन करता है ! और कथा कैसे सुनाता है, 'रासलीला में जिस गोपी का हाथ मुरली मनोहर पकड़े थे उसका अंग मोहन प्यारे से रगड़ खाता था। पर उनकी माया से सब गोपियाँ अनेक रूप धारण करने का हाल न जानकर यह समझती थीं कि केशव हमारे साथ नाचते हैं और इस आनन्द-रूपी नाच में पैर की ठोकर देकर अंग से अंग रगड़ना व आँख मटकाय व कटाक्ष कर कुण्डल हिलावना।"

"गुरु ! लगता है तुम भी छिप-छिपाकर कभी-कभी सत्संग कर आते हो," जियालाल ने चाय देते हुए कहा।

"यार मैं छिप-छिपाकर काम करने में विश्वास नहीं करता। बद-नाम होकर भी क्या चोरी करूँ ? सरकार जानती है, म्युनिसिपेल्टी जानती है, बस्ती के सारे लोग जानते हैं, सी० आई० डी०, दरोगा पुलिस सबको पता है कि रोज़मर्रा में पाव-आध-पाव शराब पीता हूँ—चाहे ठर्रा हो चाहे विलायती। कोई नौकरी नहीं, कोई खास बिज़निस

नहीं, लेकिन चाहिए रोज़ वही उमरख़ैय्याम वाली चीजें! लेकिन ईश्वर की बदख्याली देखो—किस्मत मिली चेतराम को और दिल मिला मुझे। वह जो दिल्ली वाला गोरेमल है बिना आँख का साँप, लेकिन दोनों ओर मुँह है जिसके, वह तो कारूँ का खज़ाना साबित हुआ चेतराम के लिए।"

"साले को जैसे पता था कि यह ज़माना आयेगा, तीन-तीन गोदाम, चेतराम का सारा घर, सरजू सुनार वाले घर का सारा गोदाम, सारा-का-सारा ठुँसा था गेहूँ और चावल से। किस भाव से ख़रीदा और किस भाव बेचा! सच, रातों-रात घर भर लिया सोने-चाँदी से।"

"सुना है सोने की ईंटें और चाँदी की सिलें खरीदी गई हैं, जिससे घर या बैंक में कहीं रुपये का पता न चले। तिस पर चेतराम रोता फिरता है कि उस पर दिनों-दिन इन्कम टैक्स बढ़ता चल रहा है।"

"चार आने और बारह आने के रेशों से सोने की ईंटें और चाँदी की सिलें बाँटी गई हैं चेतराम और गोरेमल में। ससुर बारह आने वाला, और दामाद चार आने वाला!"

"अजी गोरेमल ने जो कामधेनु बाँध दिया है चेतराम के घर··· वह रूपाबहू जो है! हाय हाय, क्या औरत है! पता नहीं किस काठी की है। लगता ही नहीं कि ससुरी की इतनी उमर है। कैसी ठाकुरद्वारे में परिक्रमा करती है!"

"सुरजा के बाद पता नहीं क्यों, कोई और बाल-बच्चा नहीं हुआ उसे!"

"अजी कोई भभूत-प्रसाद खा लिया होगा ठाकुरजी के चरणों में!"

"लेकिन खूब रुपये देता है 'वारफंड' में चेतराम। ऊपर से पुलिस को घूस, कांग्रेसियों को गुप्तदान और पता नहीं किस-किसको क्या-क्या!"

"हाँ हाँ, रुपये-पैसे का मोह उसे नहीं है, यह तो बात ज़रूर है।"

"अजी सब ब्लैकमार्किटिंग है यह 'वारफंड', 'कांग्रेस फंड' और दुनिया का फंड!"

"कौन है बस्ती-भर में जो ब्लैक में नहीं फँसा है। बड़े-बड़े लोगों की कण्ठी टूट गई। ज़रा सोचो तो, इतनी दौड़धूप, इतनी सरगर्मी और ज़िन्दगी की तेज़ी और भी कभी थी ?"

"तभी कोई भी जो कुछ भी न कर डाले थोड़ा ही समझो ! सोचने-विचारने की किसे फ़ुरसत है भइया !"

३

बाज़ार एकतरफ़ा चल रहा था और बस्ती में हर एक को फ़ायदा-ही-फ़ायदा था। कोई बेकार नहीं बैठता था, एक क्षण के लिए भी बेकार नहीं। बड़े-से-बड़े सट्टेबाज़ अपनी आदत को छोड़कर परमिट और लाइसेन्स के पीछे पड़ गए थे। जो अपनी आरामतलबी की आदत से मजबूर कभी बस्ती से बाहर कहीं आना-जाना नहीं पसन्द करते थे, उनके भी पैरों में शनिश्चर बैठ गए। कहाँ है दिल्ली, और कहाँ है उस डाइरेक्टर का बँगला, और कौन है साहब का ड्राइवर, क्या है साहब की कमज़ोरी ? कहाँ है लखनऊ, कौन है कन्ट्रोलर, कौन है उसका पी० ए०; और उस पी० ए० की प्रेमिका कौन है ? कहाँ है शिमला, कहाँ है वह अंगरेज़ आफीसर ? वह कहाँ कब पीता है ? कहाँ कब नाचता है ? एक अर्ज़ी, अनेक डालियाँ हर किस्म का तोहफा, हर तरह की भेंट, चाहे जान लो, चाहे माल लो, लेकिन लो कुछ और दो कुछ ! फिर एक लाइसेन्स, एक परमिट और एक दस्तखत, एक सरकारी मुहर, फिर राज्य अपना !

गद्दी अपनी !

एक घड़ी की बादशाहत !

चमड़े के सिक्के !

सोने-जवाहरात के सिक्के !

फिर इन्क़लाब ज़िन्दाबाद। चाहे जो 'वारफंड' में लो, चाहे जो कांग्रेसदान में दो। कमाना'''बे-पूँजी की कमाई, बिना मूलधन के लखपती ! यह है आर्य-समाज का चन्दा, यह है गोशाला की रकम, यह है हनुमानजी को, और यह पुजारियों को, जो लाला लोगों के नाम पर मन्दिरों में माला फेरते हैं कि लालाजी कहीं पकड़े न जायँ, कि सेठ जी कहीं धर न लिये जायँ, कि सेठ को परमिट मिले, लालाजी खुशी-मंगल से घर लौटें ! तन्दुरुस्त रखें भगवान्, बहुत दिया है, दो पुश्त बैठ के खाएँ !

कमाना और खर्च करना !

कमाना और फूँक देना !

कमाना और गाड़ के रख लेना—न कुत्ता भूँके न पहरू माँगे !

कमाना और बाँटके खाना—यह पुलिस है, यह चुंगीवाला है, यह स्टेशन मास्टर, यह माल बाबू, यह चौकीदार, ये कुली, ये ठेलेवाले। ये हैं इंसपेक्टर साहब, इनकी खातिर करो। बड़े राजा आदमी हैं, एक पैसा भी घूस नहीं, ब्लैक में आग लगा देते हैं। सख़्त नफ़रत है इन्हें ब्लैक से, रिश्वत से। सोशलिस्ट विचार के हैं, रात को खद्दर पहनते हैं। गांधी टोपी अटैची में है। बहुत पढ़ते हैं, तभी पीना पड़ जाता है। बड़े दुखी हैं अँग्रेज़ों के अत्याचार और उनकी भयानक नीति से। तभी जी बहलाने, और ग़म ग़लत करने के लिए नाच-गाना पसन्द करते हैं ! बेचारे हर रात सिनेमा देखते हैं ! हरदम तो सिगरेट पीते हैं, कितना काम है सर पर ! 'काश, अपना राज्य होता' ! बड़े राजा हैं इंसपेक्टर साहब ! कौन देखता है 'डेली स्टाक रिपोर्ट' अरे मारो गोली ! अपना-अपना रास्ता देखो, और ज़िन्दगी जियो ! कौन सदा नौकरी करेगा !

लेकिन जीने की फ़ुरसत है कहाँ ? अभी तो महज़ तैयारी है ! एक मकान और, एक फैक्ट्री और, एक परमिट और, एक लाइसेन्स और, एक सौदा और। और ज़िन्दगी ?

दिल्ली से गोरेमल के दो पत्र आ चुके कि सूरज की पढ़ाई बन्द कर दी जाय, उसे दुकान पर बिठाओ और धीरे-धीरे उसे ज़िम्मेदार बनाओ। चेतराम सूरज को बिना यह बताए कि गोरेमल की क्या मंशा है, उसे कभी-कभी दुकान पर बैठाता, कभी गद्दी सौंपकर यूँही इधर-उधर घूम आता और जो भी उसे मिलता उससे वह कहता फिरता कि 'मुझे तो फ़ुरसत है, गद्दी का सारा काम सूरज निपटा लेता है। बड़ा ही लायक़ और ज़िम्मेदार है। सपूत है सपूत, सच का दायाँ हाथ है। और सूरज जब कॉलेज जाने लगता, तब चेतराम उसे देखकर एक क्षण के लिए अनायास ही उदास हो जाता। गोरेमल की चिट्ठी निकालता और उस पर धीरे-धीरे कलम चलाने लगता, जैसे वह उस पत्र को अपनी अस्पष्ट लिखावट से मिटा देना चाहता हो, पर उसे डर लग रहा हो, उसकी हिम्मत पस्त हो रही हो।

पत्र पर वह तब तक अपनी क़लम फेरता रहता, जब तक उसकी आँखों के सामने से सूरज ओझल नहीं हो जाता।

विपिन हाईस्कूल में लगातार दो वर्ष फेल होकर मन से आवारा है, पर तन से दूकान पर पिताजी के संग बैठता है।

पहलाद एफ० ए० फाइनल की परीक्षा देगा, और अभी से इम्तहान पास करने के लिए अनेक तरीक़े तैयार कर रहा है—पर्चा आऊट हो जाय, इम्तहान हाल में कॉपी बदलवा दी जाय, नकल मारी जाय, अथवा इग्ज़ामिनर का पता लगे।

हीरालाल इस वर्ष इन्ट्रेन्स की परीक्षा देगा। बड़ा तेज़ है पढ़ने में। आर्य समाज का जो वेद है न, उसके अनेक मन्त्र उसे याद हैं।

रजुआ 'राबर्ट्स कम्पनी की फैक्ट्री' में कपास-कारख़ाने में काम करता है; साठ रुपये महीने उसकी तनखाह है। वह सात महीने के एक बच्चे का बाप भी हो चुका है।

ताले अर्थात् तलतमुहम्मद 'साहब के पेंच' में गेटमैन है। अभी चालीस रुपये पाता है।

और जगनू, चेतराम की कोशिश से तथा पैंसठ रुपये रिश्वत देकर म्युनिस्पेलिटी में लैम्पचौकीदार है। किराना मुहल्ला और महाजन टोले की गलियों के मोड़ों पर लगे म्युनिसिपल लैम्पपोस्टों में लालटेन जलाता है।

रम्मन पूरा घर-गृहस्थ हो गया है। डेढ़ वर्ष से ऊपर हो रहे हैं उसकी पत्नी आ गई है। रम्मन का अर्थ हो गया है रुपया। 'किरो-सिन आयल' का लैसंस मिला है उसे। हफ़्ते में तीस दिन का 'कोटा' मिलता है। 'परमिट' और 'म्युनिसिपल कार्ड' के आधार से ही जनता तेल खरीद सकती है, वैसे नहीं। 'कफ़न' के कपड़ों का भी कोटा अभी पिछले महीने रम्मन ने कलक्टर साहब से मंजूर कराया है। लोग कहते हैं कि कलक्टर के पेशकार को रम्मन ने सात सौ रुपये दिये हैं। और टी० आर० ओ० दफ़्तर के बड़े बाबू को रम्मन ने एक 'रेडियो सेट' भेंट किया है। छेदामल और बसंता ने रम्मन बेटा से कह रखा है, "भगवान् जो हैं न! वे जिस वस्तु से प्रसन्न रहें, उससे पीछे नहीं हटना चाहिए; वे खुश हैं तो असंख्य हाथ हैं उनके!"

बसंता ने एक पहाड़ी सुग्गा पाला है; साढ़े तेरह रुपये में मिला है—पढ़ा-पढ़ाया हुआ। दिन-भर उसका पिंजरा दूकान में टँगा रहता है, और रात को बसन्ता के पलंग के पास।

हर शाम को, जब रम्मन बिलकुल लापता हो जाता है, तब छेदामल अपने सुग्गे से कहता है, "पट्टू! राम-राम कहो!"

तब पट्टू उत्तर में कहता है, "मिट्टू! बटन्टा! दूड मेंवा डाओ!"

बसंता मेवे लाती है। तब बारी-बारी से पति-पत्नी दोनों पूछते हैं, "पट्टू! रम्मन का हालचाल बताओ!"

पट्टू कई बार सीटी बजाता है, फिर कहता है, "बटन्टा! आट टो ठीट ठा, कड बुडा था (बसंता, आज तो ठीक था, कल बुरा था)।

दूसरे दिन से बाहर से छेदामल, भीतर से बसंता रम्मन पर, छिपे-छिपे कड़ी निगरानी रखने लगे। वे अपने दोनों मुनीमों से कह रखते

थे कि, 'देखो, तिजोरी में रुपये मत रखा करो, किसी भी हालत में दो-ढाई सौ रुपये से ज़्यादा नहीं !'

उसी समय पिंजड़े से पट्टू बोल उठता, "नाय···नाय···ना···ना···बैंक में···बैंक में···मिट्टी···मिट्टी में···मिट्टी···"

छेदामल पिंजड़े को लिये घर में भागता, क्योंकि पट्टू तो अपनी बोली से लोगों को सूचना देने लगता कि छेदामल का रुपया बैंक में नहीं, ज़मीन में गाड़ा जा रहा है !

वैसे छेदामल रम्मन की लायकी, उसकी कमाई से इतना प्रसन्न है कि रम्मन के 'पाकेट खर्च' के लिए सौ रुपये प्रति सप्ताह वह बुरा नहीं मानता। हाँ, उसे बुरा केवल तब लगता है जब रम्मन छेदामल को बुत्ता पढ़ाकर कभी-कभी जमा का खर्च कर देता है और खर्च का जमा तथा जब वह हिसाब ही पी जाता है।

लेकिन छेदामल की कभी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह रम्मन का खुलकर विरोध करे या उसे अपने मन की प्रतिक्रिया जान लेने दे; क्योंकि कई बार रम्मन छेदामल को धमकी दे चुका है कि वह सब छोड़कर जा सकता है, गोद लिया है तो क्या ख़रीद रखा है ? फिर वह पिस्तौल दिखाता है।

एक पिस्तौल उसने सूरज को भी भेंट की है, लेकिन पता नहीं सूरज ने क्या किया उस पिस्तौल का !

कई दिनों से कॉलेज में 'वारफंड' का चन्दा वसूला जा रहा था। अगले दिन रामपुर के नवाब के संग कमिश्नर साहब का आगमन था। 'वारफंड' के सिलसिले में तहक़ीकात के साथ-ही-साथ पूरे दिन फ़र्ज़ी लड़ाई का प्रोग्राम होने वाला था। इस प्रोग्राम के पूरे ख़र्चे का ज़िम्मा चेयरमैन साहू गुरुचरनलाल ने ले रखा था।

आधी रात के समय हनुमान वाटिका में 'स्टूडेण्ट कांग्रेस' की ओर

से एक गुप्त मीटिंग हुई; अलीगढ़, बरेली और मुरादाबाद से भी कुछ विद्यार्थी कार्यकर्ता आये थे। सूरज के तीनों प्रस्ताव पास किये गए, कि कालेज बिल्डिंग पर फ्लैग लगाया जाय, कमिश्नर साहब और नवाब साहब को काले झण्डे दिखाये जायँ, 'वारफण्ड' का 'बायकाट' हो और स्थिति आने पर व्यक्तिगत सत्याग्रह किये जायँ।

उस मीटिंग में कुछ ऐसे भी नवयुवक तथा बुजुर्ग लोग थे, जो विद्यार्थी न थे। बुजुर्गों में मास्टर चन्दूलाल थे, तथा नवयुवकों में एक जगनू भी था। मीटिंग समाप्त होते-होते जगनू उठकर बोलने लगा, "मैं आप सबको आगाह कर देना चाहता हूँ कि आप लोग बड़ा दरवाज़ा, ऊँची हवेली और बज़ाज़ा टोले पर बहुत विश्वास न कीजियेगा। इन मुहल्लों के नौजवान हमें धोखा दे सकते हैं, और उनके माँ-बाप महज़ व्यापारी हैं, दुनिया की हर चीज़ को वे नफ़ा-नुकसान की नज़र से देखते हैं। छल-प्रपंच, धोखा-धड़ी, यही उनके व्यापार के तरीके हैं।"

बड़ा दरवाज़ा का एक नवयुवक विद्यार्थी मिठाईलाल वार्ष्णेय विरोध-स्वर में बोला, "कृपया अपनी बात का प्रमाण दीजिए, वरना आप पर, नहीं-नहीं, तुम पर डिसिप्लिन का एक्शन लिया जा सकता है।"

सूरज ने दोनों को शान्त करना चाहा, पर मास्टर चन्दूलाल ने सूरज के कान में धीरे से कह दिया, "बोलने दो जगनुआ को, उसके पास कुछ फैक्ट्स फ़िगर्स हैं।"

जगनू कहने लगा, "कितना सबूत चाहिए आपको? सबूत है— 'वारफण्ड', लखनऊ-दिल्ली में जो यहाँ से डालियाँ चढ़ रही हैं, परमिट, लाइसेन्स, कोटा, और ब्लैक के लिए जो बड़ी-से-बड़ी रकमें इधर-से-उधर हो रही हैं।"

"यह तो व्यापार है, हमसे इससे क्या मतलब?" मिठाईलाल ने इन्क़लाबी स्वर में कहा, "ये काम तो पूरी बस्ती में हो रहे हैं। कौन है दूध का धुला इस बस्ती में जो ये काम नहीं कर रहा है? क्या गोपालन मुहल्ला और बीसिरा मुहल्ला इन कामों से दूर हैं? क़तई नहीं।"

"कह दूँ मिठाईलाल ?" जगनू का मुँह लाल हो आया। "भूल गये इस साल की होली ? विदेशी कपड़ों की होली जलाने की बात पास हुई थी न ! पर पूछिए रामलखन पनवाड़ी से। आप लोग पूछ लीजिए चोथराम हलवाई से, पूछिए जैहिन्द टेलरमास्टर से, पूछिए आज़ाद रेस्टोरेंट के जियालाल से—बड़ा दरवाज़ा, ऊँची हवेली और बज़ाज़ा टोले की होली में विदेशी कपड़ों के बजाय खद्दर जलाये गए हैं, क्योंकि खद्दर के कपड़ों से सस्ते उनके घरों में, उनके पास कोई विदेशी कपड़े नहीं थे, पर बस्ती को उन्हें दिखाना जो था कि उन्होंने भी विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई हैं !"

"भाई मुझे पता नहीं, मैं सो गया था उस रात," मिठाईलाल वार्ष्णेय ने कहा।

जगनू कहता गया, "लोगों ने पैसों के ज़ोर में ग़रीबों के घरों से ओढ़ने-बिछाने की कथरियाँ और उनके कपड़े खरीदकर उनसे होलियाँ जलाई हैं।"

चारों ओर से 'शेम' 'शेम' के स्वर उठने लगे, पर उसी बीच मुस्कराता हुआ मिठाईलाल बोला, "मैं लज्जित हूँ आप लोगों के सामने। और उन मुहल्लों की ओर से भी लज्जित हूँ। इस शर्म को दूर करने के लिए मैं आप लोगों से वादा करता हूँ कि बिना किसी सीढ़ी के मैं कॉलेज बिल्डिंग पर 'नेशनल फ्लैग' लगाऊँगा।" "हियर-हियर ! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद !"

हनुमान वाटिका से सीधे कॉलेज आकर मिठाईलाल ने साथियों के सामने अपने व्रत को पूरा कर दिखाया। सुबह होते-होते पुलिस, कॉलेज अधिकारियों तथा विशेषकर बाहर से आये हुए हाकिम-हुक्कामों में जैसे तूफ़ान मच गया। आर्म्ड पुलिस, सिविक गार्ड्स, कुछ मिलिट्री सोल्जर्स कॉलेज के सामने कुछ ही क्षणों में जमा हो गए। कलेक्टर साहब के संग कमिश्नर साहब और नवाब साहब मुरादाबाद से चल पड़े थे और एकाध ही घण्टे में बस्ती पहुँच जाने वाले थे।

प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब, एस० डी० ओ०, एस० पी० तथा चेयरमैन के सामने कच्ची मछली की तरह तड़प रहे थे। वे अपने हाथ से झण्डा नहीं उतारना चाहते थे और वे सबसे हाथ जोड़-जोड़कर कह रहे थे, "मेरा हार्ट वीक है, मुझसे इतने ऊपर चढ़ा नहीं जायगा; सीढ़ी देखते ही मेरा दम उखड़ जाता है, मेरा हार्ट फेल हो जायगा, मैं क्या करूँ ?"

सूरज के स्वर के साथ विद्यार्थियों का एक जत्था कॉलेज के बन्द दरवाज़े पर नारे लगा रहा था—

बंद दरवाजे तोड़ दो !
अंगरेजो भारत छोड़ दो !
हमारे नेता जेल में क्यों ?
यह 'वर्ल्डवार' इस देश में क्यों ?

मिठाईलाल ने नारे लगाना शुरू किया—

अपने देश में अपना राज !
यही तिरंगा है सिरताज !

सूरज ने एकाएक चीख़कर नारा दिया—

धड़ से शीश उतर जाये !

सारे विद्यार्थियों से एक ही स्वर गूँजा—

पर उतरेगा नहीं तिरंगा !
सुनो फिरंगा !
सुनो फिरंगा !
इन्क़लाब ज़िन्दाबाद !

क्रोध से पागल अंग्रेज़ एस० पी० ने एस० डी० ओ० और दारोगा-कोतवाल को गाली दी और बेतरह उन्हें डाँटा। उन सब ने चेयरमैन और प्रिंसिपल साहब को गालियाँ दीं। प्रिंसिपल साहब हाथ जोड़े, आँखों में आँसू भरे तूफ़ान की तरह उमड़ते हुए विद्यार्थियों के सामने खड़े हुए, पर कुछ बोल नहीं पाते थे। उनके दायें-बायें आगे-पीछे आर्म्ड पुलिस

और मिलिट्री के कुछ सैनिक खड़े थे।

विद्यार्थियों ने देखा, झण्डे को उतारने के लिए चेयरमैन साहब छत पर चढ़ाये गए हैं। एकाएक एक ही गति में लोहे का वह अलीगढ़ी फाटक चड़मड़ा कर टूटा, और ज्योंही विद्यार्थियों का थमा हुआ तूफ़ान आगे बढ़ने को हुआ, उनके ऊपर बंदूकों के कुन्दे बरसने लगे, और उसी बीच 'टियरगैस' फैला।

प्रिंसिपल मसुरियादीन के संग बारह विद्यार्थी सिविल हास्पिटल में ले जाये गए। सूरज, मिठाईलाल तथा बाहर से आये हुए चार अन्य विद्यार्थी कोतवाली में बन्द हुए।

मिठाईलाल रह-रहकर बेहोश हो रहा था। कुन्दे की मार तथा टियरगैस के बीच से निकलकर केवल वही कॉलेज छत पर पहुँचा था और जिस समय चेयरमैन साहब झण्डा उतार रहे थे, उसी समय मिठाईलाल ने चीख़कर कहा था—

चोर !

चोर !!

और उसने कसकर दोनों हाथों में तिरंगे को साध लिया, कि वह कहीं झुकने न पाये, कोई उसे उतार न सके।

उसी क्षण किसी ने मिठाईलाल के कन्धे पर इतने ज़ोर से प्रहार किया कि वह झण्डे के संग छत से नीचे आ गया, और उस बेहोशी की दशा में भी उसकी दोनों मुट्ठियों में जैसे तिरंगा झण्डा बँधा ही हुआ था—सुरक्षित, समादृत।

कोतवाली में नज़रबन्द मिठाईलाल रह-रह के बेहोश हो जाता था। सूरज तथा चार अन्य नज़रबन्द विद्यार्थियों की चीख-पुकार से क़रीब दो घण्टे बाद मिठाईलाल सिविल हास्पिटल पहुँचाया गया। बस्ती में दफा एक सौ चवालीस लागू कर दी गई।

ए० आर० पी० प्रदर्शन, फ़र्ज़ी लड़ाइयों के नाटक, तथा कमिश्नर साहब, नवाब साहब के स्वागत के कार्यक्रम सफल न हो सके; पर 'वारफण्ड' में अपूर्व सफलता रही; जैसे वह विद्यार्थी-काण्ड उसी की पक्की भूमिका थी। सारे विद्यार्थियों के घर वाले पकड़-पकड़कर बुलाये गए और 'वारफण्ड' के नाम पर उनसे अच्छी-से-अच्छी रक़में वसूली गईं।

और उसी दिन शाम तक कमिश्नर साहब के संग सब हाकिम-हुक्काम, अपने गाजे-बाजे सहित अपने-अपने धाम चले गए और बस्ती के वे सारे लाला-सेठ, साहु-महाजन, चौधरी लोग, जिन्हें विद्यार्थी-उपद्रव के दण्ड में 'वारफण्ड' के नाम पर बड़ी-बड़ी रक़में देनी पड़ी थीं, उन सबने उससे दूनी-तिगुनी यदि नहीं तो उतनी रक़में उसी रात पैदा कर लीं।

'धुआँधार' के सम्पादक ने सरकार की बड़ी घोर निंदा की थी, तथा अपने सम्पादकीय में उसने लाल-लाल अक्षरों में लिखा था :

"बस्ती वालो !
मनाते हो घर-घर खिलाफ़त का आलम
अभी दिल में ताज़ा है पंजाब का ग़म।
तुम्हें देखता है ख़ुदा और आलम
यही ऐसे जख्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो !
असहयोग कर दो !!
गज़ब क्रान्ति कर दो !
गज़ब क्रान्ति कर दो !!

बस्ती वालो !

तुम्हारी आँखों के तारे, देश के दुलारे, मेरे जान से प्यारे, ख़ून के फुहारे, जेल में पड़े बेचारे, वे लगायें नारे, बस्ती वालो, इन्क़लाब कर दो !

तुम सब ने कमिश्नर साहब को 'वारफण्ड' के नाम पर बड़ी-से-बड़ी रक़में भेंट कीं, घूस की थैलियाँ दीं, फिर भी तुम्हारे लाड़ले, देश के प्राण मुरादाबाद जेल में ठूँस दिये गए। यह क्या है बस्ती वालो, क्या तुम अपने चौबीस घण्टे व्यापार के क्षणों में से चन्द घण्टे भी नहीं निकाल सकते? तुम्हारे जवान बेटे जेल में हैं। तुमसे सरकार इतनी रक़में भी चूस रही है कि तुम सब कम-से-कम बस्ती में हड़ताल कर शोक प्रस्ताव ही करो, कोई जलूस ही निकालो! अरे यार! कुछ तो ज़िन्दादिली दिखाओ!"

लेकिन सेठ महाजन, साहु-चौधरी लोग करें भी तो क्या? बेचारों को दम मारने की भी तो छुट्टी नहीं देता था व्यापार—अद्भुत 'बूम' आई थी 'बिजनेस' पर! कोई कितना कमा लेगा, या कमा सकता है, इसकी कोई सीमा ही नहीं निश्चित हो रही थी। व्यापार के आगे सब अगण्य था—देश, आज़ादी, बेटा-पूत, सब।

बस्ती के छोटे-छोटे बच्चे जलूस के अभिनय में जब एक ओर यह गाते थे कि

आज़ादी दीवाना है
जेल की रोटी खाना है!

तब उसी में कभी-कभी यह भी जोड़ते चलते थे :

जै ब्लैक महाराज की
हाथी-घोड़ा पालकी।
जै कन्हैया लाल की
जै ब्लैक महाराज की।

लेकिन 'राबर्ट्स कम्पनी' 'साहब के पेंच' और 'रैली ब्रादर्स' के कल-कारखाने तथा गोदाम में जमकर हड़ताल हुई। क़ब्रिस्तान वाले बाग से भी दक्षिण अमरूद, नीम, बेल-बेइलिया की झाड़ में मीटिंग हुई थी; जगनू ने भाषण दिया था।

ठीक पाँचवें दिन सूरज मुरादाबाद जेल से छूटा। पर वह बस्ती न लौटा। मिठाईलाल के दायें पैर के घुटने की हड्डी टूट गई थी; वह अब तक डिस्ट्रिक्ट हास्पिटल में पड़ा है। उसके पिता महाजन चिरौंजी लाल वार्ष्णेय इतनी अमीर तबीयत के आदमी थे कि वे स्वयं अपने पूत को देखने एक दिन के लिए भी घर से न टले; मुनीम, नौकर-चाकर को भेज-भेजकर मिठाईलाल की सेवा और पूछताछ बराबर कराते रहे।

सूरज मिठाईलाल के संग रहा। मिठाईलाल के पूरे पैर में प्लास्टर बँधा था, लेकिन पट्ठा सूरज को बहलाने के लिए गा उठता—

सोरठ ठाढ़ी महल पै सुखवै लम्बे केश।
जैसे छौना नाग के चाटन निकले ओस॥

सूरज की उदासी जब इस पर भी कभी-कभी नहीं टूटती थी, तब वह हकलाकर कहता था, "सोरठ ठाढ़ी महल पै, अर्थात् संतोष ठाढ़ी महल पै चितवै तेरी राह।"

अगले दिन भोर में ही मधू बुआ और संतोष के संग वहाँ राजू पण्डित आ पहुँचे। मिठाईलाल की माँ ने राजू के हाथ कुछ रुपये भेजे थे। रुपये मिठाईलाल को देकर वे शायद कहीं बाजार चले गए।

संतोष कुछ नाश्ता बनाकर ले आई थी। बुआ ने स्टेशन से संतरे खरीदे थे। संतोष ने नाश्ते का छोटा-सा डिब्बा मिठाईलाल के सामने खोलते समय सूरज को बाँकी नज़र से देखकर भीगे-भीगे स्वर में कहा, "लगता है रात को सोते नहीं; कैसे चढ़ी-चढ़ी आँखें हैं!"

"मैं तो रात-भर सोता हूँ," मिठाईलाल ने नाश्ता फाँकते हुए कहा, "इसी सूरज को नींद नहीं आती। वहाँ सूने बरामदे में घूमता है; जेल की दीवारों पर झूठे-झूठे न जाने क्या-क्या गोदता रहता था। जब से यहाँ मेरे पास आया है, बुआजी देखिए, मेरे सारे प्लास्टर पर इसने पेंसिल से क्या क्या गोद रखा है।"

बुआ ने प्लास्टर पर तनिक भी ध्यान न दिया। संतरा छील-छील-कर वह सूरज को खिलाती जा रही थी और अपने असंख्य प्रश्नों के बीच से एकटक वह सूरज का मुँह निहार रही थी।

सन्तोष मिठाईलाल के प्लास्टर पर इधर-उधर से पढ़ रही थी—कहीं लिखा था—'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद। भारत माता की जै।' कहीं-कहीं भारत के आगे 'माता' शब्द काट दिया गया था और वहाँ अंग्रेज़ी में लिखा था 'मदर'। एक जगह 'मदर' शब्द को भी बड़ी बेरहमी से काटकर वहाँ बड़े गहरे अक्षरों में लिखा था, 'नो मदर, द वेरी आइडिया आफ़ मदर इज़ नान्सेन्स—फ़्लिश।'

एक जगह इस तरह लिखा हुआ था—'ग़ुलामी, भारतवर्ष, अंग्रेज़, दमन-चक्र—गोरेमल, चेतराम, चोरबाज़ार, ब्लैक मार्केट ! बट आई एम सूरज, डू यू नो !' कुछ काटकर, कुछ मिटाकर आगे बहुत ही बारीक अक्षरों में लिखा था—

'सोरठ ठाढ़ी महल पै सुखवै लम्बे केश।
जैसे छौना नाग के चाटन निकले ओस॥'

सोरठ काटकर अंग्रेज़ी में लिखा था—'सन्तोष'। आगे लिखा था मधू बुआ और उसके ऊपर लिखा था—'ईशरी द गॉड' आई एम स्लेव, स्लेव दि वर्स्ट। मिठाईलाल ज़िन्दाबाद ! हियर-हियर।'

यह देखते ही कि सन्तोष मिठाईलाल के प्लास्टर को पढ़ रही है, सूरज बड़ी तेज़ी से अपना रूमाल भिगोकर प्लास्टर की लिखावट मिटाने लगा।

अपने कॉलेज के, स्थानीय स्कूल-कॉलेजों के तथा दूर-दूर के विद्यार्थी कार्यकर्ता सूरज से मिलने आते थे। मिठाईलाल को देखने के लिए सदा कुछ-न-कुछ लोग वहाँ मौजूद रहते थे।

वहाँ के विद्यार्थियों ने एक कवि-सम्मेलन किया, उसमें सूरज को

सभापति बनाया गया। सम्मेलन के उपरान्त सूरज ने एक अत्यन्त जोशीला भाषण दिया। उसमें इतनी भावुकता उमड़ी थी कि बार-बार उसकी आँखें भर-भर आई थीं।

समारोह के उपरान्त छोटे-छोटे विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी 'आटो-ग्राफ बुक' में सूरज के 'आटोग्राफ' लिये। हस्ताक्षर करते समय सूरज का हाथ इस तरह काँपता था जैसे वह अपने-आपसे भय खा रहा हो। पर उसकी आँखों में अनवरत एक भावदृश्य उभर रहा था—काले समुद्र में कोई शीशे का पहाड़ तैर रहा है, उस पहाड़ की चोटी पर कोई शोताखोर बैठा है, जिसके हाथ में सोने की बाँसुरी है और उसके पैर उस चोटी में कसकर बाँध दिये गए हैं और उनमें कीलें जड़ दी गई हैं। फिर भी वह बाँसुरी बजा-बजाकर उस काले समुद्र में कूदना चाह रहा है।

आठ-दस दिनों के बाद सूरज मिठाईलाल के संग किराये की मोटर से बस्ती लौटा। मिठाईलाल के पैर पर अब तक प्लास्टर बँधा था। जिस समय वह मोटर मिठाईलाल के घर के सामने रुकी, समूचा कॉलेज, जैसे वहाँ घिर आया; खूब कस-कसकर नारे लगाये गए। मिठाईलाल और सूरज फूलों के हार से पट गए। पर मिठाईलाल एक ही पैर से चल रहा था—बायाँ पैर और दाईं काँख में बैसाखी। प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब उसे देखते ही रो पड़े थे।

तीन दिन से गोरेमल आ टिका था। वह इस बार विशेषकर सूरज से मिलने आया था। बीच-बीच में जब-जब वह आया था, अपने 'बिज़नेस' में इतना डूबा रहता था कि उसे सूरज से मिलकर कोई फ़ैसला देने तक की फुरसत न रहती थी।

पुलिस के आक्रमणों से अपनी रक्षा के लिए गोरेमल ने चेतराम को अन्तिम फ़ैसला दे दिया था, 'सूरज को अपने घर से निकाल बाहर कर दो, वह कहीं और रहे और उसके खाने-पीने, ख़र्चा-ख़ुराक का प्रबन्ध छिपे तौर से कर दिया करो!'

और चेतराम की ओर से एक दरख़्वास्त लिखवाकर पुलिस-अधिकारियों को दिलवा दी गई थी कि सूरज से चेतराम के घर का कोई सम्बन्ध नहीं है, वह उस घर से अलग रहता है।

दारोग़ा, दीवान और मुंशी को गोरेमल स्वयं यह सूचना देने गया था। दरख़्वास्त के संग चेतराम को भेजा था।

सूरज जब अपने मुहल्ले में प्रवेश कर रहा था उसी समय उसे सूचना मिल गई थी कि गोरेमल आया है। इसलिए जब वह चौराहे से अपने घर की ओर मुड़ा, उसने अपने को बिलकुल अकेला कर लिया।

वह ज्योंही सड़क से ऊपर आकर घर में प्रवेश करने जा रहा था, गोरेमल ने ठण्डे स्वर में टोका, "रुको, यह घर नेतागिरी के लिए नहीं है। इस घर में लक्ष्मी बसती है, इसमें भाग्यवान रहते हैं।"

"क्या मतलब ?" सूरज रुक गया।

"चेतराम से पूछो—अपने बाप से," गोरेमल की त्योरी चढ़ गई। "मुझसे बात करने के लिए पहले जाओ कहीं तमीज़ सीखो।"

"आप ही से क्यों न सीख लूँ।"

"चेतराम ! सुनाओ इसे जल्दी अपना फ़ैसला, वरना मुझे ही अपना फ़ैसला देना होगा। ज़रा ग़ौर करने की बात है।"

भीतर से दहलीज़ में मधू बुआ, रूपाबहू, गौरी आ खड़ी थीं। चेतराम ने जैसे रोते स्वर में कहा, "हाथ जोड़ता हूँ, एक बार और क्षमा करो मेरे सूरज को, अब वह अगर फिर इस तरह राजनीति में पड़ेगा तो ठाकुर भगवान् की कसम, मैं उसे निश्चय ही घर से बाहर कर दूँगा।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" कुछ क्षण चुप रहने के बाद गोरेमल ने कहा, "महज़ तीन रास्ते हैं—सूरज माफ़ी माँगे, वह मुझसे क़सम खाए कि आज से वह राजनीति में नहीं पड़ेगा, और दूसरा रास्ता यह है चेतराम कि तुम सीधे-सीधे सूरज को अपना फ़ैसला दो और यदि

ये दोनों रास्ते नहीं तो तीसरा रास्ता मेरा होगा कि मैं स्वयं यहाँ से अपना सम्बन्ध तोड़ लूँगा। यह ज़रा ग़ौर करने की बात है।"

चेतराम शून्य में इस तरह देख रहा था जैसे वह विक्षिप्त हो रहा हो।

"मैं समझ गया। पूरी बात समझ गया, आपका फ़ैसला भी समझ गया।"

"क्या समझोगे तुम? लाख जन्म भी नहीं समझ सकते तुम मुझे। अगर तुमने मुझे समझा ही होता तो आज क्या कहने थे!"

"मैं आज एक ही बात जानना चाहता हूँ, यह घर किसका है?" सूरज ने पूछा।

"बताओ इसे चेतराम!"

"हमारा है," चेतराम जैसे रो देगा।

"फिर यह फ़ैसला देने वाला कौन है?"

चेतराम ने दौड़कर सूरज का मुँह थाम लिया और उसकी बाँह पकड़े वह सड़क की ओर भागा—ऐसे भागा जैसे विपद्काल में कोई अपनी पूँजी लेकर भागता हो। और गली-गलियारों से बढ़ता हुआ चेतराम सूरज के सामने वस्तुस्थिति स्पष्ट करने लगा—"पुलिस बेहद तंग करती है, घूस देते-देते मैं तो नहीं थका, पर गोरेमल को सब मालूम हो गया। उसने पुलिस से तुम्हारे घर की रक्षा के लिए यह उपाय सोचा है।"

चेतराम ने इधर-उधर देखकर अपनी वह दरख़्वास्त निकाली जिसे उसने पुलिस-दफ़्तर में न देकर अपने ही पास छिपा लिया था।

दरख़्वास्त का मज़मून देखते ही सूरज के भीतर कुछ रो पड़ा। उसने चेतराम से रुँधे कण्ठ से कहा, "चलो, इस दरख़्वास्त को पुलिस-दफ़्तर में दो, वरना मैं अभी गोरेमल के सिर से अपना सिर टकरा दूँगा और कभी लौटकर न आऊँगा तुम्हारे घर।"

चेतराम ने इस परिणाम को कभी सोचा ही न था। सूरज आगे-

आगे चला, चेतराम पीछे-पीछे। पुलिस-थाने के फाटक पर एक बार चेतराम ने फिर भरी आँखों से सूरज को देखा, पर सूरज अटल था अपने भावों में।

चेतराम जब थाने के भीतर से बाहर आया वहाँ सूरज न था।

चेतराम उस बच्चे की तरह इधर-उधर भटकने लगा जिसकी माँ किसी दूर देश के रेलवे प्लेटफ़ार्म से खो गई हो। चेतराम की धोती ढीली थी, पुंछेटा खुलकर सड़क पर घिसट रहा था, पर जैसे उसे सम्हालने का ज्ञान तक न था।

सहसा सरन नाई की दृष्टि चेतराम पर पड़ी। उसने बढ़कर बड़े अदब से चेतराम की धोती सम्हलवा दी। चश्मा उतारते हुए बोला, "ऐसी भी क्या परेशानी, क्या मंज़र, क्या ग़म है?"

चेतराम ने सरन नाई का शेर पूरा न होने दिया, उसने ऐसी दृष्टि से देखा कि सरन अवाक् रह गया।

रिक्शे पर बैठकर चेतराम आगे बढ़ गया। पूरी बस्ती में वह रिक्शा लिये घूमता रहा, सूरज के समस्त हितू दोस्तों से पूछता रहा, पर सूरज का कहीं पता न था।

चेतराम का जी हो रहा था कि वह भी घर न लौटे, पर उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके आगे-पीछे गोरेमल चल रहा है—सामने का गोरेमल अपनी दोनों हथेलियों पर धन से भरी हुई तिजोरियाँ लिये है और पीछे के गोरेमल के हाथों में दो चाबुक हैं—बिजली में बुझे हुए चाबुक—जैसे राईसत्ती के मैदान में वह सरकस वाला आया था और उसके हाथ में चाबुक थे।

सूरज उसी साँस में चलकर स्टेशन गया और अलीगढ़ पहुँचा। वहाँ से अम्बाला गया। सारी यात्रा में वह केवल यही सोचता रहा कि वह ईशरी फूफा से मिलेगा। जब सूरज को घर से अलग ही रहना है तो वह अन्यत्र क्यों रहे? जेल ही में वह क्यों न रहे। वह भी क्रान्तिकारी दल में मिल जायगा। बम्ब फेंकेगा। पहला बम्ब गोरेमल

पर और दूसरा बम्ब!······और दूसरा बम्ब······। सूरज कोई उत्तर ही नहीं पाता था। दूसरा बम्ब किस पर? चेयरमैन साहू गुरचरन लाल? कलक्टर? कमिश्नर? गवर्नर? गवर्नर जनरल? फिर किस पर? सूरज में इन निर्णयों पर गांधी की अहिंसा जाग उठती थी और उसे ये सब निर्दोष, विवश और दीन लगते थे। जिस क्षण वह अम्बाला पहुँचा, उस समय उसके मन में एक उत्तर आया—दूसरा बम्ब सूरज अपने ऊपर फेंक लेगा। लेकिन ऐसा वह क्यों करेगा? वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। दूसरा बम्ब सदा उसके पास सुरक्षित रहेगा।

अम्बाला जेल में ईशरी का कोई पता न चल सका। सूरज वहाँ से बम्बई जाने का निश्चय कर रहा था, पर मधू बुआ उसे इस तरह याद आ रही थी कि लगता था चलती सड़क पर वह रो देगा; लगता था जैसे उसके भीतर धुआँ उठ रहा हो।

पाँचवें दिन सूरज बस्ती लौटा। मिठाईलाल के घर गया और पहुँचते ही बोला, "प्यारे झंडावीर (मिठाईलाल)! किसी तरह तुरन्त मेरी बुआ को यह सूचना भेजो कि मैं यहाँ हूँ।"

मिठाईलाल हँसा, "और उसको?"

"और कौन?"

"जो उसी दिन से, जबसे तुम यहाँ से लापता हुए हो, पागल हो गई है। तुम कहाँ हो, सब से पूछती फिर रही है।"

"सन्तोष?"

"और कौन, मिठाईलाल?"

रात के नौ बजे का समय था। सूरज को पाकर मिठाईलाल इतना प्रसन्न था कि वह प्लास्टर-बँधे पैर से एक बैसाखी के सहारे अपने घर से गोपालन मुहल्ले आया। चेतराम के दरवाज़े पर न गया, गोरेमल अब तक टिका बैठा था। वह ठाकुरद्वारे में गया; राजू पण्डित को सूरज की सूचना दी। राजू पंडित से सन्तोष, सन्तोष से मधू बुआ और मधू-बुआ से चेतराम, चेतराम से रूपाबहू।

राजू पंडित के संग मधु बुआ और सन्तोष मिठाईलाल के घर गईं।

सूरज को सामने पाकर बुआ और सन्तोष बिलकुल मूर्तिवत् खड़ी रहीं, जैसे कुछ बोला ही न गया, जैसे बोलने की परिधि को वे पार कर चुकी हों। तीनों के सिर झुके थे, केवल राजू पंडित बोलते जा रहे थे, "तुम चलो, मेरे यहाँ रहो बेटा! वह घर तुम्हारा ही है। क्या मजाल है गोरेमल-चेलराम की, मेरे पास किसी से कम हैसियत है क्या? उनके पास अगर रुपये का बैंक भरा है, तो मेरे पास भी रामनाम बैंक भरा है।"

यह कहते-कहते राजू पंडित मिठाईलाल के पिता महाजन चिरौंजी-लाल वार्ष्णेय की गद्दी पर चले गए।

बुआ की आँखों में सूजन थी और उनमें से ऐसी उदासी बरस रही थी जो मानो सूरज से अपनी गूँगी आवाज़ में कह रही हो कि 'सूरज! मैं तब से सोई नहीं, मैं तब से रोती रही।'

पता नहीं क्यों, सन्तोष पर एक अजीब गहरी ख़ामोशी छाई हुई थी। वह कुछ न बोली, उसके हाथ-पाँव तक न हिले, वह कभी सूरज को देखती, कभी ज़मीन को और कभी शून्य में।

उसने सूरज से अपनी दृष्टि को एक बार भी न मिलने दिया। यहाँ तक कि उसने वहाँ उपस्थित किसी को भी न देखा, न अपने को देखने दिया।

सूरज के माथे पर हाथ रखकर बुआ ने कुछ कहा, कुछ क्षण बाद राजू पंडित आये, वे भी बोलते रहे, और उसी बीच सूरज ने सबको चुप कर दिया। उसने एक अजीब करुणा-मिश्रित क्रोध से कहा, "तुम सब चली जाओ यहाँ से! किसने बुलाया तुम सब को? सूरज अंग्रेज़ी सरकार का दुश्मन है, सूरज गोरेमल का दुश्मन है, सूरज सबका दुश्मन है।"

यह कहते-कहते सूरज वहाँ से जैसे भाग खड़ा हुआ।

वह प्रिंसिपल मसुरियादीन के पास पहुँचा, महज़ यह कहने कि सूरज

अब कालेज छोड़कर कहीं और चला जा रहा है। पर मसुरियादीन ने उसे उस प्रीति और स्नेह से देखा कि सूरज के मुँह से निकला, "इस बार मैं निश्चय ही परीक्षा में बैठना चाहता हूँ।"

बस्ती में जितने भी लोग एक गज़ मिल के कपड़े को सोने के भाव बेच रहे थे, वे सब-के-सब खद्दर पहनते थे, क्योंकि खद्दर से इन्स्पेक्टर लोग डरने लगे थे, गांधी टोपी से जैहिन्द की ढाल खड़ी मिलती थी।

सूरज गांधी आश्रम में अपने लिये धोती ख़रीदने गया, उत्तर मिला धोती नहीं है। साथ में पहलाद और विपिन थे।

पहलाद ने कहा, "तुम इस गली में खड़े-खड़े देखते रहो, मैं लाता हूँ उसी दुकान से धोती, एक नहीं चार।"

पहलाद गया और ब्लैक देकर एक जोड़ा धोती ले आया।

धोती देखते ही सूरज घायल सिंह की भाँति आश्रम की दुकान की ओर झपटा। पर विपिन ने पकड़ लिया, "गांधीजी ने कहा है कि धीरज से काम लो, विनय और अहिंसा से रहो। चलो एक चीज़ और दिखाता हूँ तुम्हें।"

थोड़ी-सी रात बीती थी। सूरज, विपिन और पहलाद तीनों चौक से होते हुए राष्ट्रीय भोजनालय के पीछे-पीछे घीसिए मुहल्ले में चौधरी रामनाथ के पिछवाड़े पहुँचे।

चौधरी साहब, प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य हो चुके थे; दरवाज़े पर तिरंगा, आँगन में तिरंगा, कच्ची-पक्की दोनों गद्दियों पर खद्दर के बिछावन।

थोड़ी देर के बाद सूरज ने देखा कि दो-दो, चार-चार, छः-छः की संख्या में दूर-देहात के लोग, निरे गाँव वाले, स्त्री-पुरुष, बच्चे—एक-एक तन पर दो-दो तीन-तीन ब्लैक में ख़रीदी हुई कोरी धोतियाँ पहने चौधरी रामनाथ के घर में से निकल रहे हैं। पिछवाड़े से निकलने वाले लोगों के हाथ में उनके पुराने कपड़े हैं, जिन्हें पहन-पहनकर वे आज सुबह आये थे और अब रात को अपने-अपने घर वापस जा रहे

हैं। लोग एक के आठ-आठ देकर जा रहे हैं, फिर भी इतने डरे-डरे से क्यों हैं ? लोग तेज़ी से चलना चाह रहे हैं, पर उनसे खुलकर चला क्यों नहीं जा रहा है ? लड़के-बच्चे तो गिर-गिर पड़ रहे हैं, स्त्रियाँ हाँफ रही हैं। एक-एक फटी फतुही पहनकर आई थीं, किसी तरह लाज ढके; और जा रही हैं, एक तह, दो तह, तीन तहों में पहनी हुई तीन साड़ियाँ लिये !

और रात बीती, थोड़ी-सी और, सब सो गए। बिजली वाले पंडित को दस-दस के पाँच नोट, नहीं-नहीं आज रात को सौ रुपये, कोई बात नहीं। बस्ती की बिजली एकाएक खराब हो गई—'मेन पोल' ही उड़ गया।

चौधरी रामनाथ के पिछवाड़े तीन ठेले रुके। कपड़ा लदने लगा —राशन का कपड़ा, परमिट का कपड़ा, ये हैं शोलापुरी, फ़िनलें, पिस्तौल छाप मारकीन, कानपुरी गबरून, लट्ठे, ये हैं अहमदाबाद, बम्बई, नागपुर के मलमल, छालटीन, आबेरवाँ, छींट, तंजेब। ये धुली हुई बम्बई मिल्स की ज़नानी साड़ियाँ, ये हैं कोरी छः गज़ी, ये हैं पंचगज़ी अड़तालीस इंची, बावन इंची। तीनों ठेले लद गए, फिर उन्हें खद्दर के थान-के-थान कपड़ों से ढका गया। फिर चौधरी रामनाथ के संग सैयांमल और उनके पीछे महातान्त्रिक पंडित बमशंकर जी ज्योतिषी निकले। तीनों ठेलों के पास कुछ जलाया गया, कुछ पूजा गया, कुछ फूँका गया फिर ज्योतिषी ने कहा, "बमशंकर"—और वे ठेले आगे बढ़ने लगे, और वे तीनों पीछे-पीछे।

सैयांमल के घर के अहाते में दो-तीन मिस्त्री, चार-छः पल्लेदार पहले से ही अपने काम पर लगे थे। बीच में मिल के कपड़े, ऊपर से खद्दर के थान, फिर टाट के सहारे बड़ी-बड़ी गाँठें। दो गाँठें बँधकर तैयार थीं, तभी ये ठेले पहुँचे। उसी विधि से इनकी भी गाँठें बँधने लगीं—एक गाँठ, दो गाँठ, तीन गाँठ, चार गाँठ—चौथी गाँठ के लिए खद्दर के कपड़े चुक गए। अब क्या हो ? चौधरी रामनाथ के घर से

पीठ पर लादकर तिरंगे झंडे आये और उनसे गाँठ बँधी। फिर ट्रक आई, पल्लेदारों ने गाँठों की छल्लियाँ जोड़ दीं। ट्रक के आगे तिरंगा झंडा लगा, और ट्रक जैसे हवा में उड़ गई।

चार बजे सुबह से कांग्रेस पार्टी की प्रभातफेरी निकली। चौधरी रामनाथ आगे-आगे गा रहा था—

जगदीश यह विनय है जब प्राण तन से निकले,

प्रिय देश रटते-रटते, ये प्राण तन से निकले।

सूरज कटे वृक्ष की भाँति मिठाईलाल (झंडावीर) के सिरहाने बैठा था और उसके आसपास विपिन, पहलाद और जगनू इस तरह एकाग्र बैठे थे, जैसे सूरज को थामे हुए हों।

सब चुप थे, सब उदास थे। ऊपर प्रभातफेरी का स्वर गूँज रहा था। सूरज देख रहा था—तिरंगा झंडा और गोली, तिरंगा झंडा, अपना कालेज, मिठाईलाल की चोट, उसका प्लास्टर बँधा पैर। सूरज देख रहा था—बस्ती की होली, विदेशी कपड़ों के स्थान पर खद्दर के कपड़ों की होली।

अगले दिन शाम के 'धुआँधार' में चौधरी रामनाथ और सैयांमल के फोटो छपे तथा आँखों-देखा कपड़े की भयानक चोरबाज़ारी का पूरा विवरण छपा। गांधी आश्रम की घटना भी छपी।

लेकिन 'धुआँधार' और चौधरी रामनाथ से ही इतना भयानक संघर्ष। चेयरमैन साहू साहब, सैयांमल दोनों को लेकर चौधरी साहब कलक्टर से मिले। जो बात वर्षों से गुप्त थी, सी० आई० डी० का पूरा जत्था जिस 'धुआँधार' की शक्ति को पकड़ने में असफल था, वह सब-का-सब खोला गया। 'धुआँधार' के सम्पादक मास्टर चन्दूलाल गिरफ़्तार किये गए और पूरी बस्ती में मुनादी की गई कि आज से जिस किसी आदमी के हाथ में, दुकान में या कहीं भी 'धुआँधार' देखा

गया उसे छः महीने की सज़ा और दो सौ रुपये जुरमाना।

गोरेमल अब तक राहु की तरह जमा बैठा था। मास्टर चन्दूलाल की ज़मानत किससे कराई जाय, सूरज की पूरी पार्टी हैरान थी।

छेदामल और बसन्ता से छिपकर रम्मन ज़मानत लेने को तैयार था। मिठाईलाल का पिता तैयार था, पर आज नहीं कल; आज व्यापार में विशेष 'बूम' आया था, आज उन्हें दम मारने की भी फ़ुरसत न थी।

दुपहरी में चौक की सर्राफ़ा गली में सूरज से चन्दनगुरु की भेंट हुई। चन्दनगुरु ने कहा, "कुछ ब्लैक दो तो मैं कर लूँ ज़मानत!"

"कितना?" सूरज ने बेहद ग़रीबी से पूछा।

"महज़ दो सौ रुपये, क्योंकि तुम एक नहीं दसियों जगह से रुपये पा सकते हो, पर ज़मानतदार नहीं।"

"तुम्हें शर्म नहीं आती, चन्दनगुरु?"

"जाकर पहले चेतराम और गोरेमल से पूछो कि उन्हें भी शर्म आती है, जो दो सौ के दो हज़ार बनाते हैं, बिना किसी मेहनत के, काम के और पूँजी के। यार मैं तो ज़मानत दूँगा?"

"अर्थात् बेचोगे अपने को।"

"नहीं यार, महज़ ज़रा-सा भुनाऊँगा। एक औरत ख़रीद रहा हूँ, उसीमें दो सौ की कमी पड़ रही है।"

सूरज एकाग्र दृष्टि से चन्दनगुरु को महज़ देखता रह गया। जाते-जाते गुरु कह गया, "इसमें क्या बुराई, ब्लैक का ज़माना है, आख़िर क्या हो इतने रुपयों का? रम्मन ने भी तो उस दिन डेढ़ हज़ार में एक माल ब्लैक में ख़रीदा है। बरेली में किराये का घर लेकर वहीं रख छोड़ा है।"

गुलज़ारीलाल, जो चौधरी रामनाथ और चेतराम के संग म्युनिसिपेलिटी की चेयरमैनी के लिए चुनाव में खड़ा हुआ था और चन्दनगुरु तथा रामनाथ द्वारा खेले गए विश्वासघाती नाटक से परास्त हुआ था, तभी से वह अक्सर बीमार रहने लगा था। दुकान, घर-गृहस्थी का

सारा काम-काज नारायणदास देखता था। बाद्य बीमारी से छुट्टी पाकर अब वही गुलज़ारीलाल अर्द्धविक्षिप्त-सा हो गया था। नींद बहुत कम आती थी उसे, भूख तो जैसे लगती ही न थी, गरमी-सरदी दोनों में समान भाव से वह बस चुपचाप सड़कों पर घूमता ही रहता था।

सूरज जब सर्राफ़ा गली को पार करके बड़ा दरवाज़ा की ओर बढ़ रहा था, सहसा वहीं गुलज़ारीलाल ने उसका रास्ता रोक लिया और बड़ी ही गम्भीरता से बोला, "मुझे ले चलो मास्टर चन्दूलाल की ज़मानत के लिए; नारायणदास को भी मेरे संग ले लो।"

बड़ी रात को मास्टर चन्दूलाल मुरादाबाद से लौटे। बीसियों स्वरों में इन्कलाब के नारे लगे। एक पाँव पर खड़ा हो मिठाईलाल ने बड़ा दरवाज़ा के अहाते में भाषण दिया।

और दूसरे दिन, ठीक उसी संध्या-समय दूसरा 'चारपेजी' साइक्लो-स्टाइल अख़बार प्रकाशित हुआ। नाम था 'लंकादहन' और 'धुआँधार' की भाँति सब दुकानों, चौराहों और गली-सड़कों में वह बिखर गया।

४

मई की एक रात। शाम ही से बड़े ही भद्दे प्रकार की आँधी चल रही थी। पूरी बस्ती की बिजली फेल। आधी रात होते-होते किसी ने चेतराम के पिछवाड़े खिड़की की साँकल बजाई, बन्द किवाड़ों पर बड़ी आवाज़ें करने लगा।

मधू बुआ जाग रही थी। खिड़की पर आवाज़ सुनते ही उसे ऐसा लगा, जैसे सूरज आया है। बुआ दबे पाँव उठी, धीरे से बढ़कर किवाड़ खोलने लगी, "सूरज बेटा, समझ लो कि एक दिन यह बुआ मर जायगी और तुम इसका मुँह भी न देख सकोगे। पता नहीं कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते हो। यह तुम्हारा घर, तुम्हीं में प्राण फँसाकर मैं

यहाँ बँधी बैठी हूँ और तुम हो कि जैसे अपने घर ही को त्याग दिया, मुझे भी त्याग दिया।"

जब किवाड़ खुले, तब बुआ की आँखें आँसुओं में इस तरह डूबी थीं कि उसे कुछ भी न दीखा। पर दूसरे ही क्षण बुआ भय खाकर चीख पड़ी और बड़े ही धड़ाके से किवाड़ जैसे अपने-आप बन्द हो गए।

आँगन में आकर बुआ दम मारने लगी, तब उसे लगा जैसे बाहर बन्द किवाड़ से लगकर कोई रो रहा है। कौन है वह ? कौन हो सकता है ? सूरज तो नहीं है वह ! चोर ? राशनिंग इंस्पेक्टर कोई ! खुफिया पुलिस, वेष धारण किये ? पर वह रो क्यों रहा होगा ?

बुआ पसीने से तर हो रही थी। घबराहट में उसने रूपाबहू को जगाया। दोनों बड़ी हिम्मत से बन्द खिड़की के पास गईं।

रूपाबहू ने पूछा, "कौन ? कौन हो तुम ?"

मधू बुआ ने ज़रा और हिम्मत से पूछा, "अजी, बोलते क्यों नहीं ?"

"क्या बोलूँ ! जब मुझे देखकर नहीं पहचान सकतीं तो क्या महज़ सुनकर पहचान सकोगी ?"

जिस धड़ाके से मधू बुआ के हाथ से किवाड़ बन्द हुए थे, ठीक उसी गति से वे खुल गए। बुआ दौड़ी तो. पर पिछड़ गई, ईशरी ने बुआ के चरण पहले ही छू लिये।

रूपाबहू को अब भी यक़ीन नहीं हो रहा था कि वह सामने खड़ा हुआ आगन्तुक ईशरी है। सिर पर जटा जैसे सूखे-बिखरे बाल, साधुओं जैसी दाढ़ी, खाकी पैंट पर कुरता; पर पाँव नंगे और कमर में दोनों ओर दो पिस्तौलें और कुछ नहीं, महज़ एक पाकेट में छोटी-सी नोटबुक और काली मिर्चें।

आँगन में आते ही ईशरी ने पूछा, "सूरज कहाँ है ?"

बुआ और रूपाबहू दोनों चुप थीं, जैसे कटु सत्य ने उनकी वाणी दबोच ली हो।

"जल्दी बताओ, सुबह की गाड़ी से मुझे भाग जाना पड़ेगा।"

मधू बुआ ने ईशरी को देखा और जैसे शून्य में कुछ देखती रह गईं, जैसे मन के सारे डोलते पात-पात पर कोई हवा आकर रुक गई। आधी रात को ही कहीं से मुर्गा बोलने की आवाज़ आई। जैसे आज हर मुहल्ले से आर्यसमाज, कांग्रेस की प्रभातफेरी के स्वर वातावरण में गूँजकर फैल गए और उसमें से आज यह आवाज़ आई—'उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है!' जैसे सड़कों, चौराहों गली-गलियारों की बत्तियाँ एकाएक बुझ गईं और सनातन धर्म मन्दिर के टावर क्लाक में जैसे बारह से एक ही क्षण में पाँच बज गए। मन्दिर के पुजारी, ठाकुरद्वारों के पंडितों ने जैसे एक ही स्वर में आज गाया हो—

'एक दिवस मेरे गृह आये मैं रहि मथति दही,
देखि तिन्हें मैं मान कियो सखि सो हरि गुसा गही।'

ईशरी को संग लिये मधू बुआ अपने माथे पर रेशमी दुपट्टे का ज़रा-सा घूँघट डाले सोई हुई बस्ती के इस मुहल्ले से उस मुहल्ले तक सूरज के लिए घूमने लगी। और ईशरी से विशुद्ध दुलहिनों के स्वर में बताती रही कि 'सूरज तब से घर नहीं आता। चौक में एक राष्ट्रीय होटल खुला है, उसीमें भोजन करता है और अनिश्चित रूप से वह कभी इस मित्र के यहाँ कभी उस साथी के यहाँ सो जाता है। कई दिन मैं अपने हाथ से भोजन बनाकर उसे खिलाने गई, पर उसने स्वीकार नहीं किया, महज़ भरी आँखों से मुझे देखता रहा। पता नहीं कितनी दूर-दूर से, कैसे-कैसे लोग, कैसे-कैसे विद्यार्थी उससे मिलने-जुलने आते हैं और सूरज भी पता नहीं कहाँ-कहाँ दौड़ लगाया करता है और दुनिया के अलावा अगर वह हममें से किसी को याद करता है तो केवल आपको।'

मिठाईलाल से पता चला कि सूरज धीमर टोला में है, जगनू के घर। और उसे ढूँढ़ने के लिए वह स्वयं अपनी एक बैसाखी के सहारे उनके संग चल पड़ा।

जगनू का घर मिट्टी का था—निरा मिट्टी का घर, दीवारें, छत सब। दरवाज़े पर, नंगी ज़मीन पर जगनू सोया था और वहीं एक दरी पर, सिरहाने लालटेन जलाये सूरज लेटा था; पर शायद वह पढ़ रहा था। आहट पाते ही पहले जगनू उठा, फिर सूरज।

ईशरी को देखते ही सूरज उसकी बाँहों में समा गया और बड़े ही गर्वीले स्वर में बोला, "जगनू! यही हैं मेरे वह ईशरी फूफा, जिनके विषय में मैं तुमसे हर रोज़ बात करता था।"

"तुम मुझे ढूँढ़ने अम्बाला तक गये थे?" ईशरी ने पूछा।

सूरज ने मधू बुआ की ओर निहारा और वह चुप रह गया। पर दूसरे ही क्षण वह अशान्त होकर बोला, "तुम कब आए फूफा? अभी-अभी आए हो न? कुछ खाया-पिया भी न होगा।"

यह कहते-कहते सूरज ने ईशरी को नीचे से ऊपर तक देखा—वह रूप, वह भेष, कहीं खद्दर का नाम नहीं।

और सूरज जैसे उसके माध्यम से देखने लगा—एम० एन० राय का गिरोह, आई० एन० ए० की सेना, भगतसिंह की फाँसी और जेल-ख़ानों की दीवारें।

मधू बुआ ने पूछा, "तुम्हारे फूफा का क्या आतिथ्य हो! जानते भी हो, ये सुबह तड़के यहाँ से चले भी जायँगे।"

"चले जायँगे!" सूरज ईशरी और बुआ के बीच से आगे बढ़ता हुआ बार-बार यही दुहराता रहा, "चले जायँगे, अच्छा, चले जायँगे! तुमसे कहा है बुआ? अच्छा, कोई बात नहीं बुआ! ···बुआ, सच मैं अम्बाला गया था, तुमसे मैंने ये सारी बातें छिपा लीं। मैं भी अब 'टेररिस्ट' हो गया बुआ! मैं अब कभी खद्दर नहीं पहनूँगा।"

"पर इस समय हम लोग चल कहाँ रहे हैं?" ईशरी ने पूछा।

"अपने घर चल रहे हो न!" बुआ ने कहा।

सूरज चुप था।

ठाकुरद्वारे को पार करके सूरज बड़े अधिकार से राजू पंडित के बन्द

दरवाज़े को खटखटाने लगा। राजू पंडित जागे, बुढ़िया दादी जागी, दरवाज़ा खुला, पर सन्तोष को अब तक ख़बर नहीं—वह आँगन में जैसे बेहोश सो रही थी।

सूरज ने बिलकुल पास जाकर डाँटा, "बड़ी बेख़बर हो तुम! ऐसे कोई सोता है? ओह ओ! अब तक आँख नहीं खुली!"

सन्तोष घबराकर उठी। वह अपने कपड़े सँभालती थी और सूरज को इस तरह देखती जा रही थी जैसे वह अपने मन में स्पष्ट कर रही हो कि वह कोई स्वप्न नहीं देख रही है, जो हो रहा है, या हुआ है, वह सब सत्य है, साकार सामने है।"

"तुमने तो कहा था मैं तुम्हारे यहाँ कभी नहीं आऊँगा," सन्तोष बोली।

"वह तो मैं अब भी कह रहा हूँ," सूरज ने कहा। "और सुनो जल्दी से, ईशरी फूफा आये हैं अभी, बाहर हैं पंडितजी के पास, बुआ भी है। तुम झटपट उन्हें कुछ खिला-पिला दो, हाँ!"

तब तक बाहर से सब आँगन में आ गए और सन्तोष के हाथ-पैर में जैसे जादू लग गया। वह तीर की तरह रसोईघर, आँगन, बाहर-भीतर इतनी तेज़ी से उत्साह-भरी दौड़ने-भागने लगी, जैसे उसके आँगन में कोई अपनी बारात आ गई हो, जैसे किसी ने कमर में ढोल बाँध दी हो, और जिह्वा में गीत के बोल।

मधू बुआ एकटक निहारती रही—आँगन में ईशरी, चौके में सन्तोष—एक ओर मन, दूसरी ओर श्रद्धा और बीच में वह जड़-की-जड़!

सन्तोष छूने नहीं दे रही है कुछ, "बुआ तुम बस देखती रहो, आज तो यह अवसर मिला है। सन्तोष को आज स्वार्थ जगा है बुआ, वह आज कृपण है, वह आज तुमसे नहीं बँटाएगी बुआ, तुम चाहे जो कर लो! तुम बात करो न उनसे, मेरे पीछे-पीछे क्या दौड़ रही हो?"

"तुम करो न बात!"

"किससे ?"

"सूरज से और किससे।" बुआ ने हँसकर इतने धीरे से कहा कि सन्तोष भी न सुन सके, पर सन्तोष ही नहीं जैसे सूरज ने भी सुन लिया। और एक क्षण के लिए उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा। सन्तोष को जैसे बड़ा गुस्सा आया। वह आटा गूँध रही थी, उन्हीं हाथों से उसने बुआ के सारे मुँह को छाप दिया, "तुम जाओ न! अब क्यों नहीं बात करतीं ? इतवार, मंगल के व्रत, सुबह-शाम गौर-पूजा, ज्योतिषी से प्रश्न, माली से जो लवँग फुँकाती फिरती थीं।"

बुआ सहसा शान्त पड़ गई। आँखें भर आईं, और वह न जाने कितने वज़नी नज़रों से शून्य में देखने लगी।

"बुआ! ओ बुआ!" सन्तोष ने धीरे से बुलाया।

बुआ ने सन्तोष को देखा, और सन्तोष की नज़र झुक गई, "बुआ आज ऐसे न देखो, नहीं तो अच्छा न होगा, भरी कड़ाही में हाथ डाल दूँगी, हाँ!"

बुआ को हँसना पड़ा, और समीप चला जाना पड़ा, "रानी बेटी, मैं उनसे क्या बात करूँ, वे तो बस, चार ही घण्टों के लिए आये हैं। सुबह से पहले ही चले जाने को कहते हैं!"

"तो क्या हुआ, वे आये तो हैं बुआ!"

"तुम्हारे आशीष से बेटी, सूरज की कृपा से···"

राजू पंडित के अतिरिक्त ईशरी के संग सबने कुछ-न-कुछ खाया; सूरज भी जैसे ईशरी से कम भूखा न था।

फिर सबको अपने संग लिये रूपाबहू के पास आना चाहता था, पर सूरज ठाकुरद्वारे से नीचे उतरकर वहीं खड़ा हो गया, "तुम मिल आओ मैं यहीं खड़ा रहूँगा, नहीं घर में न जाऊँगा अभी।"

ईशरी घर में गया। रूपाबहू और चेतराम को संग लिये तुरन्त वह बाहर चला आया। सूरज के संग वहीं ठाकुरद्वारे में सब लोग बैठ गए।

सूरज से मिलने की तलाश में चेतराम के दरवाज़े पर एक दिन प्रिंसिपल मसुरियादीन जी आये। पता चला कि कई दिन से सूरज कहीं बाहर गया हुआ है। मास्टर चन्दूलाल के मुकदमे की पैरवी बड़े ज़ोरों से चल रही थी। खिलाफ़त में सरकार का साथ देने वालों में चेयरमैन साहू गुरुचरनलाल और प्रकांड कांग्रेसी चौधरी रामनाथ के नाम विशिष्ट थे।

साहू साहब ने बहुत पहले से ही मास्टर चन्दूलाल को उसकी स्कूल की नौकरी से अलग करा दिया था। जिस मकान में उसके बाल-बच्चे थे, उसके मालिक-मकान चौधरी रामनाथ ही थे। अभी हाल ही में पुलिस से साजिश कर अपना मकान भी उससे खाली करवा लिया, और अब उस मकान में मटके की जुआबाज़ी होती है। ऊँची हवेली के साहू लोग और रामनाथ के सभी परिचित चौधरी लोग अब रात को उस घर में इकट्ठा होते हैं। पहले ख़ूब पिलाई होती है, फिर एक थान रेशमी कपड़े से मढ़ा हुआ मटका निकाला जाता है। उसमें एक से सौ तक नम्बर डाले जाते हैं। सब लोग एक-एक, चार-चार, छः-आठ नम्बर पर (एक नम्बर पर दस रुपये चिरागी) सौ-सौ के नोट रखते हैं। धीमर मुहल्ले से कोई नंग-धड़ंग लौंडा पकड़ा जाता है, उसकी भी आँखों पर पट्टी बँधती है, और वही मटके के अन्दर से नम्बर निकालता है।

मास्टर चन्दूलाल तब से गुलजारीलाल के घर में बिना किसी किराये-भाड़े के रहता है।

प्रिंसिपल मसुरियादीन ने चेतराम से बताया कि सूरज इण्टर प्रथम वर्ष बहुत अच्छे नम्बरों से पास हो गया है।

उसी शाम सूरज मास्टर चन्दूलाल के संग मुरादाबाद से लौटा; मास्टर चन्दूलाल पर एक हज़ार रुपये का जुरमाना हुआ था, पर 'धुआँ-धार' को सदा के लिए ज़ब्त कर लिया गया।

घर के रास्ते पर आता हुआ चेतराम सूरज से बोला, "चलो आज से तुम घर में रहो बेटा!......वह जो गोरेमल ने पुलिस दफ़्तर में मुझसे काग़ज़ भिजवाया था न, उसको मैंने नज़राना देकर वापस ले

लिया और उसमें दियासलाई लगा दी है।"

"तो क्या हुआ, गोरेमल तो है न!"

"और मैं?"

"तुम्हारी कोई सत्ता नहीं बाबू," सूरज ने कहा। "गोरेमल ने अपनी सत्ता से हमारे घर को छा लिया है, और उसकी माया हममें से एक-एक पर अपनी उँगली रखे हुए है। तुम तो उसके पाँव तले हो।"

"इन बातों से तुम्हें क्या मतलब!" चेतराम छेदामल के अहाते के पास रुक गया, "तुम नाहक इतना सोचते हो! होगा ससुरा गोरेमल अपने घर का होगा; वह जियेगा ही कितने दिन! ब्लड प्रेशर तो है उसको, जभी हारट फेल हो जाय तभी! आख़िर सब तुम्हीं को तो मिलेगा, और कौन पायेगा। बस, चार दिन चुप लगा जाओ, बस! दुधारू गाय की चार लात भली है कि······।"

सूरज कुछ बोला नहीं, चुपचाप जियालाल के आज़ाद रेस्टोरेण्ट में चला गया। पर क्षण ही भर बाद चेतराम की आवाज़ आई, "सुनो जी जियालाल! यह लो पचास रुपये, सूरज के नाम से जमा कर लो, पर ख़बरदार, बहुत चाय मत दीजो, दूध दीजो, दूध। चोथेलाल से कह दिया है, मिठाई, नमकीन, पूरी वहीं से मँगा लिया करना, हाँ!"

"अच्छा जी, लालाजी।"

चेतराम के मुड़ते ही जियालाल ने उस दिन के अंग्रेजी-हिन्दी दोनों अख़बारों को एक में समेटा और बड़े अभिनय से बोलना शुरू किया, "भइयो और बहनो तथा विमला की अम्मा! आप लोग सब, पढ़े-लिखे लोग सब, आजकल अख़बारों में सहज ये समाचार पढ़ रहे होंगे कि जिना साहब पाकिस्तान बना रहे हैं और अंगरेज उनकी मदद कर रहे हैं। जिना साहब इस 'वार' को 'सपोर्ट' कर रहे हैं। डिफेन्स ऑफ़ इण्डिया रूलस जोरों पर हैं; वन्देमातरम् पर 'बैन' लगा। भारत के लीडरान जेल में हैं, गांधीजी फिर आगाख़ाँ पैलेस में 'फास्ट' करने की सोच रहे हैं। और उधर चर्चिल, एमरी, लिनलिथगो क्या

बयान दे रहे हैं ! अरे मारो गोली !" हँसते-हँसते जियालाल ने अख़-बारों को सूरज के सामने फेंक दिया, और स्वयं दौड़ा गया चौथेलाल के यहाँ—ताज़ी-ताज़ी पूरियाँ, मिठाई-सब्जी लेकर आया। सूरज के सामने सजाकर बिलकुल पास बैठ गया, "अब सुनो मेरे अखबार की खबरें, उम्दा और सही न हों तो जियालाल का सिर चाक !....हनुमान वाटिका के पास वाले मैदान में जो घूमने वाला सनीमा टाकीज़ आया है न, वह सैयाँमल का व्यापार है और जनरल मैनेजर हैं चन्दनगुरु। वहाँ लड़कियाँ फँसाने का अड्डा तैयार हो रहा है। अब सुनो दूसरी खबर। छेदामल और बसंता ने जो सुग्गा पाल रखा था न, उसे रम्मन ने मरवा दिया। जानते हो क्यों ? वह रम्मन की चुगली करता था। रम्मन ने साहू चेयरमैन साहब की स्वर्णलता को बिलकुल फाँस लिया। तीन हज़ार खर्च कर दिया उसने। क्या माल है बाप रे बाप ! मैंने तो एक बार बरेली स्टेशन पर देखा था, माँ के साथ लखनऊ से आ रही थी। बाप रे बाप, ज़िन्दा तिलस्मात है ज़िन्दा—इत्ती बड़ी-बड़ी आँखें, ये-ये हैं मुग़लों की फौज ! हाय-हाय ! ये रम्मन बाबू भी क्या है कि जैसे इन्दर।"

"तुम्हें दुख है कि खुशी ?" सूरज ने पूछा।

जियालाल ने बिलकुल फिल्मी गाने की तर्ज में कहा, "मेरा तन-मन मगन, मेरा जी भी मगन, मेरे प्राणों में छायी बहार, ओ मोरे राजा !"

दूध में शक्कर मिलाता हुआ बिलकुल दूसरे अन्दाज में बोला, गम्भीरता से, "सूरज बाबू ! मेरे लीडराने वतन, सुनो, मेरे भी मन में आ रहा है कि मैं भी बन्द कर दूँ यह दुकान और ब्लैक करूँ।"

"ब्लैक ! तुम किसकी ब्लैक करोगे ?" सूरज ने पूछा।

"अजी ब्लैक की भी कोई गिनती है या सीमा है," जियालाल का चेहरा तमतमा आया। "फर्ज करो कि मेरे पास कोई मेटीरियल नहीं है ब्लैक के लिए, न कोई पूँजी या मूलधन ही है, फिर भी कोई बात नहीं। तब मैं ज़ज़बानी ब्लैक करूँगा। अपने सत्य को ब्लैक में

बेचूँगा, अपने झूठ का ब्लैक करूँगा। और इससे भी बड़ा बिज़नेस, झूठ और सच का एडलटरेशन (मिलावट) करूँगा। मेरे पास गल्ला नहीं है तो क्या, मेरे पास घी-तेल का व्यापार नहीं है तो क्या?"

सूरज अपनी कातरता में जियालाल का मुँह देखता रहा। फिर जियालाल की बाँह पकड़कर उसने अपने पास बिठा लिया, "तुम ऐसा नहीं करोगे जियालाल!"

"क्यों? क्यों न करूँगा? आखिर क्यों न करूँ, मैंने ही ईमानदारी का कोई ठेका ले रखा है क्या?"

"तुम कभी ब्लैक नहीं करोगे, क्योंकि तुम्हारे पास मन है। पता है तुम्हें बंगाल में भयानक अकाल पड़ा है।"

"मन तो है, पर तराजू कहाँ है," जियालाल उठकर बोलने लगा। "वह जो धर्म का काँटा बोला जाता था न, और वे जो धर्म के बाट थे, वे सब भी तो टूट गए! लेने के लिए काँटा-बाट और बेचने के लिए काँटा-बाट और फिर बंगाल में ही अकाल क्यों चारों ओर अकाल पड़ जायगा।"

"यह अकाल अंग्रेजों ने डलवाया है।"

उसी समय सामने से अर्द्धविक्षिप्त दशा में गुलजारीलाल दिखाई दिये। धोती के अलावा, तन का सारा कपड़ा तार-तार कर डाला था। सर से जैसे तेल चू रहा था। सिर के बाल तथा मूँछ-दाढ़ी से जैसे पागलपन बरस रहा था। गले में नये-पुराने सिक्कों के तीन-तीन हार पहने हुए थे—पहला हार सबसे बड़ा था, उसमें नये छोटे रुपये, अठन्नी, एक और दो रुपये के नोट तार में बिंधे थे; दूसरा हार पहले से छोटा था, उसमें एडवर्ड सप्तम के वज़नी चमकदार रुपये और अठन्नियाँ गुँथी थीं; तीसरा हार और भी छोटा था, उसमें विक्टोरिया के बड़े-बड़े विशुद्ध चाँदी के रुपये और अठन्नियाँ भरी थीं।

ठीक उसी समय एक ही साइकिल पर जगनू और रजुआ दिखाई पड़े। चुपके से सूरज के सामने 'लंकादहन' की एक कापी फेंककर वे

चम्पत हो गए।

'लंकादहन' के मुखपृष्ठ पर प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का फोटो निकला था, और मोटे टाइप में ख़बर छपी थी, "प्रोफेसर दयाराम शास्त्री सरकार से माफी माँगकर जेल से रिहा। लखनऊ में सरकार की ओर से उन्हें कोई नौकरी भी मिली है; अब वे 'देश समाचार' के सम्पादन विभाग में कार्य करेंगे।"

सम्पादकीय पृष्ठ के साथ वाले पेज पर मिठाईलाल वार्ष्णेय का चित्र निकला था, 'झँडावीर' नाम दिया गया था। और मिठाईलाल के पैर के बारे में ख़बर छपी थी कि, 'वीर सेनानी श्री मिठाईलाल द्वादशश्रेणी के पैर का प्लास्टर हटाया गया, पैर में अब कोई दर्द न रहा, पर हड्डी में दरार आ जाने के कारण वह वीर एक पैर का लँगड़ा हो गया—साहू गुरचरन लाल मुर्दाबाद! साहू समाज मुर्दाबाद। अंग्रेजी हुकूमत का नाश हो! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

शेष अखबार में चोर बाज़ारी के विविध विवरण और 'एडलटरेशन' की खबरें छपी थीं।

दिसम्बर के अन्तिम दिन थे और उत्तर दिशा की बड़ी ठंडी हवा लोट-लोटकर बह रही थी। नियम और स्वभाव के अनुसार रूपाबहू साढ़े सात बजे ठाकुरद्वारे में पूजन हेतु जाती और अर्चना-पूजा तथा ठाकुरजी की आरती के बाद आठ बजे तक अपने घर लौट आती थी।

आज रात के दस बजने वाले थे। रूपाबहू ठाकुरद्वारे की देहरी पर अजीब बावरे ढङ्ग से बैठी हुई, दायें घुटने पर मुँह टिकाये राजू पण्डित की ओर देख रही थी। राजू पण्डित जैसे गा-गाकर समझा रहे थे, "हम और तुम क्या हैं? यह सारा दृश्यमान जगत् क्या है? लीला है लीला! उस त्रिभुवन नाथ लीलापति कृष्ण भगवान् की! इसलिए हम-तुम जो करते हैं, जो किया है, या जो भविष्य में करेंगे, वह सत्य नहीं

है, वह महज़ लीला है लीला। उस महालीलापति के हम कठपुतले हैं। पर हम उसके सच्चे भक्त हैं। अतएव उसने हम पर कृपा करी, जिसको अहिरि मार्ग कहते हैं, इसलिए हमारे द्वारा उसने एक लीला करी। और समझो कि उसी लीला के बीच उसने हमें अपना दर्शन दिया। क्योंकि, लीला ही भगवान् है—और यह लीला परम भक्ति, ईश्वर की परम कृपा के फल से ही घटायमान होती है—देखो न कृष्ण और राधा की महालीला—

"बैठे युगुल रंग रस भीने, आलस युत अंगन भुज दीने।
लटपटि पाग रसमयी भौहें, कुण्डल झलक कपोलन सोहें।
आलस नैन सुरति रस पागे, नंदनन्दन पिय सँग निशि जागे।
टूटे हार मरगजी सारी, नखशिख सुन्दर पिय अरु प्यारी।"

पर सत्य में क्या है, महज़ माया, केवल लीला—कहा जो है भगवान् ने अपने मुख से—

अति विचित्र नँदलाल की, लीला ललित रसाल।
जो सुख दुर्लभ शिवसनक, सो विलसत व्रजबाल॥

"जो दृश्यमान है, वह सत्य नहीं, लीला है! क्या है लीला?"

रूपाबहू जैसे विक्षिप्तावस्था में उठी, अपने गिरे आँचल को सम्भालने की जैसे उसे सुधि न रही, घायल सर्पिणी की तरह वह राजू पंडित पर टूटी, उसके मुँह को बुरी तरह नोच बैठी और सामने की खुली पोथी को चीथने लगी, "कहाँ है वह लीला? कहाँ है वह लीला? ले खा ले मुझे! जिन्दा खा ले! खत्म कर डाल सारी लीला! कुछ सत्य नहीं तेरे लिए, सब लीला···लीला···!"

और एक बेहद आर्त स्वर में चीख़कर वह लड़खड़ाती हुई वहीं फ़र्श पर गिरी और बेहोश हो गई। राजू पंडित भागकर ठाकुर जी की मूर्ति के पीछे चिपक गए—भयातुर छिपकली की तरह, जिसकी किसी ने दुम काट दी हो।

रूपाबहू की चीख़ती हुई आवाज़ को मधू बुआ ने भी सुना और

सन्तोष ने भी। दोनों बेतहाशा दौड़ी हुई आईं और बेहोश रूपाबहू से लिपट गईं।

चेतराम घर में न था। दुकान पर भी उसकी कोई खबर न थी। रूपाबहू को देखने के लिए डाक्टर बंगाली बाबू आये। उन्होंने दवा दी और रूपाबहू के सिरहाने बैठे रहे।

कुछ क्षण बाद वह मुस्कराकर बोले, "बहू अच्छा हो गया अब। होश में आ गया। पर बाबा, इससे कोई बोलना-चालना नहीं। इसको रेस्ट लेने दो। खूब रकोम से नींद माँगता है। खूप स्लीप देइब इसे।"

रूपाबहू अपने कमरे में, शेष सब आँगन में। एकाएक रूपाबहू चीख पड़ी। मधू बुआ और सन्तोष के पकड़ने पर भी वह आँगन में आ गिरी। कुछ देर कराहती रही, फिर चुप हो गई।

चेतराम लौटा तो रूपा को देखते ही भय खा गया। बुआ की गोद में वह औंधी पड़ी थी, सन्तोष सिर गाड़े बैठी थी। गौरी बेटी सामने खड़ी निःशब्द रो रही थी। चेतराम ने बहुत धीरे से पहले मधू को पुकारा, फिर सन्तोष को और अन्त में रूपाबहू को। पर सब चुप थे।

चेतराम ने तब कड़ी अधीरता से रूपा का नाम लेकर पुकारा; दो बार नहीं, तीन बार, चार बार। रूपाबहू एकाएक तड़पी और अपने मुख को उसी तरह आँचल में बाँधे इतने आक्रामक ढंग से वह चेतराम पर टूटी कि लगा सब बिखर जायगा, एक-एक रेशा टूट जायगा—दोनों का; एक ही के हाथ दोनों का।

सब तरह से हारकर जब चेतराम ने रूपा के दायें हाथ को मज़-बूती से थामना चाहा, तो उस क्षण तक बहू बेहोश हो चली। तार-तार हुए कपड़े, फर्श पर टूटी चूड़ियाँ, आँसू, खून के धब्बे, नुचे हुए बाल और सबके ऊपर एक भयानक सन्नाटा। और इसके बीच में निर्वस्त्र-सी बेहोश रूपाबहू, बल्कि उसकी क्लांत छायामात्र। चेतराम के मुख और छाती पर कई जगह नाखून के घाव हो गए थे नाक में से खून बह रहा था। सन्तोष और मधू बुआ ने चेतराम को सारी

घटना बता दी—अर्थात् वह सब जो बाह्य था, जो घटना थी, जो कथा थी।

इस बार कुछ ही क्षण बाद बेहोशी चली गई। रूपावहू कराहती हुई अपने-आप उठी और दीवार के सहारे धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गई। पर उसका कराहना, दीवार का सहारा लेकर चलना और वे अथाह आँखें—सूनी-सूनी, उदास, अर्थहीन—जैसे रूपावहू न जाने कब से किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो।

बस्ती के श्मशान बाग में एक औघड़ बाबा आया था। बड़े-बड़े यन्त्र और सिद्धियाँ थीं उसके पास। एक दिन बस्ती में आकर उसने न जाने क्या बजाया और मुँह से आवाज़ की, आस-पास के साँप उसके पास चले आये। उसने साँपों को पकड़कर उनकी ज़बान खींच ली, और बस्ती से भाग निकला। बसन्ता ने जाकर भभूत ली थी। नारायणदास ने अपने पिता गुलजारीलाल के लिए मन्त्र फुँकवाया था। चन्दनगुरु ने उससे एक अँगूठी ली थी—लोहे की, नागिन की आकृति वाली।

एक दिन आधी रात के समय चेतराम श्मशान बाग में गया। औघड़ बाबा के पैरों पर गिर पड़ा और आर्त स्वर में बोला, "मेरी स्त्री है, पता नहीं उसे क्या हो गया है, रह-रहकर बेहोश हो जाती है, मुझे तो देखकर क्रोध से पागल हो जाती है। कुछ खाती-पीती नहीं, नींद भी बहुत कम आती है। ठाकुर जी की बड़ी पक्की पुजारिन थी। घर में भगवान् की अनेक मूर्तियाँ सजा रखी थीं—दोनों वक्त पूजा-अर्चना करती थी। एकाएक उसे पता नहीं क्या हो गया, उसने भगवान् की मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला। किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती। मुझे तो वह बिलकुल देखना ही नहीं चाहती। सब डाक्टरों को दिखाया, हकीम-वैद्य भी देख गए, पर वह तो किसी तरह भी दवा

ही नहीं खाली।"

औघड़ बाबा चुपचाप सुनता रहा, एकाएक बड़े ऊँचे स्वर में हँसा, और चिमटा बजाता उठ खड़ा हुआ। चेतराम के घर में आकर उसने पूछा, "कहाँ है वह देवी, मुझे उसके पास ले चलो और सब लोग दूर हट जाओ।"

रूपाबहू अपने कमरे में मूर्तिवत् खड़ी थी, जैसे काठ मारी हुई। औघड़ बाबा को उसने आग्नेय दृष्टि से देखा; तभी बाबा ने अपना चिमटा नचाकर रूपा की पीठ पर इतनी ज़ोर से मारा कि वह तत्काल गिर पड़ी। पर वह बेहोश न हुई। उसने बढ़कर औघड़ बाबा के पाँव पकड़ लिये—श्रद्धानत हो गई उन चरणों पर। फिर औघड़ बाबा ने दूसरा चिमटा मारा, तीसरा, फिर चौथा और पाँचवाँ। चेतराम आँगन में खड़ा रोता रहा, हर चिमटे के प्रहार से वह कराह उठता और औघड़ बाबा को पकड़ने दौड़ता।

खिड़की से उसने देखा, बहू औघड़ बाबा के चरणों में बिछी हुई है, आँखें ऊपर उठी हैं, और वह श्रद्धा से कह रही है, "और मारो बाबा, काट दो मेरी पीठ, मैं भूखी हूँ इस मार की। मुझे यातना दो बाबा, मैं शरण हूँ!"

"जा अब सुखी रह! पर ख़बरदार जो अब कभी उस पथ पर गई। तेरे सिर की पिशाचिनी को मैं अपनी मुट्ठी में लिये जा रहा हूँ। अब कभी मत याद करना इसे। तू अपनी जवानी को भूल जा, अपने रूप को भूल जा। समझ कि तू श्मशान की राख है, मुर्दा है।"

यह कहकर औघड़ बाबा तीर की भाँति उस घर में से निकला और जैसे एक ही साँस में वह बस्ती पार कर लेगा। पीछे-पीछे रूपा-बहू दौड़ी, दौड़ती गई, जैसे प्यास पानी के पीछे दौड़ रही हो।

बस्ती को पार करते-करते औघड़ बाबा ने घूमकर देखा और रूपाबहू को बड़े क्रोध से डाँटा। पर रूपाबहू फिर चरणों पर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर बोली, "मुझे किसी सर्प से कटा दो बाबा, मैं मर

जाऊँ। मैं अब जीना नहीं चाहती। मुझे अपने चिमटे से टुकड़े-टुकड़े कर दो। मैं सचमुच चिता की राख होना चाहती हूँ।"

रूपाबहू आँचल फैलाकर बैठी रही और फफक-फफककर रोती रही। औघड़बाबा ने झुककर ज़मीन से मिट्टी उठाई, थोड़ी-सी मिट्टी रूपा के आँचल में बाँध दी, और शेष उसके माथे पर लगाते हुए कहा, "जा निर्भय रह!"

"अपने से भी?" बहू ने भरे कण्ठ से पूछा।

"इसके आगे मैं कुछ नहीं कह सकता। अब लौट जा अपने घर, मेरी आज्ञा है!"

मन्त्रमुग्ध-सी रूपा अपने रास्ते पर मुड़ी, फिर रुक गई, और अत्यन्त कोमल स्वर में बोली, "बाबा, ऐसा लगता है कि आपकी बोली मैंने कहीं और भी सुनी है, बहुत-बहुत पहले मैंने ज़रूर कहीं आपको देखा है। सुधि आ रही है मुझे।"

औघड़ बाबा अपनी तेजी में चला गया और रूपा उसी दिशा में देखती रह गई। ज्यों-ज्यों वह अपने घर के समीप पहुँचती जा रही थी, त्यों-त्यों उसके सारे शरीर में इतना दर्द बढ़ता जा रहा था कि वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठती जा रही थी। घर के पास वाले चौराहे पर वह बैठी ही थी कि मधू बुआ और सन्तोष ने बढ़कर उसे बाहुओं से थाम लिया। वह रो रही थी—शिशुवत, निष्कपट।

चेतराम एक शाम सूरज से मिला। रूपाबहू की स्थिति बताते हुए बोला, "वह मुझे देखते ही जैसे बीमार हो जाती है। मैं तो स्वयं उसके सामने नहीं पड़ता। वह अच्छी हो गई है। अब तुम घर चलो सूरज। तुम्हें घर में पाकर उसका मन हरा हो जायगा। भर जायगी वह।"

यह कहते-कहते चेतराम का कण्ठ रुँध-सा गया। सूरज कभी पिता की ऐसी स्थिति का सामना नहीं कर सकता था। वह बिना कुछ बोले यन्त्रवत चेतराम के संग अपने घर में आया। उस क्षण घर में बुआ के

संग सन्तोष भी थी।

ज्योंही सब-के-सब आँगन में आये उसी समय रूपाबहू अपने कमरे से चौके में जा रही थी। हाथ में थाली लिये थी। उसकी दृष्टि सूरज और चेतराम पर एक साथ पड़ी।

एक क्षण तो वह न जाने कैसे बँधी खड़ी रही, दूसरे ही क्षण वह लड़खड़ाकर जैसे भगाने को हुई, और चौखट से टकराकर गिरने लगी। सूरज ने उसे थाम लिया। रूपा माँ बेहोश थी।

बेहद चिन्तित और अधीर चेतराम औघड़ बाबा से मिलने श्मशान मार्ग के लिए रवाना हुआ। बाबा का वहाँ कोई पता न था। चेतराम की अधीरता बढ़ती गई। वह बस्ती में आया और औघड़ बाबा की खोज में फिरने लगा। महाजन टोला की एक गली में जगनू मिला—कन्धे पर सीढ़ी और दोनों हाथों में म्युनिसिपैल्टी के लालटेन लिये हुए।

उसने चेतराम को खबर दी, "सेठलाला! वो औघड़ तो बड़ो शेर निकलो। जे रम्मन और सैयांमल हैं न! औघड़ बाबा से दोनों सौ-सौ के नोट बनवा रहे थे। कुल बीस हज़ार रुपये गाँठ ले गया वो।"

"नोट, औघड़ बाबा से नोट बनवा रहे थे?" चेतराम हतप्रभ था।

"हाँ जी लाला! औघड़ बाबा सौ रुपये के एक नोट से जाने किस मसाले और मन्तर से दस नम्बरी नोट बना देता था।"

"तो औघड़ बाबा चले गये? अब नहीं मिलेंगे क्या?"

"अब कहाँ मिलेंगे लाला! वह तो बहुत ऊँचे दर्जे के चार सौ बीस थे। अब वह क्यों दिखाई पड़ेगा?"

यह कहकर जगनू बहुत खुलकर हँसा और मोड़ के लैम्प पोस्ट में लालटेन रखने लगा।

चेतराम चौक में आया। रम्मन-सैयांमल और औघड़ बाबा की चर्चा चारों ओर फैल रही थी। पर उस चर्चा में भी वह औघड़ बाबा को ढूँढ़ रहा था। अन्त में वह रम्मन के घर गया। छेदामल और

बसन्ता फूट-फूटकर रो रहे थे। रम्मन सिर झुकाये चुपचाप बैठा था। रम्मन का बारह हज़ार गया था और सैयांमल का आठ हज़ार।

चेतराम बड़ी देर तक उन सबके बीच बैठा रहा। रम्मन को समझाते हुए वह बोला, "इस तरह कहीं धीरज गँवाया जाता है। अरे, जब तुमने गँवाया है तो तुम कमाओगे भी न। अभी तो समय है बारह हज़ार पैदा करने में कित्ती देर !"

रम्मन से बातें करता हुआ चेतराम अपनी गद्दी पर चला आया। नोट बनाने से लेकर औघड़ बाबा के भागने तक की बात को वह बड़ी बेचैनी से सुन गया।

रम्मन जब घर जाने को हुआ, चेतराम ने उसे दो हज़ार नक़द देते हुए कहा, "लो घबड़ाओ नहीं बेटा, फिर से व्यापार करो—लेकिन ईमानदारी का व्यापार करो, भगवान् से डरकर और उस परलोक को सोचकर। कुछ रखा नहीं है इस दुनिया में, सब हाथ का फेर है, अन्त में सब बेकार है।"

५

मिठाईलाल के घर दो बिल्लियाँ—एक सफेद और एक काली—इधर पिछले एक वर्ष से पली थीं—चूहों से घर और दुकान की रखवाली के लिए।

उस रात किसी कारणवश उन दोनों में लड़ाई हो गई। भीतर से लड़ती-लड़ती दोनों बाहर मैदान में चली आईं—सूरज के पलँग के पास। रात के एक बजे का समय, सूरज को नींद आई थी, बल्कि नहीं आ रही थी। दोनों बिल्लियों में सफेद बिल्ली कुछ कमज़ोर पड़ रही थी, लेकिन लड़ने के लिए धमकी, फूँत्कार और गुर्राहट में वह भी पीछे न थी।

सूरज उन्हें अनायास ही देख रहा था। एकाएक काली बिल्ली क्रोध से चीखकर सफेद पर टूट पड़ी और परस्पर युद्ध में दोनों गुँथ-सी गईं। सूरज को लगा, सफेद बिल्ली हारकर भी मुक्ति नहीं पा सकेगी। वह उठा और उसे बचाकर अपने पलँग पर ले आया। वह बेतरह काँप रही थी—प्यारी मासूम! सूरज उसे अपने गाल से चिपकाये लेटा रहा। कुछ देर के बाद, सम्भवतः बिल्ली को अनुभव हुआ कि सूरज सो गया, फिर वह धीरे से खिसककर उसके पाँव से लिपटकर बैठ गई।

सूरज का मन एक विचित्र आह्लाद से भर आया। उसकी आँखें डूब गईं।

कुछ क्षण बाद उसे लगा, वह सफेद बिल्ली सन्तोष है। सूरज ने तत्काल उसे अपनी आँखों पर रख लिया, उसे चूमने लगा।

गाल पर बिल्ली का मुख और आँखों में सन्तोष की छवि—मधुर, स्निग्ध और लालसापूर्ण। सन्तोष···सन्तोष!

रूपाबहू···रूपा माँ···माँ! बीमार माँ!

चेतराम···पिताजी···बाबू मेरा···सुहृदय, उदार और ग़रीब बेचारा। और सूरज···बुआ का दुलारा···सन्तोष का स्नेही···फूफाजी का क्रान्तिकारी···ईशरी फूफा का लाडला···बस्ती का नेता···युवक संघ का वीर सेनानी···नेता···राष्ट्र-सेवा, स्वतन्त्रता-संग्राम का सैनिक आटोग्राफ़ देने वाला सूरज···मालाएँ पहनने वाला, उद्बोधन के भाषण देने वाला सूरज···अभिनन्दन पत्र पाने वाला···जै-जैकार पाने वाला सूरज···पर···लेकिन···यह क्या? घर से निर्वासित, उपेक्षित··· माँ···शिशु···हाँ उपेक्षित! पिता चेतराम···गोरेमल, नानाजी··· करोड़पती···सूरज मूलधन···बस्ती का मूलधन। पर माँ बीमार··· बुआ ग़रीब···बाबूजी, चेतराम, ऐसा क्यों? कुछ नहीं! देश-हित के सामने सबका बलिदान। सब सुख त्याग। स्वतन्त्रता-संग्राम! राष्ट्र-सेवा! स्वराज्य। जै हिन्द···इन्कलाब ज़िन्दाबाद।

सूरज की आँखें कड़वाहट से भर आईं। लग रहा था, उनमें किसी ने कड़ुआ तेल डाल दिया है···। और आज का तेल···तेल में बालू के कण भी···और सरसों का तेल? नहीं अब शुद्ध कहाँ···? मिलावट···सर्वत्र मिलावट। एडलटरेशन! सरसों के तेल में मूँगफली, बिनौला। घी में चर्बी, तिल का तेल, नारियल गोले का तेल···मूँगफली का तेल। और बस्ती में डालडा की इतनी दुकानें। इतनी बिक्री? कौन खाता है इसे? डालडा इतना इसलिए नहीं बिकता कि लोग इसे खाते हैं, बल्कि इसलिए कि लोग इसे घी में मिलाते हैं! बी० टी० टेस्ट क्या है? उसमें भी जादू है। गेहूँ में, जौ में, दाल में, चावल में, न जाने किन-किन चीज़ों के बीज, सख़्त दाने, कंकड़, कुटे हुए रंग-बिरंगे पत्थर। आटे में, मैदा में, बेसन में, सूजी में लकड़ी के बुरादे। घीराम रोड, बड़ा दरवाज़ा, ऊँची हवेली, घीसिरा मुहल्ला, छेदामल का अहाता, उनकी गलियाँ, गोदाम, बैठक और ड्योढ़ियाँ और बिक्री के दरवाज़े सूरज के सामने घूमते रहे। और उनमें से एक अद्भुत कोलाहल और चीख़ उभर रही थी। सूरज ने तकिये के दोनों सिरों से अपने कान भींच लिये। आँखें मूद लीं। पर आँखों में भी आँख होती है। जैसे वह कभी बन्द नहीं होती, वह शायद मछली की आँख है। इन आँखों में धर्म के काँटे झूलने लगे। बाट दिखाई पड़े—खरीदने के बाट और, बेचने के और। सही बही, नकली बही। बनिया मुकदमा नहीं करेगा, सब सह लेगा, जुरमाना, नज़राना, घूस, 'वार' के चन्दे, डिस्ट्रिक्ट सप्लाई अफ़सर, डिप्टी रिजनल फूड कण्ट्रोलर को डालियाँ। अपने-अपने फ़र्मों में साहूकार साझा कर लेगा सप्लाई अफ़सर से, फूड कण्ट्रोलर से, इन्सपेक्टर से, पर वह चूँ नहीं करेगा, विरोध नहीं करेगा। यह उसका धर्म नहीं है। उसके धर्म में है सीमेंट, लोहा, तेल, कपड़ा, अनाज, चीनी, ईंट और नमक—'इनफ़्लेशन' और आदमी। नियन्त्रण और आदमी की भूख—गुप्त रखने की आदत, चोरी में सोचने और करने के संस्कार! राशनिंग, ब्लैक, कोटा,

परमिट और तिरंगा झण्डा···'इनफ़्लेशन'···मिलावट···आदमी में मिलावट···सच-झूठ की मिलावट, शुभ-अशुभ की मिलावट।

उसी क्षण सूरज के कानों में एक दूसरा स्वर भी गूँजा। महाजन टोला वाले कहते थे हम सब तरह की बेईमानी कर सकते हैं पर मिलावट की बेईमानी को हम गोमांस का पाप समझते हैं, लड़की के संग कुकर्म-जैसा मानते हैं।

सूरज को लगा, उसके गले से लिपटी हुई बिल्ली उसकी लड़की है जिसे काली बिल्ली काट खा रही थी। सफेद बिल्ली···काली बिल्ली···ब्लैक···ब्लैक···। सफेद और काले दो चूहे···। जैन मन्दिर में उसने कभी प्रवचन सुना था—आदमी, जिसे जंगल में एक सिंह पकड़ने दौड़ता है। आदमी भागता-भागता एक कुएँ में गिर पड़ता है और कुएँ में लटकी हुई किसी लतर को पकड़ टँग जाता है। ऊपर भूखा सिंह और नीचे कुएँ में एक भयावह सर्प, जो उसे डस लेने के लिए फुँफकार रहा है। और वह लतर जिसे थामे वह लटका है, उसे दो चूहे बड़ी तेज़ी से कुतर रहे हैं—एक चूहा सफेद और एक काला।

सूरज ने मारे भय के अपनी आँखें खोल दीं। उसे लगा, वही उस कुएँ में गिरा हुआ आदमी है। उसे कुछ नहीं सूझा, जैसे वह अन्धा हो गया। उसका सारा कण्ठ सूख गया। जिह्वा तालू से चिपकने लगी, जैसे वह गूँगा भी हो जायगा। वह चीख-पुकार भी नहीं सकता—नीचे सर्प, ऊपर सिंह, अवलम्ब को कुतरने वाले दो चूहे। एकाएक सूरज को उस कथा की भूली हुई बात याद आ गई। उसके खुले मुख में उसी लतर पर लगी हुई मधु के छत्ते से मधु की बूँदें टपक रही थीं।

फिर सूरज अपनी सहज स्थिति में आया। पर उसके दोनों कान बेतरह जल रहे थे। आँखें जैसे अब कभी नहीं बन्द होंगी; अब वह कभी सो न सकेगा।

सम्भवतः डेढ़-दो घण्टे तक सूरज अचेत-सा पड़ा रहा—निर्वीर्य,

निस्तेज। पलंग पर बैठी हुई बिल्ली नाक से खुर्र-खुर्र की आवाज़ करती हुई नीचे उतर गई।

फिर सूरज उठकर बैठ गया, तकिये के सहारे। वह जीवन में पहली बार इस तरह श्रद्धानत, विनीत स्वर से अनुभूतिमय होकर अपने-आप में कहने लगा, 'हे ईश्वर! सुबह हो जाय। भोर हो जाय। यह रात मुझे नींद नहीं देती।' और उसे लगा कि वह अकेला बस्ती की सड़कों पर चल रहा है, गलियों, मुहल्लों और दरवाज़ों को पार कर रहा है। उसके आगे-पीछे कुत्तों के झुण्ड भूँक रहे हैं; जैसे मंडी में कोई चोर घुस आया हो।

यह मंडी, यह बस्ती, यह सूरज की जन्म-भूमि! लोग कितनी बुरी जगह समझते हैं इसे। कोई गौरव नहीं, कोई यश नहीं, कोई सम्मान नहीं—आत्मसम्मान तक नहीं। बस, रुपया और व्यापार! यहाँ हर चीज़ को महज़ व्यापार की दृष्टि से देखना—म्युनिसिपेलिटी की चेयरमैनी से लेकर कांग्रेस की सदस्यता तक। यह सब क्या है? क्यों है? ये मंडी वाले अपने नगर का नाम बताने में क्यों झिझकते हैं? अपना परिचय सीना तानकर क्यों नहीं देते? सम्भवतः आज तक इस बस्ती में कोई महान् नहीं हुआ। बस्ती में कोई एक भी महान् हो जाय, तो अपने को बस्ती वाला कहलाने में इन्हें गौरव मिले। ये स्वयं अपनी नज़र में ऊँचे उठ जायँ। जो अपने को अपमानित, पतित, तुच्छ और बुरे समझते हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाय।

इस बस्ती में इतने मन्दिर, इतने शिवाले, इतनी गद्दियाँ, धर्म-अखाड़े और ठाकुरद्वारे हैं फिर भी इस बस्ती में प्रकाश क्यों नहीं है? बस्ती का आर्य समाज—महिला आर्य समाज, कुमार-सभा, यहाँ का सनातन धर्म, चौक में सनातन धर्म का इतना विशाल भवन, वैष्णव-समाज, कृष्ण समाज, राम समाज, जैन समाज, ये सब क्या हैं? इतनी शक्तियाँ मिलकर भी बस्ती के समाज को मुक्ति क्यों नहीं दे पातीं? क्रान्ति क्यों नहीं ला पातीं? इतनी शक्तिशाली कांग्रेस, हिन्दू महा-

सभा, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, किसान-मज़दूर प्रजा पार्टी और टेररिस्ट, ये सब क्या हैं ? क्यों हैं ? सूरज के मन में क्रमशः उत्तर उभरने लगे—सब परम्परा हैं, अन्धभक्ति हैं, अन्धश्रद्धा के समर्थक हैं, महज़ अनुगामी, बुद्धि-विवेक के दुश्मन। ये सब जो सोचते हैं, वे अपने-आप से नहीं सोचते न अपना ही सोचते हैं, सब दूसरे का है, सब इन पर लादा हुआ।

आओ इन सबसे आगे निकल भागें। अपना सोचें। जो हम हैं, पहले उसे सोचें—मैं और मेरा निजत्व और उसका सारा अस्तित्व; मैं और मेरी घर-गृहस्थी; मैं और मेरा घर; कांग्रेस और अंग्रेज़ी हुकूमत; ग़ुलामी और स्वतन्त्रता-संग्राम।

स्वतन्त्रता संग्राम !

स्वतन्त्रता क्या है ? जिसे मुक्ति कहते हैं क्या है ? जहाँ मेरे सम्पूर्ण व्यक्ति का सहज विकास हो।

मुक्ति के प्रश्न में सबसे पहले व्यक्ति है। फिर समाज, फिर राष्ट्र और राष्ट्र से परे ?

और संग्राम ?

दो विरोधी शक्तियों में संघर्ष—एक, जो ग़ुलाम है, दूसरी, जिसके हाथ में पहली की स्वतन्त्रता छिनी रखी है।

एक भारतवासी, दूसरा अंग्रेज़ !

एक सूरज, दूसरा गोरेमल !

सहसा भावलह सूरज के सामने से जैसे अन्धकार का कोई पर्दा हटने लगा। जो उसके प्राणों में सुलग रहा था, वह जैसे जल उठा, और उसके प्रकाश में वह दीप्त हो उठा—उसने साफ़-साफ़ देखना शुरू किया : रूपाबहू बन्दी भारतमाता, गोरेमल अंग्रेज़, सूरज और चेतराम भारतवासी।

और सूरज का विवेक खिल गया; आज़ादी की लड़ाई तो मेरे घर ही में छिड़ी है। मुझमें ही छिड़ी है, चेतराम में है, रूपा माँ में है,

सन्तोष में है, मधू बुआ में है। सब मुक्ति के युद्ध में ग्रस्त हैं। मैं अपने घर से निर्वासित हूं, पिता से त्यक्त, माँ से त्यक्त और उपेक्षित। गोरेमल मुझसे घृणा करता है।

अधिकार से भागना कायरता है, प्राप्य से निस्पृह रहना पलायन है। आत्म-स्थिति से वीतराग रहना मृत्यु है।

सूरज उठा। उसकी भुजाएँ फड़क रही थीं। आँखों में कुछ बरस आया था। एक विचित्र-सी अनुभूति उसके अन्तस् में बहुत गहरी उतरती चली जा रही थी।

सुबह हो रही थी। सूरज ने चाहा कि वह जाते-जाते मिठाईलाल को जगाये। पर वह रुक गया और बड़ी तेज़ी से अपने घर की ओर मुड़ा।

घीराम रोड पर उसकी पहली भेंट छेदामल से हुई। उसके हाथ में केवल एक बाजरे की रोटी और आगे-पीछे दस-बारह कुत्ते। सूरज को देखते ही छेदामल ने रोटी को कुत्तों के बीच फेंक दिया और भरे कण्ठ से बोला, "सब फुँक गओ बेटा, रम्मन ने दुकान उजाड़ दयी।"

"सब सुना है मैंने!" सूरज आगे बढ़ रहा था।

छेदामल ने कहा, "बारह हज़ार तो गओ ही बेटा, लेकिन रम्मन की दूसरी न सुनी होगी, वह परसों रात ही से घर से ग़ायब है।"

सूरज आगे बढ़ आया। घण्टाघर की सड़क पर पहुँचते-पहुँचते उसकी भेंट जगनू से हुई—बुझी हुई लालटेनें और कन्धे से सीढ़ी लटकाये हुए।

सूरज को देखते ही जैसे वह जी गया, "नमस्ते सूरज भैया! सब अच्छा है न! ...अरे, रम्मन बाबू की नहीं सुनी भैया, वह तो साहू साहब की स्वर्णलता को लेकर बम्बई भाग गए।"

जगनू से छूटकर सूरज आगे बढ़ा। उसे लगा, पीछे से किसी ने उससे जैहिन्द किया है। वह हड़बड़ाकर इधर-उधर देखने लगा। पर आगे-पीछे कोई न था। उसके भीतर एक विचित्र प्रकार का तनाव

खिंचने लगा और उसे साँस लेने में कठिनाई-सी होने लगी। वहीं खड़े-खड़े सूरज को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वह सैकड़ों नवयुवकों के बीच में घिरता जा रहा है। सिर पर तिरंगा, ओठों पर राष्ट्रीय गीत, क्रान्ति के गीत, भाषण, उद्बोधन, जैमाल, पुष्पाञ्जलि, जै-जैकार, इन्क़लाब ज़िन्दाबाद, आटोग्राफ़, त्याग, बलिदान, उत्सर्ग !

सब झूठ ! सब झूठ ! भ्रम ! धोखा ! पलायन ! पलायन··· कायरता !

सूरज बड़ी तेज़ी से गोपालन मुहल्ले में बढ़ता जा रहा था, लेकिन उसकी तनी हुई मुद्रा से ऐसा लग रहा था, जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसका पीछा कर रही हो और आवाज़ दे रही हो—'आज तक इस नगरी में कोई महान् नहीं हुआ। सब अन्धविश्वासी, अविवेकी, परम्परावादी, अनुगामी, हीनग्रन्थि-ग्रस्त, आत्म-सम्मानहीन, गौरव-हीन। यह सब महज़ इसलिए कि इस नगरी में अब तक कोई महान् नहीं हुआ। इस बस्ती में कोई एक भी महान् हो जाय तो अपने में ऊँचे उठ जायँ। जो अपने को अपमानित, पतित और बुरे समझते हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाय।

ओ सूरज !

ओ सूरज ! रुको तो !

सूरज से क्या तात्पर्य ? सूरज से मतलब जो प्रकाश दे, जो अपने को जलाकर दूसरों को प्रकाश दे।

चौराहे से अपने घर की चौड़ी सड़क तक आकर वह एकाएक रुक गया और घूमकर प्रीतमदास की गली में मुड़ गया।

सरजू सोनार का घर, उसका लड़का हीरालाल—मित्र हीरालाल, आगे वह ठाकुरद्वारा, वह सन्तोष का घर और वह अपने घर का पिछवाड़ा।

ठाकुरजी के मन्दिर में न जाने कैसे कहाँ से सन्तोष आई खड़ी थी—उदास चिंतित, जैसे न जाने कितनी रातों की जगी हुई और

रोई हुई। सूरज उस गली से भाग निकलने वाला था, पर सन्तोष को देखते ही वह रुक गया, जैसे वह अनायास कहीं बँध गया।

सन्तोष एकाएक जैसे रूठकर ठाकुरद्वारे की ओर बढ़ने लगी और उसने छिपकर देखा, सूरज उसी भाँति गली में खड़ा है। सन्तोष ने आज यह समझ लिया था कि सूरज उसके पास आया है। वह इस लिए मुँह छिपाए इधर-से-उधर घूमने लगी थी कि सूरज उसका पीछा करेगा; उसे आज पकड़ लेगा।

दूसरे ही क्षण, जब सन्तोष ने घूमकर फिर गली में देखा, सूरज वहाँ न था। सन्तोष उसी साँस से खिंची हुई गली में उतर गई। पूरी गली सूनी थी। वह दौड़ी हुई गली के एक सिरे से आगे तक देख आई, फिर उसी साँस में दूसरे सिरे तक गई, पर सूरज लापता था।

सन्तोष चुप रह गई—ठगी-सी। फिर सिसककर रो पड़ी। और सिर झुकाए वह ठाकुरद्वारे से अपने घर की ओर बढ़ने लगी। उसका मन हाहाकार कर रहा था—सूरज तुम अपने घर से निर्वासित हो और मैं अपने घर में ही निर्वासित हूँ। पिताजी मुझे देखकर न जाने क्यों क्रोध से भर जाते हैं। पहले तो ऐसा नहीं था। कितना मानते थे मुझे। माँ-पिता दोनों का सम्मिलित प्यार मुझे उनमें मिलता था। अब लगता है, वे मुझे अपने सामने देखना नहीं पसंद करते। आज कितने दिन हो गए पिताजी वृन्दावन चले गए, और अब तक नहीं लौटे। शायद अब वे लौटना ही नहीं चाहते, क्योंकि घर में मैं हूँ। सच सूरज, तुम एक बार तो आकर मुझे देख जाओ, मैं अब किस तरह इसी छोटे से घर में बन्द रहती हूँ। दादी ने खाट पकड़ ली है। अब आगे मैं इस जुलाई में पढ़ने भी नहीं जा सकूँगी। अब एफ० ए० क्या कर पाऊँगी, टैंथ क्लास ही तक पढ़ा था। गली-मुहल्ले में ही नहीं निकलती, यहाँ तक कि अब मैं तुम्हारे घर में भी नहीं जाती। तुम मिलते तो मैं तुमसे एक ऐसी बात कहती कि तुम हैरान रह जाते। हाय, कितनी अच्छी मधू बुआ हैं—महान् और तपस्वी। रूपा माँ कैसी हो जाती हैं! बड़ा

रोना आता है उन्हें देखकर। तुम इतने भावुक क्यों हो सूरज? यह बड़ी बुरी बात है। इससे मनुष्य कायर और अविवेकी हो जाता है। सत्य से, जीवन की स्थितियों से, पलायन करने लगता है। तुमने तो स्वयं मुझसे कहा था एक बार—'भावुकता मनुष्य को बहुत दूर नहीं ले जाती, बीच ही में छोड़ भागती है।' तुम तो मेरे पास आकर भी गली में से भाग निकले—डरपोक। तुम्हें तो मैं बधाई देने को तरस रही हूँ—इंटरमीडियेट फर्स्ट क्लास में पास हुए।

तब तक सूरज उसके पास आ खड़ा हुआ था। आह्लाद से खिंचा हुआ सन्तोष के कान में जैसे कुछ कहने लगा। सन्तोष की मुद्रा तब भी न भंग हुई। एकाएक सूरज ने अपनी बाहुओं में उसे इतने आवेश से कस लिया कि सन्तोष का आँसू-भरा मुख उसके कन्धे पर आ गिरा।

ठाकुरद्वारे में आरती के शंख बज उठे; घण्टी-घड़ियाल के संगीत से सारा वातावरण भर उठा। उस देहरी पर जैसे असंख्य दीप जल उठे, जहाँ न जाने कितने क्षणों तक सूरज और सन्तोष एक-दूसरे के बाहुओं में, नयनों में परिरम्भन में समर्पित होते रहे।

सन्तोष को जैसे एकाएक होश हो गया। सुध में आकर वह सिर झुकाए घर में भागी। सूरज उसी स्थान पर खड़ा रहा—दायें हाथ से किवाड़ थामे और बाँह पर माथा टिकाए। सूरज की आँखों में जैसे बड़े-बड़े लाल-लाल बादलों के पहाड़ उभर आये हों और वह बेसुध-सा किवाड़ के सहारे टिका रहा। आँगन के बरामदे तक पहुँचते-पहुँचते सन्तोष भी जैसे बेसुध होने लगी। उसके प्राणों में जैसे युगों का सोया हुआ संगीत, सब एक ही बार में बज उठा हो। सारी नसों में जैसे इन्द्रधनुष खिंच गए हों। अंग-अंग पर मेंहदी, दूबअक्षत, कुमकुम आलता, अंगराग और सिंदूर रच गए हों। घर-आँगन में ढोल-मंजीर बज उठे हों। सखियाँ मंगल गाने लगी हों। द्वार पर शहनाई बज उठी हो। आँखों में कजरारे बादल झुक आए, जिनमें उसकी नसों के इन्द्र-धनुष धीरे-धीरे बहकर आ टिके। आज धनुष-यज्ञ है। आज उस धनुष

को सूरज ने उठा लिया।

संतोष लाज से झुकी-झुकी, मुँह में आँचल दबाए देहरी के पास बढ़ने लगी, जैसे वह सूरज के गले में जयमाल डालने बढ़ी हो।

सूरज ने आहट पाते ही दौड़कर सन्तोष को अपनी बाहुओं में उठाना चाहा, तभी दादी की पुकार आई।

सन्तोष बुरी तरह से काँप रही थी।

उत्तर में सूरज को बोलना पड़ा, "आया दादी!"

और उसी साँस में वह दादी के पास पहुँच गया। "कौन! सूरज है क्या रे?" दादी ने लड़खड़ाते स्वरों में कहा, "सन्तोष कहाँ है?"

"है तो दादी! वह आ रही है! बोलो, क्या चाहिए दादी, मैं ला दूँ।"

मुँह धोकर सन्तोष लौटी, पर उसके बाल अब भी बिखरे थे, कनपटियों से उसकी घुँघराली अलकें बिलकुल आँखों पर बह रही थीं। आँखों में पानी के इतने छींटे दिये गए थे, फिर भी वे आँखें सहज नहीं हो सकी थीं—पूर्णतः भरी-भरी थीं, छलकती हुईं; सावन की काली घटाएँ जैसे अब भी उनमें घिरी हों।

सन्तोष ने दादी को औषधि खिलाकर पानी पिलाया, और खिसककर फिर बरामदे में जा बैठी—उसी अबाध मन से, मुद्रा से, मान से।

सूरज पास गया। बहुत धीरे से बोला, "बताओ मैं कौन हूँ?"

"बेवकूफ...उल्लू...कायर...। नहीं...नहीं...नहीं...।"

आवेग से छलछलाती हुई वह सूरज के अंक में बिछ गई, "अब कायर नहीं...वीर...बहादुर! जब तुम गली से एकाएक भाग गए थे तब मैंने तुम्हें यही कहा था; तुम्हें एक गाली और भी मैंने दी थी—भावुक। अब क्षमा माँग रही हूँ। मुझे याद है, तुमने एक बार अपने कबूतरों को मार भगाया था न! समझो उन्हीं कबूतरों में से एक मैं भी हूँ, जिसे तुम कभी नहीं भगा सके। कभी नहीं भगाओगे।"

सूरज चुप था।

"तुमसे मुझे बहुत बातें करनी हैं। कहाँ से शुरू करूँ, समझ नहीं पा रही हूँ।"

"अपने पास से शुरू करो।"

"मेरे पास केवल तुम! केवल तुम! केवल तुम्हारा स्नेह! तुम! और जानते भी हो, तुम क्या जानोगे, तुम तो इधर-उधर फिरते रहते हो, अकेले निर्वासित बनकर। मैं भी तो हूँ, मुझे क्यों नहीं संग ले लेते। पिताजी वृन्दावन चले गए। गली-मुहल्ले की औरतें हमारा-तुम्हारा नाम जोड़ती हैं। कहती हैं तुम इसलिए ऐसे हो कि···।" सहसा सन्तोष के मुख पर एक अनुपम छवि बरस गई। वह चुप होकर अलग हट गई।

"तुम टैंथ क्लास फ़र्स्ट क्लास में पास हुईं।"

"तो क्या हो गया इससे? एफ० ए० थोड़े ही पढ़ने पाऊँगी? पिताजी मुझसे एकाएक बहुत नाराज़ रहने लगे हैं।"

"मैं बता दूँ क्यों," सूरज ने कहा, "तुम ब्याहने योग्य हो गईं इसलिए।"

दोनों हँसते रहे।

एकाएक सन्तोष उदास हो गई, "एक बात सुनी है। तुम अपने घर क्यों नहीं जाते? कैसे आदमी हो तुम? पता है तुम्हें? बहू माँ ने मधू बुआ पर कितना भयानक इलज़ाम लगाया है!"

"वह क्या?" सूरज भयाक्रांत हो गया।

"बहू माँ कहती हैं कि बुआ का चरित्र बुरा है। वह जो गद्दी के छोटे मुनीम हैं न, रामचन्दर··· उन्हीं का नाम लेकर।" यह कहती-कहती सन्तोष सिसककर रो पड़ी। और एक बार फिर उसी रुँधे कण्ठ से कहा, "मुझे भी न जाने क्या-क्या कहती रहती हैं।"

"तब तो मैं निश्चय ही घर जाऊँगा, और अभी जाऊँगा।"

यह कहता हुआ सूरज गली में उतर गया।

६

चौड़ी सड़क पर आकर सूरज ने जब अपने घर के दरवाज़े को देखा तो उसे लगा वह घर उसका नहीं है। वह ऐसा घर है, जहाँ उसका अस्तित्व बन्दी है, जहाँ उसके माँ-बाप गिरवी हैं और जहाँ वह सर्वथा अनादृत है—पूर्णतया उपेक्षित।

सड़क से दुकान पर चढ़ते समय उसके पैर काँप रहे थे। उसका मन चीख़-चीख़कर कह रहा था, यह तुम्हारी हार है, यह प्रत्यावर्तन तुम्हारी पराजय है।

दुकान पर कोई न था—न चेतराम न गोरेमल। दोनों मुनीम रामचन्दर और सीताराम गद्दी पर बैठे थे। होरी तराजू के पास लगा था और हिरनू किसी व्यापारी को नाश्ता कराने में व्यस्त था।

सूरज का एक पैर गद्दी की ओर बढ़ रहा था, दूसरा सीधे घर में जाना चाहता था। तभी दुकान के सभी लोगों ने उसे देख लिया और जैसे स्वागत करने दौड़े। मुनीम लोगों ने बताया, चेतराम को लेकर गोरेमल स्टेशन गया है, कुछ बिल्टी करानी है। होरी सूरज के लिए एक कुरसी झाड़-पोंछकर रखने लगा। हिरनू दौड़ा घर में जाने लगा, पर सूरज ने उसे रोक लिया।

सबको विस्मय में छोड़कर सूरज स्वयं ही बढ़ गया। दहलीज़ के आगे ही उसे गौरी मिली—हट्टी-कट्टी, सीता जीजी से भी चार कदम आगे।

"नमस्ते गौरी जिज्जी!" सूरज ने भर्राए कण्ठ से कहा।

गौरी विस्मय में पड़ी चुप रह गई और सूरज के पीछे-पीछे दौड़ी। आँगन में प्रवेश करते-करते सूरज रुक गया। उसने देखा, आँगन में एक पलंग के ऊपर रूपावहू बैठी है, नीचे नंगे फ़र्श पर मधू बुआ बैठी है—एकाग्र, चुप और उदास।

बाल बिखेरे रूपावहू बुआ को उपदेश दे रही है, "स्त्री का धर्म

है केवल पतिव्रत। पतिव्रता नारी के सामने दुनिया की कोई भी ताक़त बड़ी नहीं है। एक बार जमराज भी हार मान लेता है। सावित्री-सत्यवान की कथा……। स्त्री के लिए उसके पति से बाहर कुछ नहीं है। उसके लिए सब कुछ—धन-धर्म-लक्ष्मी, दूध-पूत—उसी पति ही में है। उसी पति में स्वर्ग भी है और मोक्ष भी। स्त्री के लिए पर-पुरुष भाई, पिता और पुत्र के समान है। और आगे की सोचो तो पर-पुरुष स्त्री के लिए अछूत है, सर्वथा त्याज्य है। नारी धर्म कहता है कि स्वप्न में भी पर-पुरुष का ध्यान करना महापाप है—और स्त्री के लिए कुपंथ पर जाना रौरव नरक में गिरना है।"

फिर रूपाबहू ने पल्ले से अपने खुले सिर को ढकते हुए कहा, "पति ही सब कुछ है। स्त्री के लिए पति ही उसका ईश्वर है, उसका भाग्य-विधाता है। उसे छोड़ सारा संसार वृथा है।"

सहसा तभी आँगन में सूरज प्रविष्ट हुआ। रूपाबहू की जिह्वा जैसे तालू से चिपक गई। जैसे उसे किसी ने काठ मार दिया। वह बस देखती रह गई—केवल क्रियावश। मधू बुआ ने बस केवल एक बार सूरज को देखा और अपने मुख को घुटनों के बीच छिपा लिया—अभियोगी की तरह, डरे हुए शिशु की भाँति, जिसके आगे-पीछे कोई न हो।

सूरज ने प्रकृतिस्थ होकर कहा, "यह सब क्या हो रहा था? बुआ! ओ बुआ! उठो तुम यहाँ से। उठती हो कि नहीं, यहाँ क्यों बैठीं?

आवेश में सूरज ने बुआ को बाँहों में उठा लिया। बुआ निस्पंद थी, जैसे संज्ञाहीन।

सूरज ने बुआ को सम्हालते हुए माँ से कहा, "पति ही सब कुछ है, स्त्री के लिए पति ही उसका ईश्वर है, यह सब तुम मेरी बुआ को क्यों समझा रही हो? कौन हो तुम समझाने वाली।" 'तुम' शब्द को इस तरह पीसकर सूरज ने उच्चरित किया कि सारा आँगन दहल गया।

"पति-धर्म की शिक्षा तुम देने चली हो? और इस बुआ को

देने चली हो? पहले इस पति-धर्म की शिक्षा अपने-आप तो ग्रहण करो। तुम, जो अपने पति को इतनी घृणा से देखती हो! तुम, जो अपने-आपको गोरेमल की बेटी से अलग कभी सोच ही नहीं सकीं—न किसी की माँ, न किसी की बहू, न किसी की धर्मा! तुम, जिसकी उपस्थिति से सारा घर जेलखाना बन गया—सारा घर असहज हो गया; कोई अपनी ज़िन्दगी नहीं जी रहा है। तुमने जैसे इस घर में सबके भीतर एक-एक गाँठ बाँध दी है। इस घर में कभी कोई ऐसी भयानक गाँठ वाला आदमी नहीं आया था। सब सहज थे, सरल सीधे। तुम पहली थीं जो इस घर में आईं—बहुत बड़ी गाँठ लेकर और विष की तरह उसे सारे घर में फैला दिया। तुम······।"

बुआ ने तत्काल सूरज के उस मुँह पर अपना हाथ रख दिया। उसे आगे कुछ न बोलने दिया। उसे खींचती हुई एक ओर हटा ले गई। "इसमें इस तरह बिगड़ने की क्या बात है?" बुआ सूरज को डाँटने लगी, "वह बड़ी हैं, पूज्य हैं, उन्हें शिक्षा देने का अधिकार है, इसमें तुम्हें इतना क्रोध क्यों?"

"लेकिन यह पतिधर्म और पतिव्रत की शिक्षा तुम्हें क्यों?"

"तुमसे मतलब?" बुआ ने स्वर को जितना ही कड़ा करना चाहा, वह सहसा उतना ही पिघल गया। सारा कण्ठ, आँखें स्वर-वाणी, जैसे सारा व्यक्तित्व आँसू-आँसू हो गया और बुआ सारे आँसुओं को अगस्त्य मुनि की तरह पीने लगी, पीती रही।

सूरज खुद वहाँ से हट गया। उसके लिए बुआ को देखना असह्य था और ठीक उसी तरह बहू माँ को। जिस स्वतन्त्रता-संग्राम को वह बाहर-बाहर लड़ता था, वह शायद उसके लिए झूठा था, असली स्वतन्त्रता-संग्राम तो उसके घर-आँगन में छिड़ा है।

घायल मन से सूरज बाहर चला गया। चुपचाप कुरसी पर जा बैठा। उसे देखकर किसी को बोलने की हिम्मत न हुई। कुछ क्षण के बाद वह उठा, कलश से पानी उड़ेलकर कई गिलास पानी पी गया।

तभी गोरेमल के साथ सामने चेतराम दिखाई पड़ा।

दोनों सीधे गद्दी पर चले गए। सीताराम के द्वारा चेतराम ने सूरज को एक गुप्त सन्देश भिजवाया—सूरज तुम घर में चले जाओ।

"कह दो कि सूरज कहीं नहीं जाता, वह यहीं रहेगा।"

सूरज ने यह इतनी ज़ोर से कहा कि चेतराम गद्दी पर काँप गया।

गोरेमल गद्दी से बाहर निकल आया, "मुनीम, चेतराम को इधर भेजो।"

चेतराम पास आ खड़ा हुआ।

गोरेमल ने पूछा, "तुम्हारे साहबज़ादे महाशय तुमसे माफ़ी माँगकर यहाँ आये हैं कि यूँ ही? ज़रा ग़ौर करने की बात है!"

"जी, ओ···ओ···हाँ···जी, बात यह है कि···" चेतराम के मुँह से जैसे कोई शब्द नहीं फूट रहा था।

तभी सूरज बोला, "कैसी माफ़ी, और किससे माफ़ी?"

"चेतराम, जवाब दो!"

"मैं जवाब आपसे चाहता हूँ," सूरज ने कहा।

"तमीज़ से बातें करो!"

चेतराम डर से बीच में आ खड़ा हुआ और सूरज को चुप कराने लगा।

सूरज अबाध गति से बोला, "आपकी तमीज़ मेरे पास नहीं है। यह मेरा घर है। मैं अपने घर में स्वतन्त्र हूँ। मैं किस बात की माफ़ी माँगूँ? और किससे, क्यों माँगूँ?"

सूरज की बातें गोरेमल तक न जायँ, इसलिए चेतराम बीच में बोलता रहा, "लड़का है। नादान है। नासमझ है। इसकी बात का क्या? लाला, इसकी बात पर न जाइए। अभी तो मैं हूँ। यह कौन है? यह इसकी नादानी है। गर्म ख़ून है।"

सूरज कह रहा था, "सब्र की हद हो गई! आप महज़ अपने को तहज़ीब का ठेकेदार समझते हैं। हम सब आपकी नज़र में हैवान हैं

जैसे। यह मेरा घर है, यहाँ मेरा अस्तित्व है।"

"और मैं क्या हूँ, इसे कभी जाना है?" गोरेमल ने बड़े ठण्डे स्वर में पूछा, "ज़रा ग़ौर करने की बात है!"

"जी हाँ, आप क्या हैं, इसे मैंने अब जाना है। अपने घर में से निर्वासित होकर जाना है," सूरज ने कहा!

भीतर से मधू बुआ झपटी हुई आई और सूरज को कन्धे से पकड़ कर खींच ले गई। सूरज की चीख़ती हुई आवाज़ दहलीज़ में गूँजती रही, बुआ के हाथों से वह छूट न सका।

गोरेमल बिलकुल चुप रहा। उस पर क्या प्रतिक्रिया है, इसे कोई न जान सका। घर और दुकान में एक विचित्र-सा सन्नाटा छा गया था, जिसमें सब-के-सब घुट रहे थे। दोपहरी में गोरेमल ने चेतराम को अपने पास बुलाया और बेहद दुखी होकर बोला, "ज़रा ग़ौर करने की बात है! मैं तो बुड्ढा हो रहा हूँ। अब कितने दिन जी सकूँगा। सोचा था, सब-कुछ सूरज के नाम कर दूँगा। 'विल' में लिखकर छोड़ जाऊँगा उसके नाम। लेकिन ज़रा···।"

गोरेमल की आँखें कुछ भर आईं। चेतराम उसके पैरों पर गिर पड़ा, "सब माफ़ करो लाला। सूरज भी पछता रहा है, ससुरा घर में बैठा रो रहा है और माफ़ी माँग रहा है।"

"झूठी बात! वह कभी माफ़ी नहीं माँग सकता। वह मुझसे नफ़रत करता है। आज साफ़ देख लिया मैंने।"

"नहीं लाला, वह बौखलाया हुआ था।"

"अच्छा छोड़ो अभी इन बातों को," गोरेमल ने ठण्डी साँस भरते हुए कहा। "जाओ, झटपट मुनीम के साथ इनकम टैक्स के पर्चे बना डालो—जो-जो बहियाँ मैं अपने साथ ले आया हूँ, उसी के अनुसार पर्चे बनाना। और दूसरी बात—आज ही रात को ठेलों पर लदकर

सारा गेहूँ स्टेशन पर पहुँच जाय। 'बिल्टी' बनवाने में नाम का ध्यान रखना।"

मौक़ा पाकर चेतराम घर में जा रहा था—सूरज से मिलने। पर गोरेमल ने डाँट दिया, "इनकम टैक्स के सारे पर्चे जब तक तैयार न हो जायँ, तुम गद्दी से उठ नहीं सकते।"

और गोरेमल स्वयं उन्हीं के साथ बैठकर अपना काम करने लगा। अपने दिल्ली फ़र्म के 'इनकम टैक्स' के पर्चे वह स्वयं कल रात ही से बना रहा था। दिल्ली में पिछले वर्ष 'इनकम टैक्स' के पर्चे बनाते समय पुलिस का छापा पड़ गया था और सब जाली पर्चे पकड़ लिये गए थे।

चेतराम पर्चे बनवा रहा था, पर उसके अन्तःकरण में सूरज नाच रहा था—नाराज़ गोरेमल का 'लेकिन' चुभ रहा था। उसके अन्तः-क्षितिज में गोरेमल का 'विल' उभर रहा था—उसका बैंक बैलेन्स, दिल्ली की फ़र्म, और कई लाख रुपया, जिसे उसने गुप्त रखा है, जिससे सरकार कर न ले सके। सोना, जवाहिरात के रूप में जो उसकी अचल सम्पत्ति बन गई है—वह सब-कुछ चेतराम के मन में फैलता जा रहा था।

क़रीब ढाई बजे सूरज घर में से निकलकर फिर बाहर की उसी कुरसी पर चुपचाप बैठ गया। लू चल रही थी और साथ-ही-साथ अंधड़ भी तेज़। भीतर गद्दी से दोनों मुनीम, चेतराम और गोरेमल की आवाज़ें एक-पर-एक उभर रही थीं।

कुछ देर के बाद, न जाने किस प्रसंग में, गोरेमल गरजने लगा, "चेतराम, सोना सदा सोना है, लेकिन ख़रीदते समय उसका और भाव होता है, बेचते समय और। ये नौजवान आजकल के क्या बनते हैं अपने को। मेरी उमर पचपन के क़रीब है, लेकिन चार नौजवान मिलकर मेरी इस मुट्ठी को खोल दें तो एक हज़ार इनाम! अब भी दो-दो शादियाँ करके निभा सकता हूँ। यह चरित्र की बात है। नियम-

संयम की बात है। 'मनी' और 'मणी' संसार में यही सत्य है और सब झूठ! 'मनी' माने धन, 'मणी' माने वीर्य—इससे बढ़कर संसार में कुछ नहीं। और इन जवानों में ये दोनों चीज़ें नहीं। और ये भी जवान बनते हैं।"

यह कहता हुआ कुल्ला करने के लिए गोरेमल बाहर चला आया। बड़ी उपेक्षा से उसने सूरज को देखा, "जिसमें मान-अपमान का भेद नहीं, अपने भविष्य की चिन्ता नहीं, अपने-पराये में फ़र्क़ नहीं, लानत है उस पर, उसका मुँह देखना पाप है, कलंक है वह अपने घर का, ख़ानदान का।"

इस तरह हवा में बात कर-करके गोरेमल गाली देने की कला में बड़ा माहिर था। वह जिसके पीछे पड़ जाय, बस भूत बन जाता है।

सूरज ने भी हवा में कहना शुरू किया, "एक भीतर बैठी हैं—माँ बनकर, बहू बनकर। किसी को पतिव्रत, नारी-धर्म और सतीत्व की शिक्षा देती हैं, किसी को भर आँख देख नहीं पातीं, न जाने कितना नीच समझती हैं। और एक बाहर आ बैठते हैं, जो दुनिया में अपने को सबसे बड़ा ईमानदार, चरित्रवान, शक्तिवान, ज्ञानी और महात्मा समझते हैं। स्नेह किसे कहते हैं, इन्सान को आदर-सम्मान देना किसे कहते हैं, शायद इन्हें कभी छू तक नहीं गया है।"

चेतराम गद्दी से उठकर बाहर आया—सूरज को रोकने, पर गोरेमल की आँख देखकर वह भीतर लौट गया।

"ब्लैक मार्केटिंग करना, जाली बही रखना, 'इन्कम टैक्स' के जाली पर्चे बनाना, सोने-चाँदी की ईंटें बनवाकर गाड़ लेना, सट्टेबाज़ी करना, झूठी-झूठी 'बिल्टियाँ' बनाना, 'वार' को सपोर्ट करना, मँहगाई, कंट्रोल-राशनिंग, तबाही और अकाल चाहना, अंग्रेज़ी राज्य के दावेदार बनना, यही इनकी ईमानदारी है, चरित्र है, शक्ति है, ज्ञान है!"

यह सब सूरज एक ही साँस में कह गया। गोरेमल उसका मुँह देखता रहा, "कह चुके?"

सूरज चुप था।

"हूँ! तो यह बात है!" गोरेमल अपनी मुट्ठी मलने लगा, और 'हूँ...हूँ' कह-कहकर अपने-आपमें लम्बी-लम्बी साँसें भरता रहा; बड़ी देर तक वहीं बरामदे में टहलता रहा।

रात को ठेलों पर लद-लदकर गेहूँ के बोरे स्टेशन की ओर जाने लगे। सूरज जगा बैठा था। गोरेमल सहन में टहल रहा था। सूरज छेदामल के अहाते के पास चेतराम का रास्ता रोककर खड़ा हो गया।

"आज मैं निश्चय ही तुम्हें रोक लूँगा," सूरज ने बड़े ही दयनीय स्वर में कहा, "तब तुम्हें नहीं रोक सका, जब तुम जिस चीज़ के आने-जाने में कंट्रोल नहीं था उसी चीज़ के नाम से 'बिल्टी' बनवाते थे, पर भेजते कुछ और थे। पर आज मैं रोकूँगा; यह असह्य है, हद है।"

सूरज का कण्ठ भर आया, पर उसका आवेश बढ़ गया, "यह हद है। यह हजार मन गेहूँ 'फेमिन रिलीफ सोसाइटी' के नाम से कलकत्ता जा रहा है, लेकिन असली बिल्टी किसके नाम बनेगी? बोलो बाबू! पिताजी बोलो! आज उत्तर दो मुझे। मैं इधर-उधर सत्याग्रह करता घूमता था, स्वतन्त्रता-संग्राम में पुलिस और जेलखाने की यातना सहता था, पर शायद वह सब इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना यह है—तुम हो, माँ है, बुआ है, जीजी है मैं हूँ और हमारा यह जीवन है।"

"लेकिन लल्ला, यह मैं कहाँ कर रहा हूँ, यह तो गोरेमल कर रहा है।"

"नहीं बाबू, तुम्हीं कर रहे हो। गोरेमल तुमसे करा रहा है! यही तो भयानक है।"

"गोरेमल बहुत नाराज़ हो गया है हमसे," चेतराम कहने लगा। "इस समय भूल जाओ सब। अन्त में सब हमारा ही है।"

"हमें कुछ नहीं चाहिए उसका। बाबू, क्या दिया है उसने आज-

तक तुम्हें ? केवल अपमान दिया है। तुम चेयरमैन नहीं हो सके, तुम रायबहादुर, रायसाहब नहीं हो सके। उसने तुमको न किसी संस्था का प्रेसिडेन्ट बनने दिया, न सेक्रेटरी, न सभापति। उसने कुछ भी नहीं होने दिया है।"

उसी क्षण सीताराम मुनीम दिखाई पड़े। लाला चेतराम को देखते ही घबड़ाहट में बोले, "लालाजी ! लालाजी ! सेठजी आ रहे हैं !"

चेतराम अपने रास्ते भागा। सूरज वहीं खड़ा रह गया। सामने से चाँदी की मुठिया वाली छड़ी के साथ मूँछ पर ताव दिये गोरेमल गुजरने लगा। सूरज ने उसे रोककर कुछ कहना चाहा, पर चुप रह गया।

रात के लगभग डेढ़ बजे जब जाली और असली दोनों बिल्टियाँ बन रही थीं, उसी क्षण पुलिस का छापा पड़ा। स्टेशन मास्टर, माल-बाबू के संग चेतराम हिरासत में ले लिया गया। घटना-स्थल पर एका-एक सूरज दिखाई पड़ा। उसने बड़े ऊँचे स्वर में कहना शुरू किया—

"अभियोगी गोरेमल है !"

"अभियोगी गोरेमल है !"

पर क्षण-भर में गोरेमल वहाँ से ग़ायब था—सूरज के देखते-देखते।

तीसरा भाग

पीली दुअन्नी

१

चौथेलाल हलवाई की दुकान उठ गई है। दिसम्बर की रात के बारह बज रहे हैं। बाहर की गहरी अंगीठी पत्थर के कोयलों के अंगारों से भरी दहक रही है। उसके किनारे रजुआ, ताले और जगनू बैठे आग ताप रहे हैं। उनके बीच में केवल एक बीड़ी है—जगनू के ओंठों पर, उसीको एक-एक फूँक में तीनों ख़त्म कर रहे हैं।

जगनू बड़े दर्द से बोला, "अमें रज्जू बे, यह राबर्ट्स कम्पनी की फ़ैक्टरी जब से बन्द हुई, मेरी हिम्मत नहीं होती कि मैं हनुमान-घाटिका की तरफ़ जाऊँ।"

"अमें दिन दिहाड़े वहाँ गीदड़ बोलते हैं," रज्जू कहने लगा। "क्या साहब था मेरा! महीने में सिर्फ़ एक दिन के लिए आता था, और हम सबको इनाम बाँटता था। उसकी मेम साहब फरांस की थी, मैंने तो एक ही बार देखा था उसे, मालिक! अंगूर की तरह थी। हम लोगों को उसने एक-एक पैकेट चाय दी थी। मुझे तो उसका पैर नहीं भूलता, जी हुआ था कि ज़बान से चाट लूँ!"

ताल मुहम्मद ने कहा, "और मेरे साहब का पेंच—इतनी साफ-सुथरी और रौनक की जगह तो कहीं दिल्ली-कलकत्ता में भी नहीं होगी। बहिश्त का टुकड़ा—मेरा साहब उसे अपने हाथ से सजाता था। जिस रात को मेरा साहब सब-कुछ बेचकर इंगलैंड जाने की तैयारी कर रहा था, उस रात मैंने देखा था, अपने अंग्रेज़ी झंडे में मुँह छिपाकर वह न जाने क्यों रो रहा था।"

रज्जू बोला, "हमारा साहब तो जब आख़िरी बार आया था मैनेजर को हिसाब-किताब समझाने, तब जाते समय कम्पनी के सारे वर्करों को एक लाइन में खड़ा करके उसने कहा था—'तुम शवका हिसाब चुकटा हो गया न ! हमारी कम्पनी अब यहाँ से टूट जा रही है।' हम अपनी कम्पनी की तरफ से तुम सबका शुक्रिया अदा करता है।' उसने सचमुच हम लोगों को सलाम किया था।"

"कितनी जल्दी से सारा बेंच-खोंचकर ये दोनों साहब भाग गए।"

"जैसे रामचन्दरजी ने अयोधिया का राज्य छोड़ दिया था," लाले ने कहा।

"अजी, उन्हें आसार मालूम हो गया कि अंग्रेज़ी हुकूमत अब जाने को है यहाँ से, इसलिए वे पहले ही सब बेचकर अपने मुल्क चले गए।" जगनू कह रहा था, "अजी, बड़े चतुर हैं ये अंगरेज़ ! बन्दर होते हैं न; जब कहीं हैज़ा-ताऊन पड़ने को होता है तो वे वहाँ से एक महीना पहले ही छोड़कर भाग जाते हैं।"

रज्जू बड़े धीमे स्वर में बोला, "पिछले साल जब मिठाईलाल के पिता चिरौंजीलाल कानपुर गए थे न, गद्दे वाली पलंग खरीदने, तब उस रात जो यहाँ उनके कपड़े की दुकान में आग लगी थी—तब देखने लायक था इसी चन्दन···"

"यह चन्दनगुरु भी क्या है !" लाले ने कहा, "पुलिस निगरानी खुल गई है दस नम्बरी पर ! लेकिन अब भी शराब बनाता है अपने यहाँ। एक दिन आध पाव मुझे भी पिलाई थी।"

"शराब तो जियालाल भी बेचने लगा है," रज्जू कहने लगा। "सारे लाला लोग शराब पीने लगे हैं। करें क्या, पानी की तरह तो रुपया कमा रहे हैं इस कँट्रोल में ! और वह जो विपिन है, साहू गुरचरनलाल के साझे में जिसने नावेल्टी सिनमा खोला है, अब पहचानता तक नहीं। एक दिन टिकट माँगने गया—'लैला मजनूं' का सनीमा लगा था—पर उसने मुझे कमरे से निकाल दिया—साला मैनेजर बना

बैठा है।"

"चौधरी रामनाथ का भी तो सनीमा घर तैयार हो रहा है—'परभात' नाम रखा है शायद," जगनू कह रहा था। "साला देखते-देखते करोड़पति हो गया; अपने बड़े लड़के परभात के नाम से सनीमा खोल रहा है। वही मैनेजरी करेगा। और सुना है कि राबर्ट्स कम्पनी की बिल्डिंग में वह कोई फ़ैक्टरी चालू करने वाला है।"

रजुआ बोला, "सच यार, तभी तो उसने साहब से सब ख़रीद लिया था। कोशिश हो जाती तो उसमें नौकरी मिल जाती—मुझे भी और लालमुहम्मद को भी। क्यों जगनू, कोशिश करा दे न यार!"

"पहले खुलने तो दो," जगनू ने कहा। "यार दो-दो बच्चे हो गए मेरे, म्युनिस्पेल्टी के इस काम से मेरी भी गुज़र नहीं हो रही है।"

रजुआ ने एकाएक बड़े रहस्य के स्वर में कहा, "सुनो यार, कहीं चोरी क्यों न की जाय!"

"मैं भी यही सोचता हूँ," लाले ने कहा। "जब कहीं कोई काम नहीं, रोज़गार नहीं तो फिर कैसे काम चले? कितने दिन हो गए बेकार बैठे।"

"एक ठेला गाड़ी खरीदो यार तुम दोनों," जगनू बोला। "ढाई सौ रुपये का एक बैल और पचास रुपये की ठेला गाड़ी—तीन सौ रुपये में तुम दोनों की ज़िन्दगी चल पड़ेगी।"

"तो दो न तीन सौ रुपये!" रजुआ के मुँह में पानी भर आया।

"अबे मेरे पास कहाँ हैं? मैं तो तरकीब बता रहा हूँ।"

"तरकीब से क्या!" लाले बोला। "कहो तो यहीं बैठे-बैठे हज़ारों तरीके बता दूँ रुपया कमाने के। अंगरेज़-कम्पनी में काम कर चुका हूँ, किसी बनिया-बक्काल के घर नहीं! क्या समझा है हमें!"

"अबे छोड़ भी!" रजुआ उसी रहस्य के स्वर में बोला, "जगनू भाई, बस महज़ तीन सौ रुपये की कहीं चोरी करा दो—दोस्त, बड़ा एहसान होगा!"

जगनू चुप सोचने लगा। रजुआ और ताले एकाग्र उसे देखने लगे और उनके बदन की गरमी एकाएक तेज़ होने लगी—यद्यपि अंगीठी ठण्डी होने जा रही थी।

"कहीं से कर्ज़ क्यों न ले लें?" जगनू बोला।

"कर्ज़, यार ठीक नहीं, बड़ी फँसान हो जाती है उसमें," ताले ने उत्तर दिया।

"हाँ यार, बस एक बार चोरी—और महज़ तीन सौ की!" रजुआ ने जैसे प्रतिज्ञा की।

"अच्छा चलो हम सब पहले कसम खाएँ कि एक ही बार महज़ तीन सौ रुपये की चोरी करेंगे!"

"राम कसम!"

"खुदा कसम!"

रात के डेढ़ बज रहे थे। जगनू बजाजा मुहल्ले की एक गली में खड़ा हो गया। आगे गली के मोड़ पर उसका जलाया हुआ लालटेन प्रकाश दे रहा था। वह उसे बुझाने चला, पर न जाने क्यों, उसके हाथ-पाँव बुरी तरह काँपने लगे।

वह ताले-रजुआ से भयभीत स्वर में बोला, "जाओ तुम बुझा आओ उसे।"

"यार ऐसा लग रहा है जैसे मेरा 'पेंच' वाला अंगरेज़ साहब मुझे डरा रहा है।"

ताले की यह बात सुनते ही रजुआ बोला, "अच्छा, आज छोड़ो कल करेंगे।"

तीनों चुपचाप अपने-आपसे डरे हुए, धीमर टोले की ओर चले गए।

अगली रात ताले और रजुआ ने बिना जगनू को कुछ बताए एक घर में चोरी कर ही ली—चार सौ नक़द रुपये और ढाई सौ के गहने। दोनों ने आधी-आधी रक़म बाँट ली और जगनू से उन दोनों ने बताया कि अब वे अलग-अलग ठेलागाड़ी चलाएँगे।

२

चेतराम करीब एक महीने से बीमार पड़ा था। पहले उसे धड़के की बीमारी हुई, फिर इधर उसे लगातार बुख़ार आ रहा था। फ़र्म का सारा काम चौपट हो रहा था। दिल्ली से गोरेमल ने पहले अपने मुनीम को यहाँ का काम देखने के लिए भेजा था, अब वह पिछले चार दिन से स्वयं यहाँ आ गया है। बरेली के मिशन अस्पताल के सबसे बड़े डॉक्टर को घर बुलाकर उसने चेतराम को दिखलाया है। ख़ून और पेशाब की परीक्षा हुई है। दिल्ली से सुई की दवाइयाँ आई हैं, और कल से चेतराम की तबीयत सुधर रही है।

गद्दी से भीतर वाले कमरे में चेतराम मुँह ढंक जैसे सो रहा है। अभी थोड़ी-सी रात बीती है, लेकिन वहाँ इस तरह की ख़ामोशी छाई है कि लग रहा है आधी रात बीत चुकी है।

सूरज चुपचाप बाहर बरामदे में बैठा है; गोरेमल की गद्दी से लेकर चेतराम के पलंग तक चक्कर काट रहा है—जैसे वह अपने भीतर के किसी तीव्र भाव के घात-प्रतिघात से इधर-उधर डोल रहा हो। चेतराम सोया नहीं है, जग रहा है। वह महज़ गोरेमल के कारण मुँह ढके पड़ा है। इस सत्य को गोरेमल भी जानता है।

चेतराम को देखने उसके तीनों दलाल एक संग आये—बिहारी, नैनू और कुंसामल। उन्हें देखते ही गोरेमल बोलने लगा, जैसे वह किसी माध्यम की प्रतीक्षा में बेचैन डोल रहा था—"सपूत कहलाने को मरते हैं। इनका चले तो ये ज़िन्दा ही अपने बाप को कहीं ढक आयें। अपने घर में आग लगाकर कहें कि यह राष्ट्र-सेवा है। हज़ार मन गेहूँ फूँक दिया। बाप को पुलिस हिरासत में डालकर खानदान की इज़्ज़त बढ़ा ली। यह धड़के की बीमारी मिली कहाँ से? पुलिस हिरासत में मिली, उस अपमान और बदनामी से मिली, जो भाग्यवान पुत्र के हाथ से रचा गया! ज़रा ग़ौर करने की बात है जनाबआली!"

"बिहारी, नैनू, कुंसामल, मैं तुम तीनों की साखी देकर कहता हूँ, मैं अगर एक बात भी झूठ कहूँ तो तुम लोगों का जूता और मेरा सिर ! उस 'केस' में मेरे ढाई हज़ार रुपये नक़द ख़र्च हुए, तब मैं चेतराम को जेल जाने से बचा सका। मैं क्रोधी हूँ, शक्की हूँ, ज़िद्दी हूँ, चिड़चिड़ा हूँ, मक्खीचूस हूँ और दुनिया में सबसे बदतर हूँ—मुझे सब मंज़ूर है, लेकिन गोरेमल को यह कभी नहीं मंज़ूर है कि वह किसी तरह पैसे की मार खा जाय। जिसने उसे आँख दिखाई या तो उसी की आँख या मेरी ही। गोरेमल बहुत मामूली आदमी है, न उसके आगे-पीछे कोई खिताब है, न पदवी है, न दर्जा है, न उसे किसी चीज़ की इच्छा ही है—लेकिन वह बादशाह है अपने घर का, अपना ख़ुदमुख़्तार है। जिस प्रेसिडेण्ट को कहो, जिस लीडर को कहो, जिस हाकिम-हुक्काम को कहो और जिस रायबहादुर, रायसाहब को कहो, गोरेमल उन्हें अपने दरवाज़े पर बुला सकता है। बीसों एम० ए०, ग्रेजुएट को मैं नौकर रख सकता हूँ। कल-कल के लौंडे मुझे चार सौ बीस पढ़ाते हैं। बाप मर रहा है, फ़र्म डूब रही है, बेटा बी० ए० पास करने चला है ! बाप ने मारी मेंढकी, बेटा तीरन्दाज़ ! लीडरी करने चले हैं ! देश की स्वतन्त्रता की बागडोर इन्हीं के हाथों है।"

सूरज को अब असह्य हो रहा था। पर वह विवेक से देख रहा था, अगर वह बोलता है, तो गोरेमल से बात बहुत बढ़ जायगी और उसका दुष्परिणाम बीमार पिताजी पर पड़ेगा। पर सूरज दूसरी ओर यह भी सोच रहा था कि अगर वह अब भी नहीं विरोध करता तो गोरेमल अपनी कटुता की सीमा पार कर लेगा, वह अपमान करने की हद कर देगा।

गोरेमल कहता जा रहा था, "यह बाप भी बेटे से कम नहीं है। जो पुत्र कहता है, वह झट से पिता की समझ में आ जाता है। और जो मैं कहूँ वह बात लाख जनम समझ में न आयेगी, ज़रा ग़ौर करने की बात है। बड़ी लड़की सीता की शादी मैंने कराई—अपने मुनीम के लड़के

के साथ, महज़ पाँच सौ रुपये में। और वह लड़की सोने के गहनों से आज पटी है, पूरे घर की मालकिन है, दो-दो बच्चों की माँ है, न खाने की कमी न पहनने की। लेकिन वह शादी इस घर के सपूत को नहीं पसन्द आई। उसने गौरी की शादी पिछले साल अमरोहे में कर दी। मुझे कानों कान ख़बर न दी, जैसे मैं ही दुश्मन हूँ इनका। चार हज़ार नक़द ख़र्च करके यह शादी की है और ऐसे घर जहाँ ज़रूरत पड़ने पर दस तोले सोना ढूँढ़ने पर न मिले। ज़रा ग़ौर करने की बात है।"

तीनों दलाल चुपचाप सुनते जा रहे थे। कभी-कभी कोई उनमें से समर्थन भी देता चलता था। सूरज एकाएक असह्य पीड़ा से तड़पा। दलालों के सामने तनकर बोला, "चले जाओ यहाँ से!"

"यह है सपूत की शराफ़त, अपने दरवाज़े की इज़्ज़त!" गोरेमल दलालों के पीछे-पीछे सहन तक चला गया।

चेतराम ने बड़े दर्द से सूरज को पुकारा, "लल्ला!"

पास आ सूरज मरा खड़ा रहा।

सहन से गोरेमल की आवाज़ अब भी उन दोनों का पीछा कर रही थी, "एक शादी सपूत ने की। इसी तरह एक शादी बाप ने अपनी बहन की की थी—खुरजे में! ज़रा ग़ौर करने की बात है।"

चेतराम एकाएक जैसे तड़प उठा, "लल्ला, जाकर गोरेमल से कह दो मुझे ताना न मारें।"

सूरज वहाँ से टस-से-मस न हुआ। वह चाहकर भी न हो सका। बंदी बना खड़ा रहा। और बीमार पिता की अवज्ञा ही सही, असह्य अपमान भी सही, सूरज तब तक वहाँ स्थिर खड़ा रहा, जब तक उसमें उठा हुआ ज्वार धीरे-धीरे समाप्त नहीं हो गया।

गोरेमल सहन से लौटकर गद्दी पर बैठ गया। तब सूरज उसके सामने खड़ा हुआ। बड़े ही संयत स्वर में बोला, "आप सब कुछ करते हैं, लेकिन इतना अपमान क्यों करते हैं?"

"मुझसे सीधी ज़बान बोला करो, ज़रा ग़ौर करने की बात है ! मैं बी० ए० में नहीं पढ़ रहा हूँ ।"

"फिर भी आप बी० ए०, एम० ए० को नौकर तो रख सकते हैं !"

"तो !" गोरेमल देखने लगा ।

"पिताजी बीमार हैं, जब अच्छे हो जायँ, सहने की कुछ ताक़त आ जाय उनमें, फिर मैं आपसे कुछ बातें करना चाहूँगा, अभी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप बिलकुल चुप रहें—यद्यपि आपने अभी सब कुछ कह दिया है, कहने के लिए कुछ नहीं छोड़ा। पता नहीं किसे, कहाँ-कहाँ तीर लगा है ।"

"तीर ! कैसा तीर ?" गोरेमल ने अजीब उपेक्षा से कहा, "वह तीर-तार की बात जो लैला-मजनू और शीरीं-फरहाद के किस्सों में मिलती है, वही तो नहीं ?"

"आप तो धार्मिक आदमी हैं," सूरज गम्भीरता से बोला, "आपको जितना ईश्वर में विश्वास है, उतना मुझे नहीं है । आप उसी ईश्वर से पूछिए—अपने ईश्वर से, कि पिताजी को धड़के की बीमारी आपसे मिली है कि मुझसे । सच-सच पूछिए अपने ईश्वर से !"

"तुम पूछ चुके हो अपने ईश्वर से ?"

"मेरे पास ईश्वर नहीं है ।"

"फिर क्या है तुम्हारे पास ?"

"दर्द, अपमान, उपेक्षा !"

"इसके सिवा भी कुछ है तुम्हारे पास ?"

"है क्यों नहीं, पर यहाँ उसकी चर्चा करना मुझे स्वीकार नहीं है । वह मेरे भीतर है और भीतर ही रहेगा ।" सूरज का कण्ठ भर आया ।

·

अगले दिन गोरेमल दिल्ली चला गया ! सूरज ने कॉलेज जाना बन्द

कर दिया। वह तब तक कॉलेज नहीं जायगा जब तक पिताजी स्वस्थ होकर दुकान की गद्दी पर नहीं बैठने लगेंगे।

बड़ी तत्परता और ज़िम्मेदारी से मुनीमों के संग वह गद्दी पर बैठता और पिताजी से पूछ-पूछकर फ़र्म का कार्य करता।

इन्हीं दिनों एक सुबह, जब पूरब में सूर्य भी उदित नहीं हुआ था, उसके द्वार पर एक ताँगा रुका। यात्री उस पर से उतर नहीं रहा था।

जो आगन्तुक था, वह किसी को पुकार भी नहीं रहा था। ताँगे-वाला आवाज़ दे रहा था, "कोई है? आकर बाबू को उतार ले जाओ!"

जो अतिथि उस द्वार पर आया था, उसमें शायद इतनी भी शक्ति शेष नहीं थी जो ताँगे वाले से ही कहकर, उसी के सहारे नीचे उतर जाता और उस घर में चला जाता।

सूरज सहन को पार कर सड़क के पास चला आया, लेकिन आग-न्तुक का मुँह वह अब तक न देख सका था। वह उलटी दिशा में मुँह छिपाए बैठा था।

"फूफा!" सूरज आह्लाद से भर गया और हँसता हुआ ईशरी फूफा को ताँगे से खींचने लगा।

"हाँ···हाँ···हाँऽऽऽ···सँभाल के!" ताँगेवाला एकदम से दौड़ा और गिरते हुए यात्री को सँभालकर बोला, "देखते नहीं, बाबू से चला नहीं जाता। दोनों पैरों में गठिया हो रहा है।"

दोनों पैरों में गठिया! और ईशरी फूफा···वह क्रान्तिकारी, जो दोनों हाथों से पिस्तौल चलाता है, जो मिनटों में ट्रेन उलट देता है! नहीं नहीं, यह वह ईशरी फूफा नहीं।"

सूरज ने अपनी दृष्टि ईशरी से मिला दी। ईशरी के मुख पर कोई भी भाव न था—निर्विकार, निरुद्देश्य। बस वह महज़ देखने के लिए देख रहा था।

सूरज ने ईशरी को कन्धे पर लाद लिया, जैसे माथे पर मन्दिर का पुष्प रख लिया हो और उसी गति से वह सीधे घर में चला गया।

दौड़कर बुआ ने देखा और देखती रह गई—न कोई वाणी, न स्वर, न क्रिया, न कोई उपचार। बस, ढलकती हुई नज़र से न जाने क्या निहारती रह गई—दूर, बहुत दूर, जैसे कोई गा रहा हो :

सिया समाज सुहाग सुन्दरी,
रघुवर आये जनक की नगरी।

रूपाबहू आई। बाहर से धीरे-धीरे चलकर चेतराम आया। सब एक-दूसरे से बातें कर रहे थे—सहमे हुए, लेकिन कोई ईशरी से कोई बात नहीं कर पा रहा था।

ईशरी इतना दुबला पड़ गया था कि बिलकुल स्याह लगता था। नाक कितनी लम्बी निकल आई थी! आँखें बिलकुल धँसी-धँसी। मुँह कितना छोटा-सा लगता था—उदास, चिन्तामग्न और कभी-कभी बुड्ढों-जैसा तेज-हीन, भाव-हीन, केवल रेखाएँ-ही-रेखाएँ। सिर पर छोटे-छोटे बाल, कनपटियों पर पककर बिलकुल सफ़ेद हो चले थे। दाढ़ी-मूँछ की खूँटियाँ—वे भी कहीं-कहीं सफेद पड़ चुकी थीं। दोनों गालों पर झाईं पड़ गई थीं।

और गठिया दोनों पैरों में!

यह सबसे अधिक करुण था। जैसे यही वह लक्ष्य था, जहाँ उसकी क्रान्ति अपने परिणाम पर पहुँचकर रुक गई थी।

ईशरी—असहाय, दीन, अवश!

यह अहेतुक भास! मधू बुआ बिलकुल न रोई—एक आँसू भी नहीं। पृथ्वी की तरह थी—मौन, अचलधर्मा, सहिष्णु। जो कुछ भी मिले, सबको स्वीकार, अंगीकृत करते चलो। जो मिला है, यही क्या कम है! मैं तो इसे ही अपना भाग्य समझती हूँ। ये लौट आए, सीधे मेरे ही पास आये। मुझे कभी नहीं भूले—मेरे लिए यही अद्भुत है—अपूर्व है। यही मेरा क्या कम गौरव है कि मैं ऐसे पुरुष की

पत्नी हूँ !

दोनों गाँठें फूल-फूलकर इतनी बड़ी हो आई थीं कि उन्हें देखकर डर लगता है। पता नहीं उनमें पीड़ा कितनी होगी ! यह पुरुष कितना दर्द पी रहा होगा। यह कुछ बताता भी तो नहीं ! कुछ आभास तक नहीं होने देता। कहता है, ठीक हो जायगा, बहुत जल्द ठीक हो जायगा। इसमें घबराने की क्या बात ! यह तो यूँ ही हो जाता है ! पर यह पुरुष अब यह नहीं कह रहा है कि उसे बहुत शीघ्र जाना है, कल भोर ही वह लौट जायगा; उसे अमुक स्थान पर इसी क्षण पहुँच जाना है। यह भी नहीं कह रहा है कि उसके पीछे पुलिस पड़ी है या सी० आई० डी० लगी है। कितना निर्द्वन्द्व हो गया यह पुरुष ! कितना परितृप्त, शान्त और सन्तुष्ट लग रहा है ! कोई दौड़-धूप नहीं, जैसे वह प्रलय की आँधी किसी अन्धगुफा में जाकर बन्दी बन गई हो। क्रान्ति की वह अग्नि, वह अबाध ज्वाला कहाँ बुझ गई जाकर ? क्या हिमशिखर ने उसे बाँधकर तोड़ दिया ?

हाय ! यह क्या हो गया ? मेरी भी तपस्या बाँझ पड़ गई क्या ?

क्या लेकर लौटा है यह ?

सब होम करके क्या मिला ?

बुआ हाहाकार करके पाँचवें दिन रो पड़ी—विशेषकर जब उसने ईशरी की उदास आँखें देखीं—जिनमें दया की भीख थी, अनुताप के डोरे थे, बेबसी थी।

असह्य था यह बुआ के लिए।

सूरज ने अलीगढ़ और मुरादाबाद से डाक्टर बुलाकर ईशरी को दिखलाया; ऐक्सरे कराया। दवा और सुइयाँ, दोनों शक्तियों का सहारा लिया जाने लगा।

ईशरी को छोड़कर घर में सब-के-सब इतने व्यस्त रहते थे कि घर-

आँगन या छत पर पहले की तरह अब बैठकबाज़ी नहीं थी। सूरज गद्दी सँभालता था, ईशरी के लिए डाक्टर और दवाइयाँ भी जुटाता था। चेतराम अभी बीमारी से उठा था—वह सुबह-शाम बहुत दूर तक टहलने जाता। भोजन करता और दोनों वक्त सो जाता। सारा काम, सारी चिन्ताएँ सूरज ने ओढ़ ली थीं। पिछले दो दिनों से उस घर में सन्तोष आने लगी थी— बुआ के पास।

३

मथुरा-वृन्दावन की यात्रा से राजू पण्डित अपने संग एक स्त्री लेकर लौटे थे। राजू पण्डित से ज़्यादा उमर की वह नहीं थी, फिर भी वह उसे 'गोपी माँ' कहते। पूरी बस्ती में, विशेषकर गोपालन मुहल्ले में, गोपी माँ को लेकर जगह-जगह घर-घर में बड़ी चर्चा थी; विशेषकर, कुलवंती, सरजू सुनार की पत्नी के यहाँ। गली-पड़ोस का मामला था न! कुलवंती के यहाँ छेदामल की पत्नी बसन्ता आ जाती। फिर बातें छिड़तीं, एक से अनेक।

"वृन्दावन में राजू पण्डित का कीर्तन भओ रहो, अखण्ड कीर्तन! राजू पण्डित नाचतो-नाचतो जे याही औरत पर गिर पड़ो।"

"जे औरत विधवा है कहीं की!"

"भगैल होगी, या रखैल कहीं की! जब दीदा का पानी एक बार गिर गओ तो···!"

"जने किस जाति की है!"

"और जे नाम कैसा रखो है—गोपी माँ! न मुँह का पता न पेट का!"

"अंग-अंग में चुपड़ें तेल, वृन्दावन में होरी-होरी।"

"जे इसी कूँ तो देख के राजू की माँ मरी है, वरना अभी वो बूढ़ी

माँ मरती थोड़ो—अस्सी साल की उमर, मगर काम करती थी।"

"गोपी माँ! छिः''''कहाँ सन्तोष की माँ, कहाँ जे वन के आई है माँ!"

"जिन्दे न आया बोरिया, सपने न आई खाट!"

"अरी कुलवंती जिन्दे क्यों?" बसन्ता बड़े ही रहस्य-स्वर में बोली, "जे रूपावहू बनी बैठी है—ठाकुरजी की पुजारिन''''यह भी तो! सात चूहे खाय के बिलार भई भक्तिन्!"

"मुआ फिर भी तो पेट न भरो इस पुजारी कू!"

"तब से सन्तोष कित्ती दुखी है!" बसन्ता ने। कहा "सुना है रोती है!"

कुलवंती झलझला उठी, हाथ और आँख मटकाती हुई बोली, "जीजी, तुम भी! कहाँ की बात! वह प्रेम की रुलाई है प्रेम की—सूरज से प्रेम है! बड़ी गहरी छनती है दोनों में—दो शरीर एक आत्मा है दोनों। रोज़ जब तक देख न लें, मिल न लें, आँसू बरसतो है तब तक!"

कुलवंती चुप रह गई।

"अब तो सूरज घर ही में रहता है," बसन्ता बोली। "बड़ी लड़ाई है गई है दिल्ली वाले गोरेमल से। किसी कूँ डरता थोड़े है यह सूरज! दिन-दहाड़े तो चला जाता है सन्तोष के घर, और उसी तरह सन्तोष चली जाती है उसके घर। कोई रोक-टोक भी नहीं है! ज़माना ही बदल गया अब तो।"

"अरे भाई! पढ़ी-लिखी जो इतनी है!"

"कहती है व्याह नहीं करूँगी," बसन्ता ने आँख तरेरकर कहा। "हाय''''हाय! व्याह नहीं करूँगी! मेरी बेटी होती तो मैं जिन्दा ही काटकर ढक देती। इतनी हिम्मत! लेकिन कलमुहाँ यह मुहल्ला ही ऐसो है! आँख न दीदा, खाँय मलीदा! जे चाहे जाकूँ रख ले; काहू धर्म नहीं, समाज नहीं।"

"सो तो है," बसन्ता ने धीरे से कहा ।

"वह जो सन्तोष का मामा है, काशीपुर वाल, जे उसने भी तज दयो राजू पण्डित कूँ ! आना-जाना सब बन्द है ! जे उसने दो-दो शादियाँ तै करी थीं सन्तोष वास्ते ।"

कुलवन्ती बातें करते-करते जब यहाँ पहुँच गई, तो बसन्ता घबड़ाने लगी कि अब वह उसके रम्मन और साहू साहब की लड़की स्वर्णलता-वाली घटना पर न आ जाय । अतएव छेदामल को दवा देने का बहाना करके वह झटपट वहाँ से उठी और अपने घर की ओर मुड़ गई ।

कुलवन्ती महिला आर्यसमाज की सेक्रेटरी है । वह स्त्रियों के भरे समाज में घर-घर का कच्चा-चिट्ठा उदाहरण के रूप में झट सामने रख देती है; ज़रा भी लिहाज़ नहीं करती । अनसूया, सती सावित्री, वेद की नारी के नाम पर वह किसी भी औरत-लड़की को धाँय-धाँय उड़ाने लगती है । इसलिए मुहल्ले की सारी स्त्रियाँ कुलवन्ती से काँपती हैं । लेकिन कुलवन्ती भी उन स्त्रियों से काँपती है, जो उसे जानती हैं, इसीलिए वह अपनी गली और आस-पड़ोस की स्त्रियों के नाम तक नहीं लेती । चेतराम-राजूपण्डित, दोनों घरों से उसके पति सरजू सुनार पर काफ़ी कर्ज भी है, इसीलिए वह और भी इन घरों के नाम नहीं लेती ।

लेकिन बसन्ता कुलवन्ती से बेहद डरती है । डर के ही मारे वह अक्सर कुलवन्ती के घर आती है और बैठी हाँ-में-हाँ और परनिन्दा में भाग लेती है ।

राजू पण्डित ने अपने यहाँ एक बहुत बड़ा बैंक खोला है । बैंक का नाम है 'हरिनाम बैंक ।' इसमें दो तरह के बैंक हैं—एक 'रामनाम बैंक', दूसरा 'कृष्णनाम बैंक ।' राजू पण्डित के पास इन बैंकों के बाकायदा बही-खाते, रसीद-पर्चे और चेकबुक आदि हैं । राजू पण्डित और गोपी माँ

दोनों इस बैंक को चलाते हैं। हिसाब-किताब जोड़ने-घटाने के लिए सरजू का जवान लड़का हीरालाल एकाध घण्टा रोज कार्य कर देता है। उसके लिए उसकी तनख्वाह दो हज़ार कृष्णनाम प्रति सप्ताह है।

दोनों बैंकों के हिसाब और दर अलग-अलग हैं। कृष्णनाम एक रुपये में एक हज़ार की दर से बिकता है, और रामनाम एक रुपये में डेढ़ हज़ार की दर से। राजू पण्डित ने अपने इस बैंक की नियमावली और घोषणा-पत्र छपा रखे हैं—दो आने दाम हैं उसके। उसमें लिखा है कि रामचन्द्र जी विष्णु की बारह कलाओं के अवतार थे, अतएव वे पूर्ण ब्रह्म नहीं थे। वे केवल मर्यादावादी और सन्त रक्षक भगवान् थे। उनमें रसिक बिहारी लाल का पक्ष शून्य था, अतएव बहुत सोच-समझकर, नरक-स्वर्ग का सारा हिसाब लगाकर रामनाम की दर एक रुपये में डेढ़ हज़ार है।

पर कृष्ण भगवान् !

विष्णु के सर्वश्रेष्ठ अवतार, सोलहों अंशी-सोलहों कला के अवतार, अतएव कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं—सच्चिदानन्द, रासबिहारी; रूप, रस, बल, बुद्धि जीवन के सम्पूर्ण पक्षों के ईश्वर। तभी कृष्णनाम की दर एक रुपये में केवल एक हज़ार है।

और गज़ब की बिक्री थी। इस बैंक में काफ़ी रात को जब दुकानदार लोग अपने काम-काज से छुट्टी पाते, तब भीड़ इकट्ठी होती इस बैंक पर। बैंक में उधार खाता बिलकुल नहीं था—सब 'कैश पेमेण्ट।'

"नो क्रेडिट !"

बस्ती के अतिरिक्त, आसपास के गाँवों और मुरादाबाद, अलीगढ़, खुर्जा, हाथरस और दिल्ली तक इस बैंक के नामों की बिक्री होती थी। आसपास के लोग स्वयं आकर ख़रीद ले जाते थे। दूर वाले महाजन मुनीमों द्वारा तथा और दूर देश वाले सेठ व्यापारी डाक द्वारा सौदा कर लेते थे। रामनाम की अपेक्षा कृष्णनाम की बहुत अधिक बिक्री थी।

लेकिन जिस दिन कोई बहुत ज़्यादा 'ब्लैक' करके आता, तो उसे उस दिन 'रामनाम' बैंक की याद आती। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं न! पतितों को उबारने वाले हैं। उनके हाथ में धनुषबाण है। वह रक्षक हैं; प्रजापालक हैं। 'मो सम दीन न हीन हित, तुम समान रघुबीर, अस विचारि रघुबंस मणि हरहु विषम भव भीर।'……'एहि कलिकाल न साधन दूजा, जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा।'

"ठीक है, बिलकुल सही विचार है लाला जी! लेकिन आज 'रामनाम' के भाव में कुछ महँगी आ गई है—बहुत गरमी है आज इस बैंक में। सभी तो अब रामनाम बैंक की ओर दौड़ रहे हैं, मैं क्या करूँ?"

"सो कोई बात नहीं! यह तो मार्केट की बात है जी!"

"पाँच सौ रामनाम मेरे नाम।"

"ब्लैक के हिसाब से कम है पाँच सौ, ढाई हज़ार ख़रीदो, हाँ! गणिका और अजामिल ने इतना ही रामनाम भजा था।"

"ठीक है, ठीक है! वही सही!"

उस रात नारायणदास अपने विक्षिप्त पिता गुलज़ारी लाल को लेकर राजू पण्डित के पास आया। गोपी माँ कुछ फ़ासले पर बैठी कृष्णनाम जप कर रही थीं।

नारायणदास राजू पण्डित से रामनाम की बातों में लग गया, मौक़ा पाकर गुलज़ारी लाल गोपी माँ के मुँह पर झुककर इतने विद्रूपात्मक ढंग से हँसा कि गोपी माँ चीख़कर भागीं।

गुलज़ारी लाल ठहाका मारकर हँसता जा रहा था; और कह रहा था, "बंक वाली बीबी, हुड़दंग देई नाम…"

"आ पड़ोसिन लड़ लें

लड़े मेरी जूती—

जूती मार खसम के।"

नारायणदास ने पिता को कसकर थाम लिया। गोपी माँ थर-

थर काँप रही थी। गली और ठाकुरद्वारे से अनेक लोग वहाँ एक क्षण में इकट्ठे हो गए। गुलज़ारी लाल भीड़ को देखकर एक बार फिर भड़क गए और नारायणदास के काबू से बाहर हो अपने गले की मुद्रा-माला को निकालकर कहने लगे, "यह देखो विक्टोरिया का रुपया—इसका नाम राम है। यह देखो एडवर्ड का रुपया, इसका नाम कृष्ण है। यह देखो लड़ाई का रुपया, यह देखो एक का नोट, इसका नाम म्यूनिसिपैलिटी का चेयरमैन। यह है नई अठन्नी, इसका नाम राजू पण्डित। यह है छेद वाला पैसा, इसका नाम आदमी। यह है पीली दुअन्नी, इसका नाम है समय, जो अब चौकोर चलने लगा है और किस्मत की गोलाई में आकर अँड़स गया है।"

नारायणदास पिता को समझाता हुआ वहाँ से चल पड़ा और गली में उतरकर बड़ी तेज़ी से घर की ओर मुड़ गया।

काफ़ी रात बीत चुकी थी। सन्तोष अपने कमरे में पड़ी जग रही थी। उस घने अन्धकार और रात की ख़ामोशी के पंख बाँधकर कोई सन्तोष के अन्तःक्षितिज पर धीरे-धीरे उतर रहा था—गाता हुआ—पास आता, फिर दूर, बहुत दूर उड़ जाता और उसके संगीत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती। उस संगीत को पकड़ने के लिए सन्तोष दौड़ती, पर वह उसे पकड़ नहीं पाती। फिर उसके ऊपर गेंदे के बड़े-बड़े फूल बरसने लगते और वह उनसे पट जाती। मणियों का मुकुट पहने हुए एक राजकुमार आता और उसे ढूँढ़कर उठा ले जाता। सन्तोष के कमरे का अन्धकार, सन्नाटा, सन्तोष के मन का अन्धकार, उसके प्राणों का संगीत, सबकी एक मोटी पर्त बनती जा रही थी और जो अन्तःक्षितिज पर आ-आकर भाग रहा था, उसे सन्तोष ने सहसा उसी पर्त में बाँध लिया और उसके अंक में सिसककर रो पड़ी।

सूरज! सुना कि नहीं! नहीं सुना? मैं भी तो बताना ही भूल

गई। अब पिताजी मुझे मानने लगे। घर में एक नौकरानी रख दी है। मेरी प्रसन्नता के लिए मुँह देखते रहते हैं। हर क्षण कहते रहते हैं, 'लल्ली ! तू पुण्य है मेरे घर की ! तू सदा खुश रह !'

पर अब मैं पिताजी से अप्रसन्न रहने लगी हूँ। मुझे अब वे बिलकुल नहीं भाते। जी होता है कि उनसे कहीं दूर चली जाऊँ। मामाजी मुझसे नाराज़ हैं, वरना मैं अब तक काशीपुर ही चली जाती। मुझे कतई अच्छे नहीं लगते पिताजी! यह जिसका नाम गोपी-माँ है, इसे यह क्यों लाये अपने संग ? यह औरत है क्या ? इसका प्रयोजन क्या ? मैं विष का घूँट पीकर रह जाती हूँ। जब से यह आई है, मुझे मेरी दिवंगता माँ याद आती है—रुग्ण, क्षयग्रस्त, तिल-तिल कर चुकी हुई, घुँट-घुँटकर मरी हुई। हर क्षण मेरी आँखों में उसीकी साया डोलती रहती है—आँसुओं में डूबी हुई, झुकी-झुकी कराहती हुई, असंख्य मूक अभियोग लिये, पीड़ा लिये।

अभी तो और सुनो सूरज !

यह भी तुम्हीं से कहूँगी।

और कौन है मेरे ?

यह गली, मुहल्ला मुझे बुरा-भला कहे मैं ज़रा भी परवाह नहीं करती। सोचती हूँ अपढ़ हैं, पिछड़े लोग हैं, कामधन्धा नहीं तो और क्या करेंगे ? लेकिन इस गोपी माँ और पिताजी को जोड़कर जो बातें सुनने को मिलती हैं—ये तो मुझे न जाने क्यों बड़ी भयानक लगती हैं।

हाय ! मैं किस पिता की बेटी हूँ !

मेरा माथा झुक जाता है। मैं तत्काल मर क्यों नहीं जाती ? मुझे ऐसा लगता है—यह सब मेरी माँ पर जा रहा है—वह मरकर भी कलंकित हो रही है।

कैसे हैं यह मेरे पिताजी, मैं समझ न सकी।

यह इनकी पूजा !

यह इनका नियम-धर्म !

यह प्रभुनाम बैंक ! छिः, इस बस्ती में इतनी चीजें इतने बुरे-बुरे रूपों में तो बिक ही रही थीं, अब यह प्रभुनाम ही बिकना बाकी था। किस लोक में मरकर जायँगे मेरे पिताजी !

कितनी अभागिन हूँ मैं सूरज ! तुम्हीं समझाओ न मुझे।

और इन बस्ती वालों को क्या कहूँ। कितने मूढ़, अपाहिज और लुंज हैं ! ज़रा भी तो नहीं सोचकर देखते। इन्हें रामनाम बैंक पर और कृष्णनाम बैंक पर कितना विश्वास है ! इन्हें तो धर्म, नरक-स्वर्ग और भगवान् के नाम पर चाहे कोई मुर्ग़ा बना दे।

ज़रा-सा ही कहने पर पिताजी ने मेरा नाम इंटरमीडियेट में लिखवा दिया। मैं तुम्हारे कॉलेज में पढ़ने लगी। पर मैंने तुम्हें अभी तक नहीं बताया। अब मैं नहीं पढ़ूँगी। क्यों पढ़ूँ ? कहलाऊँगी तो आखिर राजू पण्डित की बेटी ही न !

एकाएक सन्तोष को लगा कि उसके अन्तःक्षितिज पर जो मूर्ति मोटी पर्त में बँधी खड़ी थी, वह सबको चीरकर कहीं उड़ गई।

सन्तोष अकेली हो गई—निरी अकेली। वही कमरे का सन्नाटा-अन्धकार, वही उसके भीतर का सन्नाटा और अन्धकार !

जैसे सन्तोष का जी घुट रहा था। उसने कमरे में रोशनी कर ली। कमरे से निकलकर आँगन में चली आई—मुँह, हाथ-पैर धोये—पानी पिया और चुपचाप बड़ी देर तक वहीं आँगन में खड़ी रही।

कमरे में लौटी और एकटक कमरे के बल्ब को देखती रही—बल्ब, प्रकाश, सूरज…सूरज और सूरज !

सूरज की लिखी हुई कुछ चीजें हैं उसके पास—कुछ पृष्ठ-कुछ संकल्प-पत्र। सन्तोष ने उन्हें असंख्य बार पढ़ा है—आज वह फिर उन्हीं को पढ़ने चली।

'सन्तोष !

मैं क्रान्ति हूँ। तू मेरी शक्ति है। मैं संकल्प हूँ, तू अर्चना है, पूजा है उसीकी। हमारे राष्ट्र को स्वतन्त्र होना है। मैं सैनिक हूँ इसी संग्राम का। तुम्हीं ने मेरे माथे पर मंगल तिलक लगाकर भेजा है। मैं युद्ध हूँ, तू जौहर है। मैं समर्पण हूँ, तू आशीष है। हम दोनों उज्ज्वल शुभ्र पृष्ठ हैं वर्तमान के इतिहास के। मेरा स्वतन्त्र राष्ट्र, जन्मभूमि। राष्ट्रगौरव।....'

'मेरी सन्तोष !

इस बस्ती को गौरव देना है। जो अन्ध-विश्वास है, जो जड़ है, प्रतिक्रिया है, नीच-कुटिल और अमानवीय है—उसे ध्वस्त करना है। इस बस्ती को महान् होना है—बस्ती वाला कहलाने में लोगों को गौरव मिले। कोई एक भी मन का छोटा न मिले। सब ऊँचे और ऊँचे, क्रमशः ऊँचे।....'

'मेरी सत्तो !

एक दीवार वह है जिससे घर बनते हैं—महल अटारी और दुर्ग। पर एक दीवार हमारे भीतर है—मन में, इससे हम दिनोंदिन छोटे होते चलते हैं और एक दिन हम स्वयं नष्ट होकर अपने स्वत्व को उसी मन की दीवार में खो देते हैं। हम स्वयं दीवार बन जाते हैं—चलती-फिरती दीवार, जिससे घर उजड़ते हैं, महल, अटारी और दुर्ग भी ध्वस्त हो जाते हैं।

हममें ये दीवारें नहीं हैं। हम तो निरभ्र आकाश हैं। क्रान्ति-मंत्र के दिग्व्यापी संगीत हैं। पर ऐसी दीवारें हमारे चारों ओर हैं। हर श्वास में इन दीवारों की गन्ध है। इन्हें हम मिटा देंगे। हम दोनों का जन्म ही इसी उद्देश्य से यहाँ हुआ है। वरना हम यहाँ क्यों जन्मते ?'

'सत्तो,

मेरी पूजा !

जन्म-जन्म से तू मेरी है। हम एक हैं। तुम्हारे पवित्र सीमंत में मेरे प्राणों का सिन्दूर भरा हुआ है। सुहाग में रची हुई तुम, मेरी

परिणीता ! देख लेंगे समाज क्या करता है हमारा। सत्य बड़ा है या समाज ?'

यह पढ़ते-पढ़ते सन्तोष को ऐसा लगा कि उसका सारा मुँह जल उठेगा। कानों से अग्नि की आँधी बहने लगी। सारा अन्तस् घुटन से टूटने लगा। लगा कि किसी गगनभेदी अज्ञान-शिखर से वह टूटकर गिरी है—गिरती चली जा रही है······चली जा रही है। और उसके भयभीत मन में कम्पित चेतना और तप्त आँखों में वे असंख्य दीवारें नाच रही हैं, जिनसे घर उजड़ते हैं, महल-अटारी ढह जाते हैं।

और दीवारों के भयानक तूफ़ान में सन्तोष बेहोश होकर गिर पड़ी। पर उस स्थिति में उसे कहीं से, किसी की एक लम्बी चीख़ सुनाई दी—माँ की चीख़ ! नहीं······नहीं सूरज की चीख़ ! और उस चीख़ ने सन्तोष को धीरे-धीरे अपनी बाहुओं में लपेट लिया।

ठाकुरद्वारे में सुबह की पूजा समाप्त करके राजू पण्डित घर लौटे—बेटी को देखने। सन्तोष अब तक नहीं जागी। क्या हो गया है उसे ?

कमरे में जाकर देखा तो सन्तोष तेज़ बुखार में बेहोश पड़ी थी।

तीसरे दिन उसकी आँख खुली। सूरज सिरहाने बैठा था, सन्तोष का बुख़ार कम हो गया था, लेकिन दो ही दिनों में वह पीली पड़ गई थी। न जाने कैसा बुख़ार था वह ! सारे शरीर में दर्द, हर जोड़ में पीड़ा ! इस बीच वह जिन मानसिक स्थितियों से गुज़री थी वह और भी घनीभूत थीं। उसने जैसे अनेक सत्यों को अपनी अनुभूति का अंग बनाकर साफ़ देख लिया था। पर उसके पास वाणी न थी यद्यपि साहस आ गया था। इतने ही क्षणों में वह भावुकता की परिधि को बेधकर जैसे आगे निकल गई थी।

अगले दो दिनों में उसका बुख़ार उतर गया। दर्द चला गया,

पर जैसे अपनी उपलब्धि दे गया। मन बहुत हल्का हो गया था।

सूरज सुबह-ही-सुबह उसे देखने आया था। बड़े अधिकार और ममत्व से उसने सूरज को अपने पलंग पर बिठा लिया। बड़ी अर्थभरी निगाहों से वह बार-बार सूरज को देखती, मुस्करा उठती; उसके पीले मुख पर न जाने कहाँ से लालिमा भी दौड़ आती। फिर एकाएक न जाने किस तरह उदास हो जाती। पूरे मुख से हँसती हुई वह बोली, "सुना है तुम घर और दुकान का सारा काम देखने लगे।"

सूरज चुप था।

"तुम पढ़ने भी नहीं जाते।"

सूरज की आँखों में न जाने क्या देखकर सन्तोष चुप हो गई। बड़ी देर तक चुप बैठी रही, जैसे वही माध्यम था; उनके वार्तालाप का और कोई विकल्प न था।

सन्तोष पर फिर वह दीप्ति लौट आई। उसने सूरज को थाम लिया और उसी तरह बोली, "तो मेरे निरभ्र आकाश को दीवारों ने बाँध लिया?" वह कण्ठ में कुछ घूँटने लगी। जो भर आया, उसे छिपाने लगी।

फिर बोली, "मैंने सच देख लिया सूरज, तुम्हारा यह परिवर्तन मेरी वजह से हुआ है। इस व्यावहारिकता की जड़ में शायद मैं हूँ। कितनी तुच्छ! स्वार्थी···।

'इस बस्ती में अगर एक भी कोई महान् हो जाय, तो बस्ती वाला कहलाने में उन्हें गौरव मिले!'······सन्तोष के सामने यह सत्य-रेखा रह-रहकर कौंध रही थी।

"आज एक बात कहना चाहती हूँ सूरज," सन्तोष के स्वर में जैसे एकाएक संगीत बरस पड़ा, "पर कैसे कहूँ! चलो, मुझे अपने परों पर सुला लो, शायद तब मैं कह सकूँ।"

"मुझे पता है, जो तुम कहना चाहती हो।"

"सच!······तो बताओ क्या है?" सन्तोष जैसे रो देगी, "झट

बोलो नहीं तो······बोलते क्यों नहीं ?"

"यही कि मैं तुम्हारे घर न आया करूँ ।"

"हाय हाय ! कितने बेवकूफ हो तुम !" सन्तोष अपने सिर से सूरज की दायीं बाँह पीटने लगी, "नहीं जान सके न ! मैं कहूँ यह कैसे जान गए ! बड़े जानने वाले आये ! मेरे घर नहीं आयेंगे—देखूँ तो कैसे नहीं आते !"

सूरज हँस पड़ा। मुख का सारा तनाव मुस्कान की दीप्ति में पिघल गया।

"जाओ मैं नहीं बोलती," सन्तोष अलग हट गई। "तुमने क्यों ऐसा कहा ? ऐसा तुमने सोचा ही क्यों ? मेरा घर ! कैसा मेरा घर ?"

ओंठ कँपा-कँपाकर वह रो पड़ी।

"लो गाँठ बाँधो मेरे इस आँचल में······तुम फिर ऐसा कभी नहीं कहोगे।" सूरज हँसता रहा और सन्तोष उससे गाँठ बँधाती रही।

"पर तुम क्या कहना चाहती थीं, इसे तो बताया नहीं, बस रोना, रूठना, ज़िद करना, यही याद रह गया," सूरज ने कहा।

"सच, मैं बिलकुल भूल गई। अब तो मुझे ज़रा भी नहीं याद है कि मैं क्या कहना चाहती थी—सच, बहाना नहीं करती हूँ।"

"अच्छा सोचकर देखो, शायद याद आ जाय।"

सन्तोष मुस्कराती-मुस्कराती उदास हो गई। वही पीला मुख, वही खामोश आँखें फिर लौट आईं। तकिये के नीचे सूरज के पत्रों को निकालकर बड़ी देर तक न जाने क्या देखती रही। फिर अदम्य साहस से अपने को बाँधकर बोली, "यहाँ के लोगों को बस्तीवाला कहलाने में गौरव मिले, मैं इस स्वप्न को किसी तरह झुठलाना नहीं चाहती।"

सूरज चुप था।

"मुझे ऐसा लगता है कि मैं तुम्हें निर्बल बना रही हूँ। मैंने तुम्हें बाँध लिया है कहीं। कोई स्वप्न को बाँध ले, यह कितना भयानक है।" सन्तोष काँपने लगी।

कुछ क्षण चुप रहकर वह फिर बोली, "तुम मुझे ब्याहकर—डोले में बिठाकर—अपने घर ले जाओ, यह मेरा गौरव है, तुम्हारा किसी तरह से नहीं। यह विशुद्ध मेरा स्वार्थ होगा—मेरा गौरव, इस बस्ती का नहीं। बस्ती की अन्ध सामाजिकता को इससे कोई मुक्ति नहीं। यहाँ की हर साँस में जो दीवारें हैं, वह इससे किसी तरह से नहीं टूटतीं।"

सन्तोष का सारा मुखमण्डल दीप्त हो आया था। निर्मल नयनों में एक नैसर्गिक छटा उभर आई थी। उसने बढ़कर सूरज के माथे को चूम लिया। उसके चरणों को चूमने लगी, तो सूरज उठ खड़ा हुआ।

उस कमरे में चारों ओर इतना प्रकाश भर रहा था कि उसके लिए असह्य था। इस प्रकाश में एक अद्भुत भार था, जिसे वह वहन नहीं कर पा रहा था।

वह भरी आँखों से सन्तोष को देखता रहा।

४

चेतराम अब गद्दी पर बैठने लगा था। ईशरी की गाँठों का आधा दर्द चला गया था, पर सूजन में ज़रा भी अन्तर नहीं था। वह स्वेच्छा से अब पैरों को हिला-डुला लेता था, पर पैरों को न वह मोड़ ही पाता था न उनके सहारे खड़ा ही हो सकता था।

शेष स्वास्थ्य भी कुछ सुधर गया था। लेकिन वह अब भी रोगी-जैसा लगता था, यह सबसे अधिक चिन्ता की बात थी। उसकी चलने की बड़ी इच्छा होती थी और उस उत्साह से वह कभी-कभी बुरी तरह से मथ भी उठता था।

वह मधू बुआ से बैसाखी बनवाने के लिए कहता तो बुआ फूट-फूट-कर रोने लगती। इस सम्बन्ध में जब वह सूरज से कहता तो सूरज दौड़कर किसी नये डाक्टर, नये हकीम-वैद्य के पास जाता और नये

उत्साह से कहता, "फूफा, अब तुम बहुत जल्द चलने लगोगे।"

एक दिन दोपहर को आँगन की धूप में ईशरी अपनी गाँठों में कोई दवा लगवाए पलंग पर लेटा हुआ था। नीचे एक ओर मधू बुआ बैठी कोई दवा घोंट रही थी और पास ही रूपाबहू बैठी अपने बाल सुखा रही थी—घने, लम्बे-लम्बे केश—जिनमें से आधे बाल पककर सफेद हो चले थे, विशेषकर माँग पर। कनपटियों पर के बाल तो बिलकुल सफेद हो गए थे।

निस्तब्धता को भंग करती हुई रूपाबहू बोली, "श्मशान पर एक औघड़ बाबा आये थे—जो ज़िन्दा साँप को पकड़कर उसकी जीभ निकाल लेते थे। बड़ा तेज और प्रताप था उनका। अगर वे कहीं मिल जाते तो यह गठिया का रोग एक मिनट में चला जाता। ऐसी आग थी उनकी आँख में, ऐसा देखते थे वह कि पहाड़ काँप जाय। रोगी को चिमटे से मारते थे वे। बड़ी धार थी उनके चिमटे में, झल-झल चमकता था; और वैसे ही उनका ललाट चमकता था।"

मधू बुआ ज़मीन में सिर गाड़े औषधि तैयार कर रही थी। पर ईशरी पर रूपाबहू की बातों की अजीब प्रतिक्रिया थी। जैसे-जैसे वह औघड़ बाबा के अंगों की प्रशंसा कर रही थी, उसी क्रम से ईशरी अपने हाथ, आँख और ललाट को स्पर्श करता चल रहा था, जैसे उन अंगों को वह फिर से पहचान रहा हो।

रूपाबहू कहती जा रही थी, "बड़ा सत्य था उस औघड़ बाबा में। रोग-दुःख तो उन्हें देखते ही भागता था। सचमुच नोट बनाते थे—एक रुपये के नोट से दस रुपये का नोट, और दस वाले नोट से सौ रुपये का नोट। यहाँ के लोगों ने खूब बदनाम किया औघड़ बाबा को। कहते थे कि औघड़ बाबा ठग थे। वे हज़ारों रुपये ठग ले गए। उन लोगों ने अपमान किया होगा बाबा का, तब बाबा ने उन्हें श्राप दे दिया होगा। उन्हें किसका डर? कितना क्रोध था उनमें, बाप रे बाप! ऐसा पुरुष हो तो लोगों को पता चले।"

"ऐसे औघड़ ठग ही होते हैं, मेरा भी यही ख़याल है," ईशरी ने कहा, "और ऐसे ठगों को कुछ फलता थोड़े ही है! दस हज़ार वे ठगकर कहीं से ले गए, कोई उनसे भी बड़ा ठग उन्हें मिल गया। खूब मारा भी और सब छीन भी लिया।"

मधू बुआ ने ईशरी को देखा। दृष्टि मिलते ही वह चुप रह गया। झट कहने लगा, "मुझे कमरे में ले चलो, मुझे बेहद धूप लग रही है। सारे बदन में चुनचुनाहट हो रही है, जैसे कोई काँटा चुभ रहा हो।"

उसी क्षण सूरज आया। उसने देखा, रूपाबहू और मधू बुआ के सहारे ईशरी फूफा भीतर के कमरे में जा रहे थे।

रात को सोते समय बुआ ईशरी की गाँठों में देशी शराब मलती थी। उस रात, तब तक सूरज भी वहाँ बैठा ईशरी से बातें कर रहा था।

बुआ शराब की बोतल लेने गई, पर उसमें तो एक बूँद भी शराब न थी। कल तो आधी बोतल भरी थी।

बुआ ने ईशरी से पूछा।

उसने बताया, "कल रात दर्द की वजह से मैंने सारी शराब गाँठ में सुखा दी।"

फिर आज रात को कैसे मालिश हो? बुआ सोचने लगी, यह अपने-आप क्यों गाँठ में मालिश करते हैं? मुझे जगा क्यों नहीं लेते? मुझसे संकोच करने लगे हैं क्या? आज तीसरी बार ऐसा हुआ है—आधी-आधी बोतल शराब अपने हाथों गाँठ में मालिश कर लेना।

बुआ मन-ही-मन सोचती हुई चुप रह गई, जैसे वह धर्म की कोई बाज़ी हार गई हो।

ईशरी ने बुआ की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। वह सूरज के साथ बहस कर रहा था।

सूरज ने पूछा, "कांग्रेस क्या है?"

"मुझे नहीं पता," ईशरी ने उत्तर दिया, "मैं क्रान्तिकारी दल में था, मेरी पार्टी को हिंसा और विनाश में विश्वास था।"

"आपकी पार्टी का विश्वास था, पर आपका व्यक्तिगत विश्वास क्या था?" सूरज ने प्रश्न किया।

"वही, जो पार्टी का था।"

"अतएव आपने जो व्यक्तिगत रूप से इस स्वतन्त्रता-संग्राम में हत्याएँ कीं, विनाश किया, वह सब आपकी पार्टी ने किया, आपने नहीं," सूरज कहता जा रहा था। "पर इस संग्राम में आपका निजी कंट्रिब्यूशन क्या है, मैं इसे जानना चाहता हूँ।"

"अपने निजत्व का पार्टी के लिए बलिदान।"

"और पार्टी का कंट्रिब्यूशन?"

"देश को ग़ुलामी की ज़ंजीरों से मुक्त करना।"

"अर्थात् ग़ुलामी की ज़ंजीर तोड़ने का कार्य और श्रेय आपकी पार्टी को है, आपको नहीं। तो आप महज़ साधन थे, प्रेरणा नहीं, आप क्रिया थे गति नहीं।"

ईशरी चुप था।

सूरज ने दूसरी बात उठाई, "आप कहते हैं कि अब आपकी पार्टी का कार्य समाप्त हो गया। शिमला कॉन्फ्रेंस के बाद देश को अपनी इंटरिम गवर्नमेण्ट प्राप्त हो गई। अस्त्र और आतंक का कार्य समाप्त हो गया—अंग्रेज़ी हुकूमत ने आपसे हार मान ली। यह सब ठीक है। पर आगे भविष्य में आपका क्या कार्यक्रम है?"

"कुछ नहीं," ईशरी कहने लगा, "हमारे लीडर ने संन्यास धारण कर लिया।"

"आप लोगों को विदा देते समय उन्होंने कुछ कहा? उपदेश दिया? कोई आज्ञा दी?" सूरज ने पूछा।

"उनसे किसी की भेंट कहाँ हुई। जिस तरह सब अण्डरग्राउण्ड थे, उसी तरह वह भी थे, बल्कि वह तो सदा से अण्डरग्राउण्ड थे।"

"और अब संन्यासी हो गए!" सूरज कुछ मुस्करा आया। "दर्शन की खोज में संन्यासी हो गए। पार्टी में कोई दर्शन नहीं था। और हो कहाँ से? वहाँ कोई व्यक्ति थोड़े था, वहाँ तो महज़ पार्टी थी।"

बड़ी देर तक दोनों चुप रहे। बुआ सो जाने के लिए बार-बार आग्रह कर रही थीं।

ईशरी अपनी चुप्पी तोड़ने के लिए बोला, "मेरी पार्टी ने अपना काम पूरा कर दिया, अब शेष काम 'कांग्रेस' का है।"

"कांग्रेस क्या है?" सूरज फिर मूल और आदि प्रश्न पर रुक गया।

"तुम्हीं जानो," ईशरी ने कहा, "तुम तो यहाँ के स्टूडेण्ट कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी, अध्यक्ष, सब-कुछ हो।"

"हूँ नहीं, था कभी," सूरज ने उत्तर दिया।

फिर सूरज चुप हो गया—एक चुप हज़ार चुप, जैसे उसे बहुत-बहुत कहना हो। ईशरी को नींद आने लगी थी। बुआ सो चुकी थीं।

दूसरे दिन, ईशरी की दवा के साथ-साथ गाँठ की मालिश के लिए शराब की दूसरी बोतल आई।

फरवरी के अन्तिम दिन थे, फिर भी दोपहर की धूप बुरी नहीं लग रही थी। बड़ी ठण्डी पहाड़ी हवा रह-रहकर बह रही थी।

बाहर सेहन में आराम-कुरसी पर लेटा सूरज अख़बार पढ़ रहा था। एकाएक चौराहे पर उसे बच्चों का शोर सुनाई दिया।

वह टहलता हुआ चौड़ी सड़क से आगे गया। चौराहे के आगे उसने देखा कि उसका परम मित्र मिठाईलाल बच्चों से घिरा हुआ बुरी तरह से खीझ रहा है।

बच्चे शोर मचाकर गा रहे हैं:

लंगड़-मचंगड़ को तीन मेहरी
एक कूटै
एक पीसै
एक भाँग रगरी ।

और यह भी गा रहे थे अन्त में :

लँगड़ा बैठा रोवै
आपन दीदा खोवै ।

सूरज बड़े आवेश में दौड़ा। बच्चों की भीड़ में झपटकर उन्हें मारने लगा। सब भागकर इधर-उधर चम्पत हो गए, पर गलियों में से बच्चों की आवाज़ अब भी आ रही थी :

लँगड़ा झेल झेल झेल !
लँगड़ा झेल झेल झेल !!

सूरज मिठाईलाल को अपने संग लिये उसके घर चला गया, पर इस घटना से वह कहीं इतना आहत हुआ था कि बिलकुल चुप रह गया।

मिठाईलाल शाम को भाँग खाने लगा है, लेकिन इन बच्चों को कैसे पता ? और पता भी हो तो उनकी इतनी हिम्मत कि मिठाईलाल के पीछे लग जायँ !

मिठाईलाल—झण्डावीर !

आहत मन सूरज घर लौट आया। अब वह साफ़ देखने लगा था स्वतन्त्रता-संग्राम की उपलब्धि। स्टूडेण्ट कांग्रेस का झण्डावीर एक ओर है और क्रान्तिकारी दल का ईशरी फूफा दूसरी ओर।

शाम के धुँधलके में वह अकेला उसी सेहन में लेटा हुआ था—शान्त-एकाकी; अख़बार को सिर पर ओढ़ लिया था, जिससे मुँह-आँख सब ढक गए थे। होरी और हिरनू के सहारे भीतर से ईशरी आया और वहीं पलंग पर बैठ गया।

"क्या बात है, तबीयत तो ठीक है न ?" ईशरी ने पूछा।

सूरज मुँह खोलकर झट प्रकृतिस्थ हो गया, मुस्कराने लगा—ईशरी को बाहर अपने सामने आया देखकर।

सूरज ने बिना किसी प्रसंग के कहा, "कल मैंने जो आपके लिए कहा था, आपकी पार्टी के लिए कहा था, वह सब मैंने अपने लिए कहा था। मैं जिस दल या संस्था में था, वह महज़ वाहन था बड़ों का। हाईकमांड कोई निर्णय लेती, वह निर्णय ऊपर से चलता, रेंगता हुआ नीचे तक फैल जाता और हम सब उसमें बह जाते। हमने कभी अपने व्यक्ति में अपने-आपको नहीं सोचा, कभी हमें अंग्रेजों के आमने-सामने आकर मुठभेड़ करने को नहीं मिला। हम कभी भी उस 'फ्रण्ट' पर नहीं पहुँचे, हमने उस फ्रण्ट को अपनी आँखों से नहीं देखा जहाँ हमारा वास्तविक युद्ध हो रहा था। हर बड़ा अपने छोटे से श्रद्धा लेता रहा, मालाएँ पहनता रहा, जै-जैकार पाता रहा, और अपने-आप को गौरव देता रहा। यह ऊपर नीचे का मानव-समाज जो स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझ रहा था—उसके भीतर कभी कोई आन्तरिक दृष्टि नहीं थी; बाह्य-दृष्टि भले ही हो, जिसे हम स्वतन्त्रता-संग्राम कहते हैं। पहले व्यक्ति का बनवास हुआ, फिर उसके आन्तरिक समाज का और इससे राजनीतिक पार्टियाँ उदित हुईं, बड़े-बड़े शब्द कहे गए—बलिदान, उत्सर्ग, महान्, महात्मा, गौरव, क्रान्तिदूत, दीवाने, शहीद, अमर, और ऐसे ही असंख्य शब्द। पर ये शब्द अधूरे हैं, क्योंकि ये हमारे जीवन से नहीं निकले—दिये गए, बाँटे गए। ये शब्द अर्थहीन हैं, क्योंकि इनके पीछे कोई दर्शन नहीं, कोई अनुभूति नहीं। ये शब्द, ये पार्टियाँ आकांक्षा जगाती हैं, परितृप्ति नहीं देतीं। हमारा जो कोमल है, शुभ है, मानवीय है, उसका अपहरण कर लेती हैं और फिर उन्हीं को ढूँढ़ने के लिए रास्ता बना देती हैं—ऐसा रास्ता, जो महज़ चलने के लिए है, आगे बढ़ने के लिए नहीं।"

इस बीच ईशरी न जाने कितनी बीड़ियाँ पी चुका था और उसकी आँख में इतनी गहरी ख़ामोशी थी कि सूरज को चुप हो जाना पड़ा।

सूरज आहत था, विषाद से भरा था, पर उसकी वाणी में कहीं निराशा न थी केवल दर्द-ही-दर्द था।

वह फिर कहने लगा, "जो हमारे नेता थे, प्रेरणा थे वे अब अपनी सरकार बना रहे हैं; जो हमारे रास्ते थे वे मुड़कर समाप्त हो गए। अब हम किस पर चलें, किससे प्रेरणा लें?"

"छोड़ो भी इन बातों को," ईशरी ने कहा, "इतना ही सोचो कि इस महान् कार्य में हमने भी इतना सहयोग दिया। हमने देश का इतिहास बदल दिया।"

"लेकिन अपना इतिहास कहाँ बदला?" सूरज बोला। "हमारा जीवन कहाँ तक गतिवान हुआ? हम कहाँ तक प्रेरित हुए?"

दोनों निरुत्तर थे।

फिर सूरज ही बोला, "आज वह खोखलापन फटकर उभर आया, जो न जाने कब से जै-जैकारों से, फूलों से, बड़े-बड़े शब्द-समूहों से पटा हुआ था।"

"यह सब मेरी पार्टी में नहीं था," ईशरी बोला।

"सारे युग में था," सूरज ने तेज़ स्वर में कहा। "फूफा, एक बात मैं और आपके सामने रखना चाहता हूँ। लीडरों ने कहा, 'क्रान्तिकारी दल का कार्यपक्ष समाप्त हो गया।' कांग्रेस ने कहा, 'अब हमें शान्त होकर सोचना है, हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्त हो रहा है। नवयुवक, अनुशासन में आओ......आदि-आदि।' क्रान्तिकारी-दल का कार्य समाप्त हो गया, यह आप कहते हैं, लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि क्रान्तिकारी व्यक्ति का कार्य कहाँ समाप्त हुआ? उसके व्यक्तित्व में जिस अमानवीय हिंसा, विनाश, विप्लव, अराजकता और अत्याचार के कीटाणु बो दिये गए हैं, वे कहाँ से समाप्त होंगे? जो उनके जीवन के अबाध अंश बन गए हैं, वे अब कहाँ जायँगे? कांग्रेस वालंटियर, स्टूडेण्ट कांग्रेस गर्मदल, सोशलिस्ट दल और ऐसे असंख्य दल जिनसे स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ा गया—असहयोग, दमन, सशस्त्र क्रान्ति, झूठ, धोखा, छल, प्रपंच

और विश्वासघात, आत्मघात जैसे तत्त्व, व्यक्तित्व के अमिट अंश बन गए, वे अब कहाँ लेकर जायँ अपने-आप को ? उन तत्त्वों को खूराक चाहिए—'इंडिविजवल राशन'—जो अब तक उन्हें पार्टियों से, स्वतन्त्रता-संग्राम की प्रक्रिया से मिलता रहा है।"

"तो क्या पार्टियों ने अपने मेम्बरों और कार्यकर्ताओं को नौकर रख छोड़ा था ?" ईशरी ने कहा। "ये सब अपने मन की बातें थीं, अपना-अपना जोश था, भक्ति थी।"

"कुछ नहीं थी, महज़ भावुकता थी," सूरज के स्वर में दर्द उभर आया, "जिसका बड़ी बेरहमी से शोषण हुआ।......नौकर को तो फिर भी तनख़्वाह मिलती है, इन्हें तो कुछ भी, कहीं से भी नहीं मिला; न विवेक न कोई दर्शन, न अनुभूति न आत्म-गौरव ! जो-कुछ पास था, बस लुटा आए। कोई अंग से लँगड़ा, लूला और घायल होकर लौटा, कोई अपने मन से, कोई अपने चरित्र से और कोई अपने सर्वस्व से। स्वतन्त्रता-संग्राम हम जीत आए, लेकिन घर फूँककर, परिवार को लुटाकर, अपने को बनवास देकर, जो अत्यन्त कोमल, शुभ और परम मानवीय था, उस सबकी हत्या करके; अब कहाँ जायँ ?"

"मुझे बड़ा दुख है सूरज कि तुम इतने निम्न धरातल से ये सारी बातें सोचने लगे हो," ईशरी ने ग्लानि के स्वर में कहा।

"मैं सोचने तो लगा हूँ फूफा ! तुम मुझे आशीर्वाद दो।" सूरज का स्वर भारी हो गया। "और मैं चरण छूकर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम भी सोचो फूफा ! यही वह अमृत है, ज्योति है, जिससे अपनी दृष्टि मिलती है, आगे का रास्ता बनता है; नहीं तो जो हम अपने खोखले व्यक्तित्व में बाँधकर ले आए हैं न, उनसे हम एकदम टूट जायँगे, सर्वथा बिखर जायँगे।"

सूरज उठ खड़ा हुआ और अनायास ही सड़क पर उतर आया; निरुद्देश्य इधर-उधर घूमने लगा।

रात बुआ को कुछ देर में छुट्टी मिली। जब वह कमरे में आई, ईशरी फूफा सो गए थे।

फिर भी बुआ शराब की बोतल खोलकर फूफा की गाँठों में धीरे-धीरे मालिश करने लगी।

ईशरी ने पूछा, "रूपाबहू का क्या हाल-चाल है?"

"ठीक ही है।"

"अब तुम्हें पतिव्रत की शिक्षा नहीं देती?"

"जब से सूरज भइया ने डाँटा है, तब से बन्द है।"

कुछ देर चुप रहने के बाद मधू बुआ ने कहा, "एक बार एक औघड़ बाबा यहाँ के श्मशान बाग में आये थे, रूपा भाभी अक्सर उनकी चर्चा करती हैं। कहती है कि अगर वे फिर कहीं मिल जाते, तो उनसे तावीज़ बनवाती—एक मेरे लिए, एक तुम्हारे लिए और एक अपने लिए।"

"उनसे पूछो कि मैं तावीज़ बना दूँ?" ईशरी ने कहा। "पार्टी में हम लोग यह सब काम किया करते थे—अण्डरग्राउण्ड रहकर......।" ईशरी ने जैसे अपना मुँह बाँध लिया, और उसे हँसी आ गई, फिर वह उदास हो गया।

"एक बात बताऊँ?" बड़ी देर बाद ईशरी बोला। "लेकिन माफ़ करना मुझे तुम। वह औघड़ बाबा मैं ही था।"

बुआ का मुख आरक्त हो आया। टूटी हुई मूर्ति की भाँति वह अर्थहीन भाव से देखने लगी।

बेहद थके स्वर में बुआ ने पूछा, "तो नोट भी तुम्हीं ने बनाया था?"

ईशरी का केवल सिर हिला।

"तो वह बीस हज़ार रुपये के नोट तुम्हीं ठगकर ले गए थे?" बुआ का दर्द पागल हो उठा, "यही करने गये थे तुम? यही तुम्हारा स्वतन्त्रता-संग्राम था? इसी अस्त्र से तुम लड़ने गये थे?"

बुआ निःशब्द रोने लगी, लेकिन स्वर अपनी गम्भीरता में निर्वि-कार बना रहा, "तुमने यह बताया क्यों ? तुम न बताते मुझे ? क्यों बताया तुमने ? जिस छल-प्रपंच से अपने-आपको बदलकर तुम औघड़ बाबा के रूप में यहाँ आये थे, उसी तरह इस बार भी आये होते; और भी लूटकर इस बस्ती से ले जाते। मैंने तुम्हें तब भी नहीं पहचाना था, अब भी न पहचानती। हाय! तुमने मुझे अपना सत्य क्यों बताया ?"

ईशरी अपनी सारी क्षमता से बुआ को आश्वस्त करना चाह रहा था, "पूरी पार्टी अण्डरग्राउण्ड थी। पार्टी को उससे कहीं अधिक रुपयों की आवश्यकता थी। पहले पूरी बात तो सुनो...."

"आग लगे तुम्हारी बात में! तुम्हारी पार्टी में और मेरे करम में!"

बुआ शिशुवत् रो रही थी। उसका कलेजा फटकर उसके आँसुओं में बहना चाह रहा था। घायल हरिणी की तरह वह चीखना चाह रही थी, पर अब बुआ को सूरज का वह घर पराया लग रहा था—दूसरे का घर, जहाँ वह ग़रीब चीखने के अधिकार से भी अपने-आपको वंचित पा रही थी।

"तुम्हीं ने वह कुकर्म क्यों किया ?" बुआ फिर तड़पी, "और इसी बस्ती में आकर किया। रुपया वसूलने का संसार में यही ढंग रह गया था, और यही बस्ती रह गई थी जहाँ मैं थी, जहाँ सूरज और चेतराम थे ? और अपना जादू-चमत्कार दिखाने के लिए तुम्हें यही घर था, यही रूपाबहू थी ? बात भी तो विश्वासघात !"

बुआ फूट-फूटकर रोने लगी, "मेरी तपस्या भी मेरी तरह बाँझ निकली। सब झूठ था।......रूपाबहू ने मुझ पर जो कलंक लगाया था, बिलकुल सही लगाया था। मेरा वही दरजा था, मुझे वही मिलना चाहिए था। मेरा सारा गुमान, सारी तपस्या झूठी थी, सत्य केवल वही है जो रूपाबहू कहती थी।"

मधू बुआ एक कोने में मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोती रही।

ईशरी कुछ देर तक उसे देखता रहा, मनाता रहा, फिर मुँह ढककर सो गया।

आधी रात को जब ईशरी को करवट लेना हुआ, तब उसकी आँख खुली। कमरे की रोशनी बुझी न थी। उसने बैठकर देखा, मधू उसी कोने में गिरकर सो गई है।

ईशरी करीब एक घण्टे तक उसी तरह चुपचाप बैठा रहा, जैसे वह उस कमरे में न होकर कहीं अण्डरग्राउण्ड की स्थिति में हो—अकेला, असम्पृक्त, भेष बदले। गाँठ में मालिश करने के लिए शराब की बोतल पलंग के नीचे थी। ईशरी ने उसे उठाया और उसे लिये हुए वह अपने लिहाफ़ में ढक गया।

फिर कुछ शराब ज़मीन पर गिराकर उसने ख़ाली बोतल को धीरे से लुढ़का दिया।

उसी क्षण मधू बुआ भागकर कमरे से बाहर निकल गई, जैसे वह फ़र्श पर भी नहीं पड़ी थी, बल्कि खड़ी थी, उसी तरह कोने में मुँह छिपाए।

अगले दिन मधू बुआ इधर-उधर जैसे सबसे छिपती रही; करीब चार घण्टे तक सन्तोष के पास बैठी रही; उसे नये ढंग का ब्लाउज़ काटना सिखाती रही। उसने एक भजन गाकर उसे सुनाया :

नैहर हमकों न भावै
साईं की नगरी परम अति सुन्दर
जहँ कोई जाइ न आवै
दरद यह साईं को सुनावै।

शाम को चौके में जा घुसी तो रात को निकली—तरह-तरह के नाश्ते बनाती रही।

अगले दिन वह सूरज के लिए रूमाल बनाने बैठ गई और न जाने कितने रूमाल बनाती रही।

दूसरे दिन सूरज ने जैसे मधू बुआ को पकड़ लिया। वह बुआ से

पूछने आया था, फूफा की गाँठ के विषय में, मालिश के लिए शराब के बारे में। यद्यपि बुआ सारे प्रसंग में निश्छल ढंग से हँसती रहीं, लेकिन जब सूरज ने बुआ से यह कहा कि 'बुआ तुमने बैसाखी के लिए मुझसे न कहकर सरजू सुनार से क्यों कहा ?' तो बुआ की आँखों में उसने एक क्षण के लिए वही भयानक उदासी देखी जो ईशरी की आँखों में थी।

बुआ ने झट कहा, "सुना है, दिल्ली से लाला गोरेमल फिर आने वाले हैं।"

"तो तुमसे क्या ?" सूरज ने कहा, "देखो बुआ. मुझसे अपनी बातें न छिपाया करो हाँ, नहीं तो मैं······।" सूरज का मुँह आरक्त हो गया।

बुआ ने हँसकर कहा, "तुम भी तो मुझसे अपनी बातें छिपाते हो; बोलो नहीं छिपाते ? कह दूँ ? सन्तोष पर न बरस पड़ना हाँ ! सन्तोष को तुम पत्र लिखते थे, मुझे क्यों नहीं लिखा, एक भी नहीं।"

यह कहते-कहते बुआ हँसकर लोट पड़ी—अपूर्व हँसी।

"अच्छा चलो, तुम मुझे अपने दो-एक फोटो दे दो—एक वह—मालाओं से पटे हुए विद्यार्थियों के सम्मुख भाषण दे रहे हो—और एक वह जो सन्तोष के संग हैं। हाँ, अब दे दो भाई, बुआ माँग रही है, समझ लेना।"

"मैं तुझे क्या दे सकता हूँ बुआ ?" सूरज बोलते समय काँप गया, "काश मैं तुझे सचमुच कुछ दे सकता ! बुआ, तेरे योग्य क्या सचमुच है मेरे पास कुछ ? अगर है तो तुम उसे माँग लो बुआ, लेकिन आज्ञा देकर, हाँ, शर्त यही है।"

"तुमने तो मुझे इतना दिया है सूरज कि मैं तेरी बुआ से माँ हो गई।" बुआ का मुख चमक आया था। "संसार के लोग कहें कि मधू को कोई सन्तान नहीं, पर वे क्या जानें, मेरा पुत्र सूरज है।"

बुआ ने बढ़कर सूरज को अपने अंक में भर लिया और अबाध गति

से उसका माथा चूमने लगी ।

"नहीं बुआ, यह बात ग़लत ! तू मुझे कहाँ-से-कहाँ बहा ले जाती है ! तुझे आज कुछ आज्ञा देनी ही होगी।"

बुआ मुस्कराती रही, मुस्कराती रही, जैसे वह मुस्कान की ही बनी हो। सूरज बेहद गम्भीर खड़ा था।

"अच्छा तो एक चीज़ मैं तुमसे माँगती हूँ सूरज !" बुआ की गति देखो, वह अब भी मुस्करा रही थी, "जब तुझे कभी सत्य और विश्वास की आवश्यकता पड़े, तो उसे ढूँढ़ने तू कहीं, किसी के पास न जाना—न किसी धर्मग्रन्थ में, न किसी मन्दिर-देवालय में, न किसी महात्मा के पास; तू केवल रूपाबहू के पास जायगा। यहाँ सत्य केवल वहीं है।"

"यह कैसी आज्ञा है बुआ ? यह क्या माँग रही हो तुम ? कैसी हो रही हो आज ?" सूरज मथ उठा अपने-आप में ।

"बिलकुल ठीक हूँ," बुआ ने छेड़ते हुए कहा। "बोलो, जो माँगा है बुआ ने, देते हो ?"

"स्वीकार करता हूँ बुआ, लेकिन एक प्रश्न पूछकर।"

"वह क्या ?"

सूरज बुआ के चरण छूकर बोला, "सत्य केवल मेरी माँ, रूपाबहू है.........। रूपाबहू ने तुम पर जो कलंक लगाया था, क्या सत्य का रूप वही है ? वह सत्य था क्या ?"

"वह सत्य ही नहीं, सत्य का दर्शन था।"

"मैं समझ नहीं सका ?"

"मैं जो कभी नहीं बताना चाहती थी, आज बता रही हूँ। वह जो यहाँ श्मशान पर एक बार औघड़ बाबा आये थे न, जिन्होंने बीस हज़ार के नोट ठगे थे, वह तुम्हारे फूफा ही थे। अभी और सुनो सूरज ....जो तुम रोज़ एक बोतल देशी शराब लाते थे न, टाँग में मालिश के लिए, जिसे वह कहते थे कि 'मैंने गाँठ में मल लिया, बिल्ली-चूहे

ने गिरा दिया', वह शराब वे स्वयं मुझसे चुराकर पीते रहे हैं......। अभी और सुनो न ! उन्हें गर्मी की बीमारी है।"

सूरज खड़ा रह गया, जैसे बुआ ने उसे दीवार में लगाकर उसमें सिर से पैर तक कीलें जड़ दी हों।

बड़ी देर तक चुप रहने के बाद बुआ फिर बोली, "मेरी रूपा-भाभी ने जो मेरे विषय में कहा था, वह मुझे कलंकित करने के लिए बिलकुल नहीं कहा था। वह मेरे भ्रम को तोड़ने के लिए एक कटु बात कही थी। मेरी झूठी तपस्या का पर्दाफाश करने के लिए कहा था। इस प्रसंग में मुझे वही मिलना चाहिए था—इसकी ओर वह एक भयावह, पर सहज संकेत था। वह सारे सत्य का दर्शन था सूरज !"

बुआ का मुख स्याह पड़ गया, "तुम्हारे फूफा का चरित्र, मेरा चरित्र और रूपाभाभी की वह बात—सबमें से सत्य का वही दर्शन निकलता है। तभी मैं जान गई, सत्य केवल रूपाभाभी के पास है। उसी के पास वह दृष्टि है जो सबको बेधकर देख लेती है।"

सूरज निस्तब्ध खड़ा था।

"तेरा प्रश्न समाप्त हो गया सूरज ! मैंने उत्तर भी दे दिया।" बुआ का स्वर काँप रहा था, "अब बोलो, जो बुआ ने माँगा है, उसे देते हो ?"

"देता हूँ बुआ ! देता हूँ...!"

सूरज वहीं दीवार पर टिक गया और बुआ ने सूरज की बाँह पकड़ ली। दोनों उसी तरह भित्ति-चित्र की भाँति खिंचे रह गए, जैसे किसी ने उन दोनों को अमिट अक्षर बनाकर दीवार में उनसे एक करुण गीत लिख दिया हो—हे पुरुष ! हे पतिव्रता ! गौरव वह नहीं है जिसे तुम 'सत्य' कहते हो, आदर्श और महान् कहते हो, पर वह है जो बेहद कुरूप और कटु यथार्थ की शक्ल में तुम्हारे चारों ओर लिपटा हुआ है। तुम्हारा गौरव है कि तुम अब भी लड़ते हो। तुम्हारी महानता

हैं कि तुम अब भी उन्हीं रास्तों से गुज़रते हो, जहाँ तुम घायल हुए हो।

सुबह रूपाबहू सूरज के पास आई। उसे जगाकर पूछा, "बुआ और फूफा कहाँ गये ? कमरे में तो नहीं हैं। कहाँ गये दोनों आखिर ?"

रूपाबहू व्यथित थी। सूरज निर्विकार देखता रहा! उठा, और माँ के संग ईशरी के कमरे में गया। चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखता रहा, जैसे वह रिक्त कमरे के हर कोने में कुछ ढूँढ़ रहा था, कुछ देख रहा था और अपने मन को विश्वास दे रहा था—वह मन, जो इस घटना से हतप्रभ न हुआ, आश्चर्यचकित न होकर जो इसे अपनी स्वीकृति में बाँध ले गया, पर जो कहीं बेहद उदास हो गया, जैसे कोई दर्द बिना बताए उसे छोड़कर चला गया।

"चलो ढूँढ़ लायें उन्हें," रूपाबहू ने कहा। "उदास क्यों होते हो ? वे कहीं टहलने न गये हों।"

सूरज निःस्पंद देख रहा था—दो नंगी चारपाइयाँ, सिरहाने बिस्तरा लपेटा हुआ, फ़र्श पर लुढ़की हुई शराब की बोतल, खुली आलमारी में दवा की शीशियाँ, मरहम, लेप और पट्टी के कपड़े। ईशरी के पलंग के पावे में कई तावीज़ें, पाटी में बँधी हुई लोहे की कटार और कमरे की खूँटियों पर बुआ के फटे हुए, मैले-गंदे, तेल में डूबे हुए जम्पर, और साड़ियाँ। ईशरी फूफा के कटे और मुड़े हुए जूते और एक टूटी हुई कंघी। "वे हमें छोड़कर चले गये यहाँ से।"

सूरज कमरे से बाहर निकल आया। रूपाबहू सूरज को देखती रह गई। सम स्वर में बोली, "लगता है मेरी वजह से चले गए। मैंने ही तो मधू को वह कहा था, न जाने कैसा चित्त हो गया था उन दिनों!"

सूरज न जाने कहाँ देख रहा था।

"न जाने कैसे गये होंगे!" रूपाबहू का स्वर कुछ भारी हो आया,

"पता नहीं, कहाँ गये होंगे ! किसी को नहीं बताया। ऐसे क्यों चले गये ? तभी मैं कहूँ, मधू ने एक दिन में सरजू सुनार से बैसाखी क्यों बनवाई ? कैसे गये होंगे वे ?"

"मैं कहता हूँ चुप रहो !" सूरज क्रोध से चीख पड़ा और उसी सूने कमरे में फिर चला गया, और देखने लगा जैसे हर कोने में बुआ खड़ी हैं, हर बिन्दु पर ईशरी फूफा खड़े हैं। पूरी उदासी और सन्नाटे में उनकी आवाज़ें सुनाई दे रही हैं; वे फुसफुसा रहे हैं।

उसी स्वर में सूरज का मन बोला, "सब छोड़ गईं बुआ, संग कुछ तो ले जातीं।"

बड़ी देर के बाद सूरज कमरे से बाहर चला आया। रूपाबहू उसी मुद्रा में आँगन में खड़ी रह गई थी। सूरज ने सामने आकर कहा, "बुआ को एक ताना गोरेमल ने भी दिया था—'एक शादी सपूत ने की। इसी तरह एक शादी बाप ने अपनी बहन की की थी—खुरजे में !'

"मन जो बढ़ गया है लोगों का, जो मुँह में आता है, कह डालते हैं।"

उसी समय आँगन में संतोष दिखाई पड़ी। बाहर से चेतराम भी आया। पर सब चुप थे, एक-दूसरे का मुँह देखते हुए, जैसे सबको हर चीज़ का पता है और कुछ भी नहीं पता है। हर कोई एक-दूसरे से पूछना चाहता है।

५

उस दिन चंदनगुरु की आँख कुछ देर में खुली। हड़बड़ाकर उठा, तो देखा, सूरज की किरणें चरनलाल के बारजे तक बिछ चुकी थीं। बड़ा गुस्सा आया उसे अपने-आप पर और अपनी घरवाली पर; जल-भुन

उठा—'देखो न हरामज़ादी को, जैसे यह भी मर गई।'

आवेश में चारपाई से उठकर सीधा घर गया। चूहेदानी पर नज़र गई, तो उसकी बाँहें फड़क गईं—दो मोटे-मोटे चूहे आ फँसे थे। चंदनगुरु ने चूहेदानी उठा ली और आँखों के सामने उसे टाँगकर देखने लगा। दोनों मोटे जीव चूहेदानी में इतनी तेज़ी और भय से भागने लगे, जैसे खुले घर में उनकी नज़र किसी बिलाव से मिल गई हो। वह ठहाका मारकर हँस पड़ा, उन चूहों की भयाकुल और मस्त निगाहों पर।

सामने से घरवाली आई और हाथ से चूहेदानी छीन ली, "रखो इसे, और भी कोई काम-धाम है कि नहीं? दुनिया उठकर सुबह रामनाम लेती है!"

"रामनाम का बैंक खुला है राजू पंडित के यहाँ। ख़रीद लेंगे किसी दिन।"

"जैसे मुझे ख़रीदकर लाये थे?"

"तुझे तो भगाकर लाया था। भूल गई इतने दिन में?"

चन्दनगुरु की घरवाली शरमा गई।

"रहने दो आज, इन्हें रात को छोड़ आना।"

"रात को छोड़ने से चूहे फिर उसी घर में लौट आते हैं।"

"सुना था, तुम अपनी जवानी में बहुत बड़े पहलवान और नामी आदमी थे, फिर इस तरह अब चूहों के पीछे क्यों पड़े रहते हो?"

"चुप रह! बक-बक मत कर!"

चन्दनगुरु ने चूहेदानी उठा ली और उसे अपने शाल के घेरे में छिपा, झट सड़क पर चला आया, रिक्शा कर लिया और बहुत तेज़ी से बस्ती से बाहर हो गया।

एक जगह रुककर चन्दनगुरु ने चूहेदानी खोल दी। कुछ क्षण तक वे चूहे बाहर ही न निकलते थे। झटका देने से एक चूहा निकला और निर्लक्ष्य तेज़ी से भागकर मिट्टी के बीच दुबक गया, जैसे उतनी दौड़ में

उसकी नन्ही-सी जान उड़ गई हो। दूसरा चूहा चूहेदानी से निकलता ही न था। चन्दनगुरु को देर हो रही थी, तब उसने पूरी शक्ति से झटका देकर चूहेदानी उलट दी। चूहा गिरकर सँभला और पूरी शक्ति से खुले मैदान में भागा। वह कहीं छिपना नहीं चाहता था, बस भाग जाना चाहता था अपने प्राण लेकर। चन्दनगुरु उसे देख रहा था। चूहा भाग रहा था। एकाएक आसमान से एक चील झपटी और उस चूहे को दबोच ले गई।

चील चन्दनगुरु के सिर के ऊपर से उड़ी। उसने सुना, चूहा अजीब स्वर से चीं-चीं, चूँ-चूँ कर रहा था। जब तक वह चील दृष्टि से ओझल न हुई चन्दनगुरु देखता रहा।

पिछले दो महीनों से जियालाल का 'आज़ाद रेस्टराँ' बन्द हो गया था। पुलिस ने उसे एक चोरी के मुकदमे में फाँसकर जेल भेज दिया था। आज पन्द्रह दिन हुए वह छूटकर आया था और अब अपनी उसी उजड़ी हुई दुकान के तख्ते पर शाम को चाट-कचालू का खोमचा लगाता है।

सुबह नौ बजे तक छेदालाल के अहाते के आस-पास के लोग कोई मुँह में दातुन डाले, कोई लुङ्गी चढ़ाए, कोई ड्रेसिंग गाउन, ओवरकोट पहने और कोई शाल-कम्बल ओढ़े, कोई सिगरेट दाग़े, पान चबाए उसी तख़्ते पर जम जाते।

उस जमाव में आज विपिन-पहलाद के अलावा लाला रम्मन भी ड्रेसिंग गाउन पहने मौजूद थे।

चन्दनगुरु का रिक्शा सामने से गुज़रा। जियालाल ने दौड़कर रिक्शा रोक लिया। शाल के भीतर चूहेदानी थामे चन्दनगुरु घबरा गए, "ज़रूरी काम से घर जा रहा हूँ; भगवान् क़सम, रोको नहीं इस समय।"

पर जियालाल उसे खींचता हुआ तख़्त के पास ले आया और जमाव के लोगों से बोला, "होली नज़दीक है, आज इन्हीं से शुरू हो जाय।"

"भगवान् क़सम, मैं अभी घर से लौटकर आता हूँ।"

"शाल के भीतर क्या छिपाया है गुरु ?" विपिन ने पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं···कुछ···!" यह कहता हुआ वह जान छुड़ाकर एक साँस में भागा। सारे लोग हँसते रह गए।

"कहो रम्मन बाबू, तुम्हीं कुछ सुना डालो अपनी," जियालाल ने साँस भरकर कहा। "कैसे बम्बई में कटी ? कैसे रास्ते में उड़ी ? कहाँ-कहाँ घूमे ?"

विपिन ने आँख दबाकर कहा, "अमें शोले मत भड़काओ !"

पहलाद ने गाना शुरू किया :

मारी लैला ने ऐसी कटार हो,
मियाँ मजनू का उतरा बुख़ार !"

जियालाल ने कहा, "अजी बुख़ार तो उतरा छेदामल का। लाला रम्मन साहू को तो अभी एक सौ चार डिग्री है। सुनो, चिट्ठी-उट्ठी भेजती है कि नहीं ?"

"अजी जवाबी कार्ड भेजती है," रम्मन ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा। "अपने बाप के पास चिट्ठियों के पार्सल भेजती है। लिखती है, रजिस्ट्रार साहब की तबियत खराब रहती है। मुझे हरिद्वार लेकर गये थे। दवा कराने के लिए अभी लखनऊ गये थे।"

"यार रम्मन, तूने स्वर्णलता की ज़िन्दगी ख़राब कर दी। बेचारी की शादी एक बूढ़े रजिस्ट्रार से हुई। कहाँ स्वर्णलता परिस्तान की हूर और कहाँ वह खूसट रजिस्ट्रार, पचास साल का।"

"अमें, ज़िन्दगी तो मेरी ख़राब हुई सालो ! सबमें आग लग गई।" रम्मन ने ऊँचे स्वर में कहा। "मेरी फ़र्म टूटी। सारी कमाई क़ुरबान कर दी उस हसीना पर। उस ससुरी को पसीना तक न

आया। जब हम दोनों पकड़े गए, तो जानते हो उसने क्या कहा साहू साहब से ? 'मुझे रम्मन ने भगाया था जी !' आय हाय !" लड़कियों जैसी अदा में रम्मन ने कहा और सारा वातावरण हँसी से गूँज उठा।

रम्मन कहता जा रहा था, "जी तो हुआ कि कुमारी स्वर्णलता देवी, मैट्रिक, डॉटर आफ़ रायबहादुर साहू गुरुचरनलाल जी, आई० एस० सी० एच० डब्लयू० भूतपूर्व चेयरमैन दी ग्रेट के सामने बेटी के सारे प्रेमपत्र पटक दूँ। लेकिन क्या बात है ! हटाओ, बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय !"

जियालाल ने पूछा, "आगे कोई नया माल आ फँसा क्या ?"

"नहीं जी, अब तो याद ही काफ़ी है," यह कहकर रम्मन कान पकड़कर जल्दी-जल्दी उठने-बैठने लगा।

सबने दौड़कर पकड़ लिया।

"रम्मनलाल छेदामल बैंकर एण्ड कमीशन एजेण्ट की क्या गत बना दी ?" पहलाद ने हँसकर पूछा। "अजी लाला रम्मन, तुम्हारी जूते की दुकान कैसी चल रही है ?"

"अच्छी ही है, आओ न किसी दिन, तुम्हें तो बिना भाव के दूँगा यार !"

सब हँसते रहे, रम्मन निर्विकार बैठा था—फक्कड़, मस्त, मौन ! इतनी ही उम्र में जैसे सारी दुनिया देखे हुए, सब भोगे हुए।

"यारो, मुझे अपनी किस्मत पर कोई ग़म नहीं। कमाया और दोनों हाथ से फूँका। फ़र्म में आग लगाकर, गद्दी छोड़कर जूते की दुकान पर आ बैठा मैं, मुझे इसमें कोई शर्म नहीं, ज़रा भी ग़म नहीं ! बसन्ता माँ मेरे दुख से टूटकर मर गई, इसका भी मुझे बहुत अफ़सोस नहीं। अफ़सोस और शर्म है मुझे तो केवल इसी बात में कि मेरे लाला छेदामल को साहू साहब के यहाँ इस उमर में नौकरी करनी पड़ी। मैं इसे बहुत कमीना बदला समझता हूँ साहू साहब का। मुझसे बदला लेते तो उन्हें कुछ मज़ा भी मिलता।"

"हाँ यार, मेरे बाबा कहा करते थे कि ये साहू लोग जब किसीसे बदला लेने को होते हैं तो उसके बाप को किसी-न-किसी सूरत से अपने यहाँ नौकर रख लेते हैं," पहलाद ने कहा और विपिन की ओर देख-कर अपनी दाईं आँख दबा दी।

"ये पैसे वाले ऐसा करते ही हैं," जियालाल बोला। "बड़े ठण्डे साँप होते हैं और दुनिया में ये महज़ एक ही चीज़ से डरते हैं—नफ़रत से। ये सब चीज़ बरदाश्त कर सकते हैं, पर अगर इन्हें यह पता लग जाय कि फलाँ आदमी इनसे घृणा करता है तो फिर इनके हाथ-पाँव ठण्डे हो जायँ और उसे परास्त करने के लिए ये दुनिया की कोई ताकत न छोड़ें। ये सेठ-महाजन, मिल-मालिक इतना दान क्यों करते हैं? धर्मखाता क्यों खोलते हैं? महज़ इसीलिए कि वह जनता, जिसको ये लूसते हैं, इनसे नफ़रत न करने लगे। तभी जगह-जगह मन्दिर, शिवाले, धाम, धर्मशाले, घाट, स्कूल, कॉलिज और न जाने क्या-क्या!"

"अरे छोड़, तू भी क्या रोना रोने लगा," सब एक साथ बिगड़ खड़े हुए।

"यार सुनो!" रम्मन मुस्कराकर बोला, "सूरज और सन्तोष का मामला कैसा चल रहा है?"

"वह मामला बिलकुल पक्का है, तुम्हारी स्वर्णलता की तरह वह मामला कच्चा नहीं है। दो शरीर एक आत्मा वाली घटना है वहाँ।"

"यार यही घटना तो मेरी भी थी," रम्मन हँसने लगा।

"सुनो यार! वह गोपी माँ तो खूब है। अभी तो चक्कू है यार वह।"

"यह राजू पण्डित बड़ा फाँसू है। एक-से-एक 'एक्सिडेण्ट' करता रहता है।"

"प्रभुनाम बैंक का काम कुछ ठण्डा पड़ गया है। उसका दफ़्तर उठकर सरजू सुनार के घर चला गया है। वह हीरा ललवा है न, वही तो अकाउण्टेण्ट है उस बैंक का," विपिन बता रहा था। "वह जो राजू

पण्डित की चक्कू बेटी है न, उसने अपने बाप को धमकाया कि यह अमुनाम बैंक बन्द करो नहीं तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगी।"

"हाय राम! मनिहरवा मिमोरे मोरी बहियाँ, बजरिया मैं ना जावूँ राम!" रम्मन भाव बताकर नाचने लगा।

"सन्तोष बेटी को शान्त करने के लिए राजू पण्डित ने उस बैंक को सरजू सुनार के हाथ बेच दिया है, पर चालू अब भी है।"

"एक दिन सन्तोष और गोपी माँ में खूब झगड़ा हुआ था; न जाने किस बात पर!"

"वही मामला होगा, और क्या हो सकता है!"

"अरे यार, एक बात तो तुम लोगों ने सुनी ही नहीं!" जियालाल नाचते-नाचते रुक गया। "वह जो सरजू सुनार की घरवाली है—कुलवंती, महिला आर्यसमाज की मन्त्राणीजी, जो वैदिक नारी के नाम पर बस्ती की हर औरत का परदा फ़ाश करती घूमती है—उसने भी एक नया बिज़नेस शुरू किया है।"

"वह क्या?" सब कान उठाकर घिर आए।

"वह एक दिन प्रोफ़ेसर दयाराम शास्त्री के घर गई, शास्त्राइनजी से बोली, 'तुम अपनी सयानी लड़की को घर में बन्द करके मारती हो और पति से लड़ती हो, मैं इस विषय पर अपने समाज में प्रस्ताव रखने जा रही हूँ।' शास्त्राइन तो झाड़ू लेकर मारने दौड़ी कुलवंता देवी को। लेकिन शास्त्रीजी प्रोफ़ेसर ठहरे। उन्होंने कुलवंता को बहुत मनाया, पाँच रुपये चन्दा देने लगे महिला समाज को, लेकिन कुलवंता ने कहा, 'मैं दस रुपये से कम न लूँगी।' फिर देना पड़ा बेचारे शास्त्रीजी को।"

"यार जियालाल," रम्मन बोला, "तुम गोपी माँ को किसी तरह से कहीं भगा ले जाते तो मज़ा आ जाता। यह क्या समझकर आई है इस बस्ती में? ऐसे चलती है कि······।"

"अजी साहब, चोली पहनती है चोली, जिसे 'बाडिस' कहते हैं।"

"तुम उसे सेकण्ड शो सिनेमा दिखाने ले जाओ—किसी धार्मिक खेल में," जियालाल रम्मन से बोला। "इतना काम तुम करो, फिर आगे मैं देख लूँगा; बदायूँ तक तो भगा ही ले जाऊँगा।"

"हाँ-हाँ, फ़र्स्ट क्लास की चार सीटें मैं दूँगा," विपिन बोला। "नावल्टी में इस काम के लिए मैं 'सन्त तुलसीदास' पिक्चर मँगवा सकता हूँ।"

सामने एकाएक मास्टर चन्दूलाल दिखाई दिए—धूप का चश्मा लगाए, चूड़ीदार पाजामे पर जवाहर बंडी कसे हुए और सिर पर ऐसी खादी टोपी जो दुपलिया को भी मात कर दे।

मास्टर चन्दूलाल को देखते ही जमाव के लोग एक-पर-एक पास देने लगे :

"जै हिन्द धुआँधारजी !"

"बन्देमातरम् जी, इन्क़लाब ज़िन्दाबाद !"

"कहिए लंकादहन जी, आप दिल्ली से कब लौटे ? वहाँ तो इंटरिम गवर्नमेंट बन रही है। सुना है आप हेल्थ डिपार्टमेंट सँभालने जा रहे हैं।"

"सुना है आपकी राष्ट्रीय सेवा, स्वतन्त्रता-संग्राम और सत्याग्रह से प्रसन्न होकर सरकार आपको कुस्तुनतुनियाँ भेज रही है।"

"नहीं जी, पहले आप काबुल जायँगे।"

जियालाल बोला, "जी हाँ, सवारी का प्रबन्ध हो गया है, कागभुसंड पर चढ़कर जायँगे आप।"

मास्टर चन्दूलाल बुरी तरह से बिगड़ खड़े हुए; सबको डाँटते हुए चुनौती दी, "यही चरित्र है आप लोगों का ! इसी चरित्र पर आप देश की स्वतन्त्रता सँभालेंगे ! मैं ताला लगा सकता हूँ आप सबके मुँह पर ! क्या समझ रखा है ?"

"सुना है आप सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर होने जा रहे हैं," एक आवाज़ आई।

"म्युनिसिपैलिटी बतौर इनाम आपकी शादी गोपी माँ से कराने जा रही है।"

"मैं कहता हूँ, शान्त हो जाओ," चन्दूलाल ने क्रोध से गरजते हुए कहा, "नहीं तो मैं यहाँ सत्याग्रह करूँगा—अनशन !"

"चश्मा उतारकर !" दूसरी आवाज़ आई।

"लुक हियर एण्ड सी देयर !" तीसरी आवाज़ उठी।

मास्टर चन्दूलाल 'सत्याग्रह ज़िन्दाबाद' का नारा लगाकर वहीं पलथी मार बैठ गए और योगियों को भाँति शान्त मुद्रा में स्थिर हो गए। तख़्ते का सारा जमाव देखते-ही-देखते ग़ायब हो गया।

होली के आठ दिन शेष रह गए थे। सूरज कॉलेज जाने लगा था। ईशरी फूफा और मधू बुआ का उसके घर से चला जाना, सूरज के अन्तस् में सदैव घूमता रहता था। विशेषकर ईशरी फूफा का व्यक्तित्व, जिसे बेधकर बुआ ने दिखाया था, वास्तव में सूरज को कहीं बहुत गहरे बेध गया था।

उनकी सुधि से बचने के लिए वह अधिक-से-अधिक देर तक कॉलेज में रहता, लाइब्रेरी में बैठता, प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब के कमरे में बैठकर बातें करता। घर आता तो गद्दी पर बैठकर मुनीमों से छीनकर काम करने लगता।

पर ये सब कवच का काम न कर पाते। वह करुण सुधि सारी परतों को तोड़कर पंख फैला-फैलाकर आती थी और सूरज को उड़ा ले जाती थी; और सत्य की चट्टानों पर उसे पटकने लगती, फिर वह खण्डों में चूर-चूर होने लगता था। ऐसी मर्मान्तक पीड़ा में वह कस-कर बँध जाता कि उसकी सारी आस्था डगमगाने लगती।

ऐसे विकट क्षणों में या तो वह स्वयं कुछ पढ़ने लगता अथवा सन्तोष के पास जाता और उससे 'महाभारत' सुनता—कभी द्रोणपर्व,

कभी भीष्मपर्व।

उस दिन सूरज की मनोव्यथा इससे भी न उबर रही थी। सन्तोष ने कहा, "तुम्हीं तो कहते थे कि हर पीड़ा मनुष्य को एक क़दम आगे बढ़ा देती है।"

"पर यह पीड़ा नहीं है, क्योंकि यह चिन्ताशून्य है।"

"फिर क्या है यह ?"

"पता नहीं, आती तो है फूफा और बुआ की सुधि बनकर।"

"इसे एक बार सोचकर क्यों नहीं देख लेते ?"

"तुमने इसे सोचा है क्या ?" सूरज ने विनीत स्वर में पूछा।

"कई बार सोचा है, पर मैं उस स्थिति में थी कि उसे वस्तुतः सोच सको," सन्तोष ने कहा, "पर शायद तुम नहीं हो, बुआ तुम्हारे प्राणों का अंश हैं, ईशरी फूफा तुम्हारे पौरुष का अंश।"

"नहीं, कभी नहीं," सूरज आवेश में बोला। "मेरे पौरुष के अंश ईशरी फूफा नहीं हो सकते। कैसे कहा तुमने यह ?"

सन्तोष चुप हो गई थी।

"सन्तोष, तुमने यही सोचा है क्या ?"

"नहीं जी, मैं तो अपनी अक्ल से महज़ कारण बता रही थी कि तुम अब तक उस स्थिति को सोचकर क्यों नहीं भूल सके ? क्योंकि तुम आत्मसात् हो उनमें। वे अंग हैं तुम्हारे।"

"अच्छा, तुम सोचकर किस सत्य पर पहुँची हो ?" सूरज ने पूछा।

"पर वह मैंने अपने स्तर से अपनी तरह सोचा है," यह कहती-कहती सन्तोष एकटक सूरज को देखने लगी। फिर बोली, "बुआ महान् कृपण थीं, अपनी तपस्या को वह किसीसे बाँटना नहीं चाहती थीं, इसीलिए वह फूफा को समेटकर चली गईं। वह छिपकर, बिना बताए चली गईं, इसे मैं बुआ की नारी का परम स्त्रीत्व समझती हूँ। बुआ की यह सुधि मुझे गौरव देती है।"

कहते-कहते सन्तोष की आँखें सजल हो आईं और सारा मुख

आलोकित हो उठा।

सूरज चुप था, जैसे उसकी पीड़ा को सहसा चिन्ता प्राप्त हो गई हो। वह निःस्पन्द बैठा रहा—सामने महाभारत की पोथी खुली थी; सिर ढके, स्मितवदना सन्तोष बैठी थी।

करीब एक घण्टे तक वह उसी तरह चुप बैठा रहा।

इस बीच सन्तोष दो बार ठाकुरद्वारे हो आई। सूरज को हँसाने के लिए उसने एक बार उसके माथे और गाल पर अबीर और गुलाल मल दिया।

सूरज उठकर जाने लगा।

सन्तोष ने पकड़ लिया, "ऐसे न जाने दूँगी।"

सूरज मुस्करा उठा।

"मैं कहा करता था न," सूरज ने सम स्वर में कहा, "इस बस्ती में अगर कोई एक भी महान् हो जाय, तो यहाँ के लोगों को अपने-आपको बस्तीवाला कहलाने में गौरव मिले।"

"हाँ बिलकुल सत्य कहा है।"

"नहीं, बिलकुल झूठ है। मैंने भावुकता के स्तर से वह सब कहा था, ये बातें महज़ भाषण में कहने की हैं। 'महान्' और 'गौरव' ये शब्द बिलकुल अर्थहीन हैं। ये हमारे जीवन के शब्द नहीं हैं। ये हमारे ऊपर किसीने आरोपित कर रखे हैं, जिनमें हम बुरी तरह से घुट रहे हैं।"

संतोष खिलखिलाकर इस तरह हँसती रही कि सूरज की वह बात उसकी हँसी में ढक जाय—वायु में, गगन में वह बिखरे नहीं।

सूरज बड़ी तेज़ गति से जाने लगा। संतोष अपनी हँसी में ग़ाफ़िल पड़ गई; पर वह दौड़ी और सूरज को उसने दहलीज़ पर पकड़ लिया।

"यह वही स्थल है सूरज!" संतोष सूरज की आँखों में देखती रह गई, फिर अनायास भारी होकर वे पलकें झुक गईं।

"तुमने यहीं कुछ कहा था।"

"हाँ याद है," सूरज एकनिष्ठ स्वर में बोला। "अब भी वह याद है मुझे, और वह सदा याद रहेगा; मैंने ममता पाई है।"

"कुछ और भी कहा था," सन्तोष ने माथा उठाया। उसके मुँह पर जैसे रक्त बरस रहा था।

"इसके अतिरिक्त जो-कुछ भी कहा था, वह सब नगण्य है, अर्थ-हीन। मैं वह सब भूल गया।"

सन्तोष उसे पकड़े हुए अपने कमरे में गई। सूरज के लिखे पृष्ठों में से कुछ ढूँढ़ने लगी।

सूरज बोला, "मत ढूँढो। उनमें कुछ भी नहीं है। भ्रम है, भावुकता है सब। यह समझो, ये सारे पृष्ठ कोरे हैं, सन्तोष! जो-कुछ भी इनमें लिखा है, उनमें मेरी अनुभूति नहीं है। अब उनमें मेरी कोई आस्था भी नहीं है।"

सन्तोष एक क्षण के लिए पीली पड़ गई। वह सिर से पैर तक काँप गई, जैसे धरती हिल गई हो।

सूरज फिर उसी दर्द से बोला, जैसे शरीर के सारे रक्त के एक-एक बूँद के मन्थन से, "मैंने यथार्थ भी छुआ है।"

सूरज की आँखें अजीब तरह से चमकीं, पर वह निर्विकार ढंग से बोला, "महान् होना, गौरव देना, राष्ट्रसेवा, जन्मभूमि-सेवा, स्वतंत्रता संग्राम, क्रान्ति, इन सबका अब मेरे सामने कोई महत्त्व नहीं है। ये सब मेरी अनुभूति में नहीं उतरे थे, केवल कर्म में आये थे। और अब जो मुझे अनुभूति मिली है, उसके सामने मैं इन्हें ठीकरे समझता हूँ।"

सूरज चला गया।

संतोष खड़ी रह गई, जैसे उसके सामने ग्रह-लोक से एक तेज-पुञ्ज नक्षत्र गिरा हो और सबको चीरता हुआ न जाने कहाँ चला गया हो—चलता गया हो।

बड़ी देर बाद संतोष जब आश्वस्त हुई, तो महाभारत की पोथी में वह सूरज के लिखे उन पृष्ठों को सहेजकर रखने लगी, जैसे कृपण अपने धन को कहीं रखे। और जब वह उसे अपनी माँ के दिये हुए सन्दूक में रखने लगी तब उसे न जाने क्या सूझा। उसने आटे की एक चौक पूरी—कमल की आकृति जैसी, पर टेढ़ी-मेढ़ी, क्योंकि हाथ काँप रहे थे। उसके बीच में उसने महाभारत की पोथी रखी, उस पर उन पृष्ठों को रखा और उस पर अपने माथे को टिकाकर वह निःशब्द रोने लगी।

६

होली के बाद दिल्ली से गोरेमल आया। इस बार वह अपने संग चेतराम के पूरे परिवार के लिए बहुत बढ़िया-बढ़िया कपड़े ले आया था। उन विविध प्रकार के कपड़ों में मधू बुआ और सीता-गौरी तक का हिस्सा लगकर आया था। इसके अतिरिक्त वह सूरज के लिए एक रेडियो सेट और टाइपराइटर ले आया था।

इस बार सारे परिवार के बीच गोरेमल आँगन में बैठा—बिलकुल नाना की तरह।

सूरज से बोला, "याद रखना, वह रेडियो सेट और टाइपराइटर तुम्हारे नाना का दिया हुआ है!"

"तभी मुझे स्वीकार भी है," सूरज धीरे से बोला।

"अजी, सुनो भी," गोरेमल ने स्नेह से झिझककर कहा, "बड़े स्वीकार करने वाले आये हैं! तुम लीडर होगे, जहाँ के होगे, हाँ नहीं तो···।"

कुछ क्षण रुककर उसने कहा, "मैं जो कह रहा हूँ उसे पहले पूरा सुनो। गोरेमल फ़िज़ूलखर्ची में विश्वास नहीं करता। इसे वह

गुनाह समझता है। लेकिन ज़रा ग़ौर करने की बात है। इसे कंजूसी नहीं कहते। इसे कहते हैं दूरदर्शिता। रुपया फेंकने की चीज़ नहीं है, बल्कि पाटने की चीज़ है। जहाँ काम आ जाय, वहाँ सीना खोलकर दिखा दे; लाख-डेढ़ लाख तक को कुछ न समझे। रुपया औरत है। इसे पैदा करने वाला पुरुष है और इसे भोगने वाला भी पुरुष है—लेकिन वही जो भाग्यवान है। यह ज़रा ग़ौर करने की बात है। पांडव पुरुष थे ज़रूर—एक-से-एक बढ़कर थे, लेकिन भाग्यवान नहीं थे, तभी वे सुख नहीं भोग सके।" यह कहते-कहते लाला गोरेमल हँस पड़े। फिर कहा, "इस समय हिन्दुस्तान-भर में जो सबसे अधिक क़ीमती रेडियो सेट था, मैंने वही खरीदा। इसी तरह टाइपराइटर भी। रुपया इसीलिए बना है। खूब कमाओ और सही जगह पर सीना खोल-कर ख़र्च करो। यह ग़ौर करने की बात है। इसे आप कंजूसी और मक्खीचूसी कहेंगे? एक रेडियो सेट चेतराम ने भी ख़रीदा था। कित्ते दिन चला?"

गोरेमल हँसने लगा—बड़ी निश्छल हँसी। "रेडियो से खबरें सुनो, बाज़ार के भाव नोट करो। मार्केट की नब्ज़ हाथ की उँगलियों में ढीली न पड़ने पाए। और टाइपराइटर से लिखने का काम लो। मैं तो कहता हूँ, जितना भी काम मशीन-बिजली, गैस-स्टीम से लिया जा सके, उसके लिए मनुष्य की ताक़त और ज़िन्दगी खर्च करना बेवकूफ़ी है, सरासर जहालत।"

सूरज वहाँ से चला गया था। रूपाबहू भी चौके की ओर जा रही थी। केवल अकेला चेतराम बैठा सुन रहा था। "सरकार बदल रही है, अंग्रेज़ी हुकूमत ख़त्म हो रही है। एक तरह से युग बदलने को है। हमें ज़रा ग़ौर से चलना है। जब अंग्रेज़ी हुकूमत यहाँ से जा सकती है, तो अब यहाँ कुछ भी असम्भव नहीं। जो कुछ भी न हो जाय, वह थोड़ा। चेतराम, ग़ौर करने की बात है, हम किस्मतवर हैं कि हम पूँजीपति नहीं हैं। हम दिन-भर में सैकड़ों बार मरते नहीं।

बिज़नेस का जो हमारा रास्ता है न, सबसे बेनज़ीर है। हम पुश्त-दर-पुश्त इसी 'बिज़नेस' से बैठे शान से खा-पी सकते हैं—न किसीकी दोस्ती, न दुश्मनी। कोई राज्य रहे या न रहे। चाहे जो हुकूमत आये, सब-सिर आँखों पर। और ये मिल-मालिक, जो बेचारे पूँजीपति के नाम से बदनाम हैं, वे हर रोज़ डरते हैं कि अगले दिन उनका क्या हश्र होगा, क्योंकि उनकी ज़िन्दगी, उनकी बिज़नेस दूसरों के हाथ में है। हम किस्मतवर हैं कि अपनी बिज़नेस के मालिक हम खुद हैं। और हमसे भी ज़्यादा क़िस्मतवर वह बनिया है, जो परचून की दुकान करता है। न कोई ग़म, न ख़तरा, न झूठ, न सच।"

गोरेमल मुस्कराने लगा। उसके मुँह में सामने के पत्थर के दाँत बड़े प्यारे ढंग से हिलने लगे थे।

गोरेमल के आने के बहुत पहले की बात है, एक दिन ठीक दोपहर को रूपाबहू किसी काम से छत पर गई—टिन के नीचे, जहाँ कभी बहुत पहले सूरज ने कबूतरों के लिए घर बनाया था—वे पालतू कबूतर, गिरहबाज़, चंदनगुरु को मात देने वाले।

टिन के पास रूपाबहू ने सुना, भीतर कहीं से घुर्रऽ···घुर्रऽऽ···· चीं····चीं की आवाज़ आ रही है। वह भीतर गई—कोने में जहाँ पुराने घड़े, सुराहियाँ और बाँस-खाट गँजे रखे थे, उसके बीच एक घायल कबूतर दुबका बैठा था—भयभीत, त्रस्त। रूपाबहू ने उसे उठाकर अपने अंक से चिपका लिया था, और उसे आँखों से लगाकर रोने लगी थी—वह कबूतर, जिसे बहुत पहले उसके सूरज ने पाला था। उसके दायें पैर में अब भी चाँदी का वह नन्हा-सा छल्ला पड़ा हुआ है। डैखने में कहीं बहुत चोट आ गई है। बायाँ पंख शरीर से गिरा जा रहा है। पंख उठाकर नीचे देखा तो वह सिहर गई—खून बह रहा है।

रूपाबहू घायल कबूतर को आँचल में छिपाकर अपने कमरे में ले आई थी। दवा, सेवा और ममता तीनों एक साथ पाकर वह मरणासन्न कबूतर जी गया। घाव भर गए, पर जो पंख टूटा था, वह उड़ने की दृष्टि से निर्जीव रह गया।

वह कबूतर अब सदा, हर क्षण रूपाबहू के संग रहता है। कोई नहीं देख पाता, न समझ ही पाता है कि वह कबूतर कैसे जी गया। स्वतंत्र, आकाशजीवी वह प्राणी किस अदृश्य डोर से बँधा इतना गद्गद दीखता है। वह क्या है रूपाबहू और उस नगण्य कबूतर के बीच, जो मूक रहकर भी छलकता रहता है, जो कृत्य होकर भी कृतज्ञता से भरा रहता है—कोई दया नहीं, दान नहीं, यूँ ही स्वतः उद्भूत, स्वतःचालित, हर साँस का अंग बनकर।

चेतराम ने अक्सर देखा है—रूपाबहू अपने कबूतर को वही खिलाती है, जो उस पंख वाले प्राणी को पसन्द है। चेतराम देखता है और मन-ही-मन विहँस उठता है—कितनी बच्ची है यह लल्ला की माँ! कितनी सरल-सीधी!

सूरज ने कई दिन देखा है, रूपाबहू सबसे छिपाकर उस कबूतर को कभी-कभी नहलाती है। उसकी गरदन को रेशमी कपड़े से पोंछती है और उसे चूमती है। निर्जीव पंख को आँखों से लगाकर बड़ी देर तक चुप रहती है। उसके पैर का एक-एक कोना पोंछती है और उनमें तेल लगाती है।

एक दिन रूपाबहू ने सन्तोष से कहा, "यह कबूतर सूरज का है। उसी का पाला हुआ है न!" और उसे चूमती हुई वह भाव-विभोर होकर अस्फुट स्वर में न जाने क्या बुदबुदा उठी।

चेतराम जब उस कबूतर और रूपाबहू को देखता, तो मन-ही-मन विहँस उठता, "यह कबूतर भगवान् का भेजा हुआ है, इसके पाँवों में सोना मढ़ाऊँगा।" एक दिन उसने रूपाबहू से गद्गद कण्ठ से पूछा, "क्यों जी, इसका पंख किसी तरह अच्छा नहीं हो सकता क्या?"

रूपावहू ने शिशुवत् हँसते हुए कहा, "कोई हड्डी थोड़े ही है जो जुड़ जायगी, या कोई दीखता हुआ घाव है जो ऑपरेशन से ठीक हो सकता है। यह तो पंछी है, जो टूट गया सो टूट गया।

"टूट गया! पंछी है! पर कितना भागवान है लल्ला की माँ!" चेतराम इस पूर्णता से मुस्कराने लगा कि उसके मुख की सारी झुर्रियाँ लुप्त हो गईं। उसकी मूँछ के अधपके बाल क्षण-भर के लिए जैसे फिर काले हो गए।

"अजी, तुमको काहे इतनी चिन्ता हो रही है, जाओ गद्दी पर बैठो न!" रूपावहू ने चेतराम को इस तरह उत्तर दिया, जैसे कोहबर की दुल्हन दूल्हा से मान करे और आँखों-आँखों में ऐसा कटाक्ष मारे जिसकी मूक वाणी सारे प्राणों में बिंध जाय।

गद्दी पर, चेतराम और मुनीमों के बीच बैठा हुआ गोरेमल असली बहियों से बैंक के कुछ काग़ज़ों और पुराने जमा खातों का मिलान करा रहा था।

दीवार की घड़ी ने चार बजाए।

"सूरज अब तक नहीं दीखा।" गोरेमल ने कुछ क्षण बाद स्वयं अपने-आप को जवाब भी दिया, "वह फिर कॉलेज जाने लगा न! तुमने तो कहा था चेतराम, सूरज ने कॉलेज जाना बन्द कर दिया।"

"आता ही होगा लाला!"

"क्या करेगा वह पढ़-लिखकर? मैं तुम लोगों की अक़ल नहीं समझ पाता," गोरेमल को बहुत बुरा लग गया, "एफ़० ए० की डिग्री क्या कम थी? और क्या तीर मार लेंगे बी०ए० ही करके? लाखों एम० ए०, बी० ए० सौ-सौ रुपये की नौकरी के लिए तरस रहे हैं। यह कौनसा तीर मारने के लिए पढ़ रहे हैं? पूछा है कभी? बोलो चेतराम!"

"पूछा तो नहीं, लेकिन पढ़ने के लिए मना ज़रूर कई बार किया है।" चेतराम ने आगे भी कुछ कहना चाहा, पर चुप रह गया।

"गोरेमल की फ़र्म है न! पूछोगे क्यों?"

चेतराम घूँट पीकर रह गया।

"इस तरह गोरेमल लुटाने के लिए नहीं बना है। वह बेवक़ूफ़ नहीं है।"

"उसका ख़र्चा मैं अपने हिस्से में से देता हूँ लाला," चेतराम ने सम स्वर में कहा। लेकिन उस स्वर में फिर भी इतना वज़न था कि बरामदे से घर में जाते हुए सूरज ने उसे सुन लिया, और तख़्त-कुरसी के बीच वह बँधा खड़ा रह गया।

"बड़े ख़र्चा देने वाले आये," गोरेमल ने कहा। "अपने हिस्से से ख़र्चा! और जब सपूत बेटा लीडरी कर रहा था, स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ रहा था और आगे-दिन जो पुलिस को थैलियाँ देनी पड़ती थीं?"

कुछ क्षणों के लिए गद्दी पर सन्नाटा।

"और वह जो हज़ार मन गेहूँ का 'केस' हुआ था, वह किसके हिस्से में पड़ा था?" गोरेमल कहता गया, लेकिन झट स्वर बदलकर, बोला "मैं पूछता हूँ, ज़रा ग़ौर करने की बात है कि उस स्वतन्त्रता-संग्राम की लीडरी से क्या मिला? केवल यही न कि घर फूँक सत्यानाश! जेल, जुरमाना, बेइज़्ज़ती, बदनामी! अब कौन पुरसाँहाल है साहबज़ादे का? आख़िर, फिर लौटकर इसी घर में आये कि नहीं! अब तो 'हाईकमांड' से फ़रमान नहीं आते होंगे। अजी खेल ख़तम, पैसा हज़म।"

गोरेमल को पता था कि बाहर सूरज आ गया है। दो-चार पेज काग़ज़ देखकर वह फिर बोला, "सेठ-व्यापारी के लिए विदेशी हुकूमत चाहिए। न कोई ख़तरा, न कोई बन्दिश। उनके भाव चालीस सेर के और पूरे वज़न के सिक्के। मगर ज़रा ग़ौर करने की बात है। जिस क्षण से अंग्रेज़ों को पता चल गया कि उनकी हुकूमत इस मुल्क से जाने वाली है, असली सिक्के बन्द, नकली सिक्कों से बाज़ार भर दिया।

बड़े सिक्के गायब, छोटों की भरमार। एक रुपये के नोट, दो रुपये के नोट, जिससे हर आदमी अपने को रुपया वाला समझे। कलकत्ता की टकसाल में छः लाख रुपये रोज़ ढलते हैं—नब्बे ग्रेन चाँदी के नाम और नब्बे ग्रेन में अन्य धातु—कहाँ ग्यारह बटे बारह चाँदी और अब मुश्किल से एक बटे दो। निकल और ताँबे की नई-नई टकसालें! क्या करेगा कोई इन सिक्कों से? केवल इन्हें ख़र्च कर सकता है, बस। इनसे कोई धनी या रुपये वाला नहीं कहला सकता, यह गौर करने की बात है।"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहने लगा, "बनिया का लड़का और आज की यह बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई! राम राम! लानत है। कुछ लीडरी की कमाई की, कुछ पढ़-लिखकर शोहदा बनकर घूमने की कमाई बाक़ी है।"

गोरेमल यह कहता हुआ गद्दी से बाहर चला आया। सूरज वहाँ से चला गया था।

"तुम अपना घर बरबाद करो चेतराम! चाहे आग लगा दो इसमें, लेकिन तुम मेरी फ़र्म नहीं बरबाद कर सकते। बहुत सब्र किया मैंने!" गोरेमल की आवाज़ बहुत ऊँची हो गई—इतनी कि चेतराम को धड़का शुरू हो गया। वह वहीं गद्दी पर लुढ़क गया।

सूरज दौड़ा हुआ आया। डॉक्टर को बुलाने भागा। घर, डॉक्टर, अस्पताल और पिताजी—सूरज को और कुछ नहीं सूझता था।

गोरेमल ने कई बार इस तरह कहा, "बनिया और दिल की बीमारी! हद हो गई! मेहरे हैं मेहरे!"

रात के दस बजने के बाद चेतराम की तबियत ठीक हुई; और तब वह स्वस्थ ढंग से साँस लेने लगा।

अगले दिन शाम के वक्त, जब कहीं रोशनी भी नहीं जली थी, सूरज

पिताजी को दवा पिलाकर गोरेमल के पास आया। गोरेमल सेहन में आरामकुरसी पर बैठा था। सूरज ने अपने बैठने के लिए एक कुरसी खींच ली। कुछ देर तक चुप रहा, जैसे संकल्प के निःशब्द मन्त्र पढ़ रहा हो।

"नानाजी, यह सारी फ़र्म आपकी है ?"

"क्यों, क्या बात है ?"

"मैं जानना चाहता हूँ।"

"और अब तक तुम क्या जानते थे ? ज़रा ग़ौर करने की बात है, मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम्हें क्या पता था ?"

"यही कि यह फ़र्म श्री चेतराम और गोरेमल दोनों की है—रुपये में छः आने की पार्टनरशिप !"

"छः आने किसके हैं, यह भी पता है ?"

"मेरे पिताजी के !"

"फिर क्या पूछना है ?" गोरेमल देखता रह गया।

"लेकिन यह ग़लत है। सच यह है कि यह सारी फ़र्म आपकी है। हम सब नौकर से भी बदतर हैं, पिताजी तो······।"

गोरेमल ने डाँटकर सूरज की बात काट दी, "क्या पिताजी ?"

"पिताजी कुछ नहीं, मैं भी कुछ नहीं।" सूरज जैसे अपने-आपसे कह रहा था। "हम अपना घर बरबाद कर सकते हैं, इसमें आग लगा सकते हैं, लेकिन हम आपकी फ़र्म नहीं बरबाद कर सकते। आपने अब तक बहुत सब्र किया।"

"तो यह क्या ग़लत है ? यह ग़लत है क्या ?"

"बिलकुल सही है।"

"जिस दिन अपनी पूँजी से दो पैसे पैदा करोगे उस दिन पता चलेगा लल्ला ! यह लीडरी नहीं है, यह रोज़गार है," गोरेमल ने कहा।

"जी हाँ रोज़गार है। इसके लिए साहूकार यह मनाए कि सदा महायुद्ध छिड़ा रहे, सदा क़हत और अकाल पड़ा रहे, देश में विदेशी

सरकार हो।"

"तेरा मतलब क्या है ?" गोरेमल ने संयत स्वर में पूछा।

"यही कि आप अपनी फ़र्म यहाँ से ले जाइए। हमें नहीं चाहिए यह।"

यह कहता-कहता सूरज काँपकर उठ गया। उसे उस क्षण लगा कि वह लघु से विराट हो गया। उसकी बाँहें अजेय हो गईं। उसकी छाती पहाड़ की तरह फैलकर उठ गई। और वह गोरेमल उसे ऐसा लगा, जैसे कोई चूहा हो, जो उसके पहाड़ के नीचे दब गया हो।

सारे मुनीम, नौकर-चाकर वहाँ घिर आए। भीतर से रूपाबहू दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। आग्नेय दृष्टि से गोरेमल सूरज को देख रहा था, और मारे क्रोध के वह काँप रहा था। उसकी वाणी थरथरा रही थी।

और सूरज निःस्पंद था, जैसे किसी साधक को अनुभूति मिल गई हो, जैसे उसके असंख्य विद्यार्थी इन्क़लाब ज़िन्दाबाद बोल रहे हों, जैसे 'भारत छोड़ो'—'क्विट इण्डिया' का प्रस्ताव आज अंग्रेज़ के गले मढ़ दिया गया हो।

सूरज—विजयी !

सूरज—स्वतन्त्र !

सूरज के आनन्द क्षण—ऐसे जो आज तक अनुभूति में नहीं आये थे, जो कभी नहीं जिये गए थे !

सूरज सबका मुँह देखने लगा। गोरेमल चीख़-चीख़कर बोल रहा था। सूरज का जी हो रहा था कि वह गोरेमल को समझाए, शान्त करे, आश्वासन दे। वह जो माँगे सूरज उसे निःसंकोच दे दे। गोरेमल उसे बहुत अच्छा आदमी लग रहा था।

"लेकिन तू कौन है ? मैं तुझे क्या समझता हूँ ?" गोरेमल ने तड़पकर कहा।

"मैं ?...मैं सूरज और चेतराम दोनों हूँ।"

"और मैं भी चेतराम-गोरेमल हूँ ।"

यह कहता हुआ गोरेमल भीतर की ओर बढ़ा, जहाँ चेतराम सोया पड़ा था। पीछे-पीछे सूरज भी गया—ऐसी चाल से जो सर्वथा अपूर्व और मौलिक थी।

पलंग पर चेतराम निस्तब्ध पड़ा था। पायताने रूपाबहू खड़ी थी—माथे पर आँचल की छाँव डाले।

सूरज कमरे के दरवाज़े पर खड़ा रह गया।

गोरेमल चेतराम के मुँह पर चढ़ आया।

"अपने सपूत को सुना ?"

चेतराम न जाने क्या निहारता रहा। सूरज पास चला आया।

"सुना कि नहीं अपने पूत को ?"

"सुन लिया," चेतराम ने धीरे से कहा।

"फिर बात ख़त्म हो गई," गोरेमल का स्वर गिर गया और वह रूपाबहू को देखने लगा। उसका मुँह इतना छोटा दीखने लगा था, जैसे वह कोई निर्दोष शिशु हो, जिसे ममता चाहिए।

रूपाबहू से सम्हाला जाकर चेतराम पलंग पर बैठ गया। मुड़कर उसने गोरेमल के चरण छू लिए। "सूरज की बात पर न जाओ लाला, ज़बान पर खून है उसके! मैं तो अभी ज़िन्दा ही हूँ। डॉक्टर ने उठने, चलने-फिरने को मना किया है। वैसे तो मैं अच्छा हो चला हूँ।"

गोरेमल चुप खड़ा था, पर जैसे वह चेतराम को नहीं सुन रहा था, कहीं कुछ और देख रहा था।

"मैंने तो कभी कुछ नहीं कहा आपको; कि कहा है कभी कुछ ?"

"लेकिन सहा कितना है ? यह दौरे की बीमारी किसने दी है ?"

"तुम चुप रहो सूरज !" चेतराम ने दर्द से डाँटा और कुछ कहना चाहा, पर गोरेमल ने चेतराम को बोलने से रोक दिया, "तुम झूठे हो चेतराम, बुज़दिल और दब्बू ! जो सच है उसे मैं जानता हूँ।"

यह कहता हुआ गोरेमल कमरे से निकल गया। शेष कमरे में

सन्नाटा खिंचा रह गया। बहू से सम्हलाकर बैठा हुआ चेतराम, सूरज और रूपाबहू, तीनों एक-दूसरे को देखते रह गए।

कुछ ही क्षण बाद बाहर से दौड़ा हुआ हिरनू आया और पीछे-पीछे रामचन्दर मुनीम, "सेठजी चले जा रहे हैं, कौन रोके उन्हें ?"

"चलो, मैं रोकता हूँ।"

यह कहता हुआ चेतराम पलंग से नीचे उतर आया। रूपाबहू अजब ममता से पति को सम्हालती जा रही थी, सूरज उसे दौड़ने से रोक रहा था, लेकिन चेतराम सबको बेधकर बाहर निकल गया। पर गोरेमल जा चुका था।

चेतराम की आँखों में न जाने क्या देखकर सूरज की धरती डोल गई। उसने काँपते स्वर में कहा, "बाबू! अगर ऐसी बात है तो मैं गोरेमल से माफ़ी माँग सकता हूँ।...बोलो बाबू!"

चेतराम ने सिर हिलाया।

"लेकिन तुम ऐसे क्यों देख रहे हो ?" सूरज ने तप्त मुख से पूछा। "जिसमें तुम्हें सुख और शान्ति मिले, मैं उसके लिए सारी यातना सह सकता हूँ।"

"नहीं-नहीं," रूपाबहू ने सूरज के मुख पर अपना हाथ रख दिया, "उसके लिए हम हैं, तुम क्यों ? लल्ला, तुम क्यों चिन्तित होते हो ? जाने दो न गोरेमल को। हम क्या मर जायँगे ? ले जाय वह अपनी कृपा और दया यहाँ से! हम जल चुके, अब वह क्या कर लेगा ?"

सूरज रूपा माँ को देखता रह गया, जैसे वह माँ को पहली बार देख रहा हो। फिर उसे मधू बुआ की सुधि हो आई—मधू बुआ के भीतर बैठी हुई रूपा माँ, रूपाबहू; और मधू बुआ सूरज से कह रही है, "जब तुझे कभी सत्य और विश्वास की आवश्यकता पड़े, तू केवल रूपाबहू के पास जायगा। यहाँ सत्य केवल वही है।"

रूपाबहू चेतराम को सम्हाले हुए भीतर ले गई, पलंग पर लिटा

दिया। माथे पर हाथ रखकर देखा, बड़ा ही तेज़ बुख़ार चढ़ रहा था।

सिरहाने सूरज !

पायताने रूपाबहू !

सूरज उन अर्थहीन आँखों की गहराई को देखकर अब और डरने लगा था। उन पर हाथ रखकर उसने प्रार्थना के स्वर में कहा, "ऐसे न देखो बाबू ! इन्हें मूँदकर सो जाओ, सुबह बुख़ार उतर जायगा।"

यह कहकर सूरज ने पिता का मुँह ढक दिया।

वह धीरे से उठा, माँ के पास मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा रह गया।

रूपा माँ के चरणों में झुककर सिर टेक दिया। और जब उठा तो सारा मुख आँसुओं से तर था।

आँसू पोंछता हुआ वह तेज़ी से घर के बाहर जाने लगा—पीछे के दरवाज़े से सन्तोष के पास।

सन्तोष स्वयं दरवाज़े के भीतर आ रही थी। उसने सन्तोष को इतनी तीव्रता से अंक में भर लिया कि वह जैसे कहीं लुप्त हो गई—बड़े गहरे समुद्र में।

सन्तोष के पूरे मुख को चूमता हुआ सूरज थरथराहट में बोलने लगा, "अंग्रेज़ भाग गया। हमने स्वतन्त्रता पा ली। मुक्ति की अनुभूति छू ली मैंने।"

सूरज को लगा कि उसके अङ्क में मधु बुआ है। उसने झुककर चरण छूना चाहा, पर सन्तोष उसके पाँव में बैठ गई और मुस्कराने लगी—दूर···बहुत दूर तक वह मुस्कान खिंचती गई, खिंचती गई।

चेतराम का वह ज्वर अगले दिन नहीं उतरा। उतना ही बना रहा। अगले दिन भी नहीं उतरा, और उससे अगले दिन भी नहीं। जब उसकी नींद टूटती, तब वह उसी अर्थहीन दृष्टि से सबको देखता रहता—

रूपाबहू को, सूरज को, सन्तोष को, अपने नौकरों को, मुनीमों को, और अपने उन सब आढ़तियों और दलालों को, जो उसे बारी-बारी देखने आते। जैसे वह सबसे निःशब्द ऐसी बातें करता होता, जो उस हवा में, शून्य में और उस पूरे कमरे की ख़ामोशी में उभरकर सुनाई देने लगतीं।

वह चुप···निःशब्द वाणी !

वे अर्थहीन गहरी आँखें !

और जब वह सो जाता, और कमरे का दरवाज़ा बन्द हो जाता, तब वह धीरे-धीरे बड़बड़ाता—'ऐसा न करो लाला ! मैंने थोड़े तुम्हें कभी कुछ कहा है। सूरज हमारा मूलधन है, तुम भी तो कहा करते थे। वह 'विल' फाड़कर फेंको नहीं ! सूरज तुम्हारा नाती है लाला ! क्यों ले जाते हो ? सब इसी का तो हक़ है। कहाँ लेकर जाओगे सब ? इसका हक तो न मारो लाला ! यह सूरज तुम्हारा ही है—हम सबका है—मूल, ब्याज, कर्ज़-उधार, जमा-खाता, हुण्डी···गिरवी···सट्टा···तराजू···बाट···कच्ची बही···पक्की बही···असली···नकली—सब यही तो है लाला ! ओ लाला···सेठ ! सुनो तो···। अयँ···अयँ···सुनो····नहीं···नहीं। सुनो ···वह 'विल' है न ! अयँ···अयँ।'

रूपाबहू सदा बैठी सुनती रहती, लेकिन सूरज के लिए वह असह्य था। उस अवस्था में चेतराम का वह बड़बड़ाना सूरज में कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न करता था कि वह अजीब पश्चात्ताप से बिंधने लगता था—'मैंने पिताजी की सारी तपस्या नष्ट कर दी।'

सूरज में गोरेमल के प्रति भी एक अजीब-सी दया उभरती थी, जो उसे निर्बल तो बनाती ही थी, साथ-साथ उसे दंश भी करती थी। गोरेमल जब उस रात को स्टेशन पर पहुँचा, तो वहाँ उससे बिहारी, नैनू और कुंसामल की भेंट हुई थी। वे बताते थे कि किस तरह सेठ दुखी था, कैसी-कैसी वह बातें कर रहा था—कितना दीन-असहाय लग रहा था ! क्या-क्या सोचा था उसने सूरज के लिए ! कितना बड़ा आसरा

था उसे !

गहरी रात तक ठाकुरद्वारे में द्वादशश्रेणी हरिकीर्तन पार्टी जमी हुई थी। सूरज अपनी अनिद्रित अवस्था में गोरेमल की ही स्थिति से आक्रान्त था। उसे बेधकर निकल जाने का उसे कोई भी मार्ग नहीं मिल रहा था, जैसे मन के हर दरवाज़े पर कहीं चेतराम और कहीं लाला गोरेमल पथ रोके खड़े रहते थे। उधर फ़िल्मी तर्ज़ पर यह कीर्तन उभर रहा था :

प्रेम भरा संसार, मेरे मन दुनिया बसा ले।
मातु पिता गुरु मित्र को, करता हूँ परणाम,
करो दया मुझ पर सबै, निशि-दिन आठो याम।
ठाकुरजी करुणा करहु, हूँ अति बुद्धि-विहीन,
होय मनोरथ सफल मन, तुम हो दया प्रवीन।
मेरे मन दुनिया बसा ले······!

यह कीर्तन सूरज को बेतरह चुभने लगा। 'इतनी रात तक चीख़-चीख़कर यह बेहूदा कीर्तन ! ये इसीलिए बुद्धि-विहीन हैं कि ठाकुरजी इन्हें करुणा दें। ये आत्मसम्मानहीन, दया के भिखारी······!' सूरज पिछवाड़े का दरवाज़ा खोलकर ठाकुरद्वारे में गया। राजू पण्डित की समाधि लग गई थी, नाचते-नाचते ब्रह्मलीन होकर बेहोश हो गए थे। गोपी माँ आँखें मूँदे बैठी थीं, और उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। दो स्त्रियाँ राजू पण्डित को पंखा झल रही थीं और दो पुरुष गोपी माँ को, तथा हरिकीर्तन तारसप्तक से भी ऊपर चढ़ता चला जा रहा था। बीच-बीच में 'हरी बोल', 'हरी बोल' ! 'काट दे फाँसरी, बाँसुरी वाला !' ये नारे लग रहे थे।

"क्या है यह बेहूदगी ?" सूरज बीच में आकर जैसे चीख़ पड़ा, "आप लोग आदमी की तरह नहीं रहना जानते क्या ? आख़िर किसी को सोना नहीं है क्या ?"

हरिकीर्तन भंग हो गया। 'भंग करने वाला राक्षस है, दुष्टात्मा है,

नास्तिक है ! हम इसे सहन नहीं कर सकते । हम प्राण दे देंगे इसी बात पर । यह कौन होते हैं ? क्या समझते हैं अपने-आपको ? अपनी असलियत तो देखें !'

सूरज पर सब बिगड़ खड़े हुए, और सबके बीच में वह घिर गया । तभी उसने देखा, हरिकीर्तन मण्डली में झण्डावीर मिठाईलाल भी मौजूद है । राजू पण्डित की समाधि भंग हो गई । उन्होंने देखा कि हरिकीर्तन मण्डली वालों से भी अधिक मुहल्ले के श्रोतागण सूरज पर बिगड़ खड़े हुए हैं । न जाने कब की कितनी प्रतिक्रियाएँ उस पर एक संग बरसने लगीं ।

राजू पण्डित ने एक ही आवेश में सबको अलग खींच दिया और सारी भीड़ को एक दुख-भरी तरेर से देखते हुए बोले, "इसीको हरिभक्ति कहते हैं ? मामूली-सी बात पर इतना क्रोध ! और किस पर ? सूरज जैसे इंसान पर······सूरज, जो सचमुच सूरज है !"

"जी हाँ तू क्यों न कहेगा, सचमुच तो है ही वह !" भीड़ में से न जाने किसकी आवाज़ आई, उस आदमी का पता न चला ।

एक तीव्र विरोध और असन्तोष दिखाती हुई कीर्तन-पार्टी वहाँ से चली गई । श्रोताओं में से अपना-अपना मुँह अपनी-अपनी बात कहते सब चले गए । चुप रहकर कोई न गया—यहाँ तक कि मिठाईलाल भी यह कहता गया—'यह तो बड़ी बुरी बात है ! आप नास्तिक हैं तो अपने घर रहिए चुपचाप ! यह क्या तमाशा है ?'

गली से गलियों में लोग बोलते चले गए; एक से अनेक मुखों में बात फैलती चली गई । घर से घरों में, घरों से स्त्रियों में, स्त्रियों से पूरी बस्ती में यह ज़रा-सी घटना असंख्य व्याख्याओं के साथ 'एक हाथ ककड़ी नौ हाथ बीज' जैसी बात बन गई ।

७

रूपाबहू हाहाकार करके न रो पाती। वह निःशब्द रोती, झलझल आँसुओं से तर—सौ-सौ पाँत की अश्रुधारा। बावरी बनी चुपचाप बैठी रहती, जैसे वह गूँगी हो गई हो—अकिंचन और दीन। और जब-जब वह अपने कमरे में जाती, उसे चेतराम की सजीव छाया दीख जाती। वह स्नेह-भरा, भोले-भाले मुख वाला, पतले माथे वाला, काली-काली, भरी मूँछों वाला, फूले-फूले गाल, खुला मुख, जैसे सदा हँसता हुआ—ढीली-ढीली धोती वाला, बहुत चौड़ी छाती वाला, बड़ी-बड़ी आँखें पर जैसे धूमिल-धूमिल, और वह राजा चेतराम। दीवार थामे हँस रहा है वह, पलंग पर झुका हुआ समझा रहा है—'पगली, इतनी-सी बात! ले थाम बच्चे को! मैं समझूँ हूँ कि क्या बात है! भला यह भी कोई बात हुई!'

और वह छाया मुस्करा पड़ती—शिशुवत्, स्नेहसिक्त।

और वही गद्गद, गुलगुला स्वर—'हुँ, निरी बच्ची हो जाती हो। नासमझ कहीं की। जो तुमसे पैदा हुआ, वह मेरा क्यों नहीं? ख़ाम-ख़ाह के लिए बचपना करती हो। ख़बरदार, अगर यह बात मन में रखी! बेकार का वहम! सब निकाल दो मन से, हाँ!'

यह सब एक ही पल में उस कमरे में रूपाबहू को दिख जाता, अनुभूति में, समूची दृष्टि में तिर जाता और वह बिना छाती पीटे, रुदन का हाहाकार मचाए बेहोश हो जाती।

अनेक सगे-सम्बन्धियों से घर भरा था। तेरहवीं के दिन क़रीब थे। कोई औरत रूपाबहू को सम्हालती हुई भरे कण्ठ से कहती, 'जब राजा ही चल बसा तो रानी बन का पात हो गई!'

कोई मुँह पर पानी के छींटे मारती हुई कहती, 'जिसका सब लुट गया, वह न बेहोश होगी तो कौन होगी? जब सरदार ही न रहा, तो सब विरथा जी!'

'घायल हिरन कूँ सींदुर रोवै !'

लेकिन घर के पिछवाड़े वाली गली से कोई कह उठता, 'अब आया रँडापा, अब खेलें सँडापा ! पतिवरता···पतिवरता !'

दूसरी तीसरी से कह उठती, 'अब करें तो देखूँ ! अब किसके कोरे में जा छिपोगी ? हाय-हाय ! इतना सीधा, इतने बड़े दिल का पति !'

'उसी के पाप से तो वह मरा ही, की ले अब खे रँडापा ! अरे, सब गोसइंयाँ देखता है जी ! बड़ी नज़र है उसकी ! सबकी खाता-बही है उसके इजलास में !'

जियालाल के तख़्ते पर जब सब लोग जुटते, तब कभी आधे से अधिक लोग इस मत के होते कि चेतराम को गोरेमल ने मारा। पर दूसरे दिन बहुमत उलट जाता—"नहीं जी, क्या बकते हो, लाला सूरज परसाद ने अपने बाप को मारा। लीडरी करने चले थे न !"

"लायक़ पूत ने बाप की सारी तपस्या में आग लगा दी !"

तब एकाएक रम्मन अकेला सबका विरोध करता, "तुम सब बनिये की अक़्ल से सोचते हो। सूरज ने बहुत अच्छा किया। मैं कहता हूँ, महान् कार्य किया उसने ! मरना-जीना तो लगा ही रहता है !"

जियालाल समर्थन करता, "हाँ है तो यार ! बहुत बड़ी बात है ! सोचने की बात है !"

विपिन ताव में कहने लगता, "लेकिन गोरेमल की भी शराफ़त देखो, चेतराम-गोरेमल की फ़र्म से केवल अपना ही हिस्सा ले गया—चेतराम का पूरा शेयर छोड़ गया।"

"छोड़ते न तो जाते कहाँ वो ?"

"अजी, उसके लिए सारे रास्ते खुले थे। वह गोरेमल मामूली आदमी नहीं था, छण में लाखों का वारा-न्यारा करने वाला आदमी। और उलटे सूरज ने उसकी इतनी बेइज़्ज़ती की। वह रोकर गया है स्टेशन पर। अब पता लगेगा सूरज साहब को !" लगता कि पहलाद साहु न जाने कितना बोलते जायँगे।

विपिन साहु इसे और आगे ले जाते, "जिसने परचूनी से सेठ बनाया, बैंकर एंड कमीशन एजेण्ट, उसीसे ऐसी दुश्मनी? क्या कर लिया गोरेमल का? ख़ुद अपनी ही गद्दी में आग लगाई न!"

"अमे, चेतराम के संग बेटी ब्याही थी कि ख़ैरात में गोरेमल ने वह सब किया था?" रम्मन ने कहा।

"अजी छोड़ो इन बातों को," पहलाद ने बमककर कहा, "हमें क्या इन बातों से लेना-देना। एक बात सुनो जियालाल, गोपी माँ तो फिर लौट आई। कैसे भगाया कि···।"

जियालाल बोला, "अरे यार, बड़ी गुरु है वो। बदायूँ तक तो चुपचाप चली गई। वहाँ बोली, 'तुम लोग मुझे कहाँ ले जा रहे हो?' मैंने कहा, 'बम्बई चल रहे हैं हम लोग, कुछ रुपये हों तो निकालो।' फिर वह कहने लगी, 'बेटा, नासमझी से काम मत लो। यह जो मेरा तन है न, यह ठाकुरजी को चढ़ चुका है—क्या कलकत्ता, क्या बम्बई, मेरे लिए सब बराबर है। तुम्हारी इच्छा ही है तो तुम परसाद ले लो, और क्या करोगे!' मैंने कहा, 'हे जगदम्बा, जगदेश्वरी काली माँ, जै हो तुम्हारी। पतितपावन, मैं हारा तुम जीतीं।' फिर भइया मैं भागा वहाँ से—ऐसा भागा कि जैसे मैं ही गोपी माँ हूँ। है यार कोई ताक़त उस औरत में!"

"हाँ-हाँ, अब क्यों नहीं कहेगा? परसाद लेकर शिष्य जो हो गया तू!"

"अरे-रे-रे राम-राम, शिव-शिव!" कान पकड़कर जियालाल बड़ी तेज़ी से उठने-बैठने लगा, एक दो तीन चार, एक दो तीन चार! "इन्कलाब ज़िन्दाबाद!"

हँसी के बीच से विपिन ने कहा, "अरे-रे-रे-रे मास्टर चंदूलाल का 'लंकादहन' फिर निकला है, मैं तो यह दिखाना ही भूल गया।" यह कहते-कहते विपिन ने 'लंकादहन' का नवीनतम संस्करण निकाला। सब टूट पड़े उस दो पेजी अख़बार पर।

मुखपृष्ठ पर हेडलाइन, मोटे-मोटे अक्षरों में—'कीर्तन पार्टी पर अधर्मी

का आक्रमण' । और इसके नीचे—'गोपालन मुहल्ला के प्रीतमदास के ठाकुरद्वारे में बड़े दरवाजा की कीर्तन पार्टी पर सूरज का अधार्मिक कांड । बस्ती की तेरह कीर्तन पार्टियों की एक बैठक । सूरज के विरुद्ध प्रस्ताव पास ।' इसके नीचे पूरा पेज इसी प्रसंग में रँगा हुआ था । रम्मन बोला, "अमे यार, चंदूलाल को तुम लोग नहीं जानते न ! वह हरम्मा बस सौ-पचास खाकर बड़े दरवाज़ा वालों से मिल गया होगा । उसे तो रुपये चाहिएँ । एक बार मुझसे मिला, कहने लगा, 'रम्मन, बस सौ-रुपये दो, मैं साहू साहब का पर्दा फ़ाश कर दूँ ।' मैंने कहा, 'अबे वह झापड़ मारूँगा कि···' तभी तो नाराज़ होकर उसने मेरे खिलाफ़ वह लिखा ही था ।"

"सर साहब···सर साहब····!" सब लोग चिल्ला उठे ।

महाजन चिरौंजीलालजी रिक्शे से गुज़र रहे थे । उन्होंने वारफंड में सीधे गवर्नर के नाम पता नहीं कितना रुपया भेजा था । कहते तो हैं कि तीन हज़ार भेजा था, पर लोग कहते हैं कि इक्यावन रुपये दिये थे । तीन हज़ार तो रीजनल फूड कण्ट्रोलर को दिये थे । बहरहाल, जो भी हो, जितना भी हो, गवर्नर का एक छपा हुआ पत्र मिठाईलाल-झंडावीर के पिता महाजन चिरौंजीलाल 'सर' के कमरे में बेशकीमती फ्रेम में जड़ा हुआ टँगा है । उसमें ऊपर लिखा है, 'डियर सर' और बीच में लिखा है 'सर', अंत में लिखा है 'सर', अर्थात् गवर्नर ने महाजन को 'सर' की पदवी दी ।

तब से 'सर साहब' गद्दी पर नहीं बैठते—कुरसी पर, या तो स्प्रिंगदार पलंग पर, जो लखनऊ से ख़रीदकर मँगाया है—अंग्रेज़ का पलंग, जो नीलाम करके चला गया ।

अपनी 'सर साहबी' रईसी और आरामतलबी को चरितार्थ करने के लिए महाजन चिरौंजीलालजी कभी-कभी तो दिन-रात उसी स्प्रिंगदार पलंग पर पड़े रहते हैं । खाना-पीना, उठना-बैठना, सब उसी कमरे में ।

सर साहब तख़्त के सब लोगों को सिगरेट पिलाकर चले गए। क़हक़हा तब भी जारी रहा।

तेरहवीं के बाद घर में सगे-सम्बन्धियों की भीड़ समाप्त-सी हो गई। सीता और गौरी उस घर में अब तक मौजूद थीं। सीता—चार बच्चों की माँ, चारों पुत्र—मूलचन्द, शिवचन्द, रूपचन्द और कृष्ण-चन्द। और कितनी मोटी है सीता जीजी—थलथली, भरी हुई, गहनों से पटी हुई। तोंद में कई पेटियाँ पड़ी हुईं। कैसी लगती है—भी... भी...भी हँसती है। और गौरी जीजी, यह भी एक लड़की की माँ।

रूपाबहू का घर अब भी भरा है—पाँच नाती, एक नातिन, दो बेटियाँ और वह सूरज, जो सहस्र पूत के बराबर है।

सूरज खुरजा गया—मधू बुआ और फूफा की तलाश में। वहाँ भी पता न चला। न जाने कहाँ चले गए वे! कैसे होंगे? उन्हें पत्र तो लिखना ही चाहिए। अपनी ख़बर तो दें, पता ही दें। बुआ दया से भागती है, तो है कौन ऐसा जो बुआ को दया देगा! फिर कैसा डर?

बुआ मेरी माँ!

मेरी आस्था!

खुरजा, अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, रामपुर, ऋषीकेश, सहारनपुर, देहरादून, हरिद्वार के चक्कर लगाकर सूरज घर लौट आया। बुआ और फूफा का कहीं भी पता न लगा। जाने कहाँ छिप गए!

बड़ी तेज़ हवा बह रही थी; लू भी। सूरज गद्दी पर बिलकुल नहीं बैठ पाता था। अब गद्दी पर एक ही मुनीम—सीताराम जी रह गए।

मनोरथ और होरी भी न रहे, अकेला हिरनू रह गया था—बैंक, बाज़ार, काँटा, बाहर-भीतर, चारों ओर पहुँचने के लिए।

सूरज घर में गया। उसे ऐसा लगा कि सन्तोष आई है।

पर आँगन सूना था।

तीन-चौथाई आँगन में धूप थी, छाया महज़ एक किनारे पर सिमटी हुई थी—रूपा माँ के कमरे की ओर। सूरज ने देखा, रूपा माँ का वह कबूतर उसी छाया में बड़े ठाठ से बैठा है—अभय और सन्तुष्ट।

सूरज को बहुत अच्छा लगा। सारा मुख मुस्कान से चमक आया। वह बढ़ा, और जब कबूतर को अपने हाथ में उठाने लगा तो उसने देखा, सामने मोरी में बड़ी तेज़ी से एक काली बिल्ली भाग गई।

सूरज एक क्षण तो देखता रह गया, फिर उसने कबूतर को चूम लिया, 'बच गए बेटे!...मान गया बहादुर हो!'

सहसा सूरज को आभास हुआ कि रूपा माँ के कमरे से भरी और तनी हुई सिसकियाँ उभर रही हैं।

कोई कह रहा है—सम्भवतः गौरी जीजी है, वही बुआ-जैसी पतली आवाज़ है, "नहीं माँ...अब तो भूलना ही होगा। आख़िर काम कैसे चलेगा?"

रूपा माँ इस तरह बोली जैसे सुबकता हुआ शिशु अपनी माँ से कुछ कहे, "अच्छा किया उन्होंने। बहुत अच्छा किया तेरे बाबू ने....उनके सामने मैं कैसे मर सकती थी...बहुत बड़ा कर्म चाहिए पति के कन्धे से चिता तक जाने के लिए...।"

सूरज के हाथ से कबूतर गिर गया। उठाया, फिर गिर गया, फिर गिर गया। जिस साथे में वह खड़ा था, वह साया जैसे टूटने लगी—दूर...बहुत दूर तक कुछ चटचटाकर फूटता चला गया... टूटता चला गया। नहीं...नहीं, यह सब कुछ नहीं है....है। कुछ नहीं है।

सूरज ने फिर कबूतर को उठा लिया, दोनों हाथों से उसे जकड़ लिया। और यंत्रवत् उसके पाँव रूपाबहू के कमरे की ओर मुड़ गए। बन्द दरवाज़ा। सिसकियाँ इस दरवाज़े को भेद सकती हैं, पर इसे तोड़

नहीं सकतीं। भीतर सिसकियाँ, बाहर सन्नाटा, कुहरे से भरी हुई एक वादी। तोड़ दो इसे! देख लो इसमें बन्दी क्या है?

दरवाज़ा खुला।

सूरज कबूतर को अंक में जकड़े भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी अजब तनी हुई मुद्रा देख गौरी जीजी बाहर भागी।

रूपाबहू ने मातृत्व गरिमा से सूरज को बरबस छू लिया, और अजब स्नेह से छलकते हुए उसे अपने में बाँध लिया, "आओ···मेरे पास बैठो···नहीं-नहीं यहाँ···मेरे अङ्क में। कबूतर को नीचे छोड़ दो। बोलो क्या बात है बेटे? ऐसे न देखो मुझे! क्या बात है?"

"तुम क्या कह रही थीं अभी?" सूरज ने समस्वर में कहा।

"क्या कह रही थी!" रूपाबहू सूरज की दृष्टि में जैसे टँग गईं। "क्या कह रही थी! अयँ··क्या कह रही थी!"

"हाँ तुम कह रही थी कि···कि···।" सूरज की वाणी थरथरा गई।

"मैं न जाने क्या-क्या कहती रहती हूँ। तुम्हें मेरी बातों से क्या मतलब? तुम सुख से रहो बेटे!" रूपाबहू विशुद्ध जननी के स्वरों में कह रही थी।

"तुम्हारी बातों से····।" सूरज खिंचकर रह गया, और धीरे-धीरे उसका मुख आरक्त हो आया। "तुम्हारी बातों से···"

रूपाबहू सूरज की आँखों में उस गहरी व्यथा को देखकर काँप गईं। जो अव्यक्त था, अकथ था उसकी वाणी से, वह सब-कुछ उभर आया था उसके मुख पर—जैसे उसका मुख झुर्रियों से पट गया था। ज्वाला, आँसू, व्यथा और न जाने क्या-क्या, कितना भयावह, सब एक ही साथ उसमें भर रहा था।

"नहीं-नहीं, रुको सूरज!" रूपाबहू ने सूरज को भागने न दिया, "लो तुम भी सुन लो, मैं स्वीकार करती हूँ। मैं सब-कुछ स्वीकार करती हूँ। मैंने जीवन-भर छल किया और लड़ी भी, खूब लड़ी, पर आज मैं उऋण हो जाना चाहती हूँ। झूठ, कलंक, अपमान मेरे हिस्से में; पर

सत्य तुम ले लो।" रूपावहू का कण्ठ बिलकुल सूख रहा था, पर मुख से जैसे वह न जाने किस अदृश्य में हँस रही थी, "जो तुमने सुना वह सब सच है, सब सच है। लेकिन याद रखना सूरज, मेरी दारुण पीड़ा भी सच है।"

यहाँ रूपा माँ का स्वर एकाएक पिघल गया।

सूरज के सामने सेमल के फल की तरह पहाड़ की चोटियाँ एक-एक करके चटख रही थीं...

एक चोटी—चन्दन गुरु, 'अबे तू किस माँ का जना है! हरम्मा कहीं का!'

दूसरी चोटी—चौधरी रामनाथ, 'अरे है किसका?'

तीसरी चोटी—बड़ी कोठी वाला सैयाँमल, 'राधा-राधा प्यारी, ठाकुरद्वारे का पुजारी!'

चौथी चोटी—प्रोफ़ेसर चन्दूलाल और 'लंकादहन' में 'पर्दाफ़ाश अंक' की विज्ञप्ति।

एक से अनेक और असंख्य चोटियाँ—सूरज का शिशु, चेतराम का भीतर से वैराग्य, मधू बुआ, सन्तोष और यह बिना पंख का असहाय कबूतर—ये सब-के-सब सूरज में मथने लगे, दूर-पास न जाने कहाँ-कहाँ तक ये तिरने लगे।

सूरज भागने लगा। रूपावहू ने फिर पकड़ना चाहा, लेकिन सूरज ने बेरहमी से उसे झाड़ दिया। वह फिर पकड़ने दौड़ी, सूरज ने उसे धक्का देकर गिरा दिया और अपनी चप्पलों से मारने लगा। मारते-मारते उसे पहली सुधि तब हुई जब वह रूपावहू को छोड़ सीता और गौरी जीजी को मारने लगा। दूसरी सुधि उसे तब हुई, जब वह रूपावहू के मुँह पर प्रहार करने चला—वह निर्विकार मुख, अश्रुहीन आँखें, द्रष्टा जैसी चितवन, निःस्पन्द ओंठ, उदास सीमंत।

यह दूसरी सुधि उसे विषबाण की तरह बेध गई—आर-पार नहीं, बाहर से आई और भीतर अटक गई—सारी पसलियों में, समूचे अन्तस्

में। और फैलती गई, दूर-दूर तक, न जाने किस लोक तक, स्तर तक, गहनतम अनुभूतियों तक।

फिर सूरज खड़ा रह गया किवाड़ के सहारे। शून्य में न जाने क्या देखता रहा—मौन, अलक्ष्य। दूर-दूर पलकों में आँसू घिर आए थे, लेकिन बीच शून्य था और शून्य में जैसे कोई अट्टहास कर रहा था।

सीता और गौरी सूरज को वहाँ से अलग हटा ले जाना चाहती थीं, लेकिन सूरज ने बड़ी मज़बूती से किवाड़ थाम रखा था। तूफ़ान गाड़ी है, सबसे त्यक्त, सूरज गरीब, असहाय, किसी दूर देश के प्लेट-फार्म पर छूट गया है। गाड़ी उसे छोड़कर चली जाने वाली है, उसे कोई नहीं बैठने देगा गाड़ी में—वह त्याज्य है, निर्मूल है, उपेक्षित है। बाहर से वह सीकचा पकड़कर लटक गया है। पाँव के नीचे फ़ुटबोर्ड भी नहीं है—सब आधारहीन है; मुट्ठियों में महज़ सीकचे हैं और कुछ नहीं। *और यह सीता-गौरी जीजी हैं कि उसे बाहर खींच रही हैं*—चलती गाड़ी से गिरा देना चाहती हैं। मैंने क्या किया है किसीका? संसार में इतनी ही तो जगह मिली है जहाँ खड़ा हूँ। इस जगह से मतलब ज़मीन नहीं। हाय-हाय! ज़मीन मुझे कौन देगा? मैं खड़ा हूँ, केवल इसी भाव पर खड़ा हूँ, भाव के विवेक पर, चिन्तना पर।

सब हट गए। सूरज उसी किवाड़ से चिपका हुआ खड़ा है······ खड़ा है, खड़ा होने के लिए खड़ा नहीं, अपने अस्तित्व के सारे अणुओं को बाँधे-बटोरे खड़ा है; वह हिला नहीं कि सब बिखर जायगा।

शाम हो गई, रात घिर आई, और वह सूली पर झूलकर नीचे लटक गया। वहीं दहलीज़ पर बँधे घुटनों के बीच मुँह गाड़े, अपनी बाहुओं के घेरे में समा गया। पंगु रूपावहू पास आ बैठी और असहाय-दीन पुत्र के माथे पर हाथ रखकर न जाने क्या बुदबुदाती रही। सौ-सौ पाँत निःशब्द आँसुओं से जैसे कुछ कहती रही। कौन सुने इस भाषा को!

बन्द घुटनों के बीच जो आसमान था, उस सँकरे आसमान में जो सूरज की बन्द आँखें थीं और उन आँखों में जो अन्तःक्षितिज था, सूरज उसीमें भाग रहा था। पूरे जंगल में चारों ओर से आग लग गई है और बीच में वह हिरन फँस गया है, जो दहाड़-दहाड़कर कह रहा है, 'मैं वह नहीं था जो हूँ। सुन अँग्रेज़ी हुकूमत! मैं वह चेतराम का पूत सूरज नहीं था, जिसने तुमसे विद्रोह किया था; वह कोई कलंकित सन्तान था। सुनो अंग्रेज़ी हुकूमत के सैनिको, अफ़सरो, खुफ़िया पुलिस के लोगो, मैं वह नहीं था, जिसे तुमने बन्दी किया था, कोड़े लगाए थे, गरम सलाखों से दाग़ा था, अजी वह तो त्याज्य था कोई। कोई अस्वाभाविक था वह। सुनो बस्ती के लोगो, सैयाँमल, चौधरी रामनाथ, चन्दन गुरु, मास्टर चन्दूलाल, बड़े दरवाज़ा वालो! वह सूरज सूरज नहीं था यार, वह तो था यूँ ही एक अजाति, च्युत। सुनो गोरेमल, वह असली सूरज नहीं था, जिसने तुमसे विद्रोह किया था, जिसने अपनी आन पर, अपने घर के निजत्व के नाम पर, अपनी मर्यादा के प्रकाश में अपने-आपको तुमसे अलग हटा लिया था। अजी लाला, सुनो, वह तो कोई अमर्यादित व्यक्ति था। एक भयावह कुण्ठा थी वह, जो सारे फैसलों की जड़ में बैठी थी। वह सब असत्, अस्वाभाविक था लाला!

बहुत रात बीते सूरज जैसे किसी दर्शन के सहारे उठा। देखा, पास वही रूपाबहू बैठी थी, अंक में वही बिना पंख का कबूतर था।

सूरज ने कबूतर को ले लिया, "यह कबूतर मैं हूँ न! बोलो···!"

रूपाबहू देखती रह गई।

कबूतर को वापस देकर वह फिर बोला, "मैं तुमसे पैदा तो हुआ हूँ, इतना तो सत्य है न?"

उत्तर में हाहाकर करके रूपाबहू ने सूरज को अपने अंक में जकड़ लिया।

"ग़लत ! कोई भी आँसू नहीं ! ज़रा भी छल नहीं !" सूरज ने अजब गम्भीरता से डाँटा और असम्पृक्त खड़ा रहा ।

"तुम मुझसे पैदा हुए हो, केवल इतना ही सच नहीं है, इससे आगे भी है; मैंने दस महीने, दस कल्प तुम्हें अपने गर्भ में पाला है, तुम मेरी व्यथा-पीड़ा से अनुरंजित हो ।"

"पर मैं किन्हीं बुरे-से-बुरे क्षणों की देन हूँ ।" सूरज का मुख पीला पड़ गया था । रूपाबहू जैसे अडिग थी, विश्वासपूरित । उसकी वाणी से जैसे पवित्रता बरस रही हो । "सुनो सूरज ! क्षण से असंख्य गुना बड़ा जीवन है, और जीवन से भी बड़ा संघर्ष है । मैं तुम जैसा हीरा पा गई, वे क्षण चाहे जैसे रहे हों ।"

"चुप रहो !" सूरज तड़पा, जैसे वह अपने-आप को मिटा देगा ।

"मैं अब चुप नहीं रहूँगी । अब तो मैं सब कह दूँगी । आज तो मुझे जीवन में पहली बार साहस मिला है । आज तो मैं मुक्त हो गई उन क्षणों से, जिन्हें लिये हुए मैं जीवन-भर सुलगती रही, तिल-तिल-कर मरती रही ।"

"लेकिन अब मैं बन्दी हो गया ।"

रूपा माँ रोती हुई सूरज से लिपट गई, "नहीं···नहीं ! ऐसा नहीं ! जब तक मैं उन क्षणों से बन्दी थी, तभी तक तुम थे । अब नहीं । मैं अब ऊपर उठ गई । तुम्हीं ने उठाया । मुझे देखो मेरे लाल ! तुम जैसा पूत पाकर भी मैं जीवन-भर विमाता-निर्धना बनी रही; चूहे, बिल्ली और कबूतर से अपनी भूख मिटाती रही । सोचो मेरी दारुण व्यथा !"

माँ और पूत दोनों एक-दूसरे को जैसे सम्हाले हुए खड़े थे······खड़े थे, जैसे युगों से खड़े थे—चुप···निःस्पन्द ।

रूपाबहू ने दूर हटते हुए कहा, "और तुम मुझसे भी अधिक मुक्त हो । तभी स्वतन्त्रता का भाव तुम्हारी नस-नस में है । विद्रोह के सत्य से तुम पूरित हो ! यही मेरा सूरज है—जन्म से आज तक, और भविष्य तक । कितना अच्छा नाम रखा है तेरी बुआ ने ! मधू·· मेरी

मधू...।" रूपाबहू हुबक-हुबककर रो रही थी।

उसी बीच सूरज वहाँ से निकल गया। रूपा माँ उसे पकड़ने दौड़ी। सारे घर को छान डाला। बाहर-भीतर दौड़ती रह गई।

रात के दो बज रहे थे। रूपाबहू पिछवाड़े से राजू पण्डित के घर गई—इतनी सहज गति से कि मानो वह रोज़ उस रास्ते से आती-जाती थी।

उस नई, अपूर्व रूपाबहू ने अजब विश्वास और स्नेह से राजू पण्डित को पुकारा, सन्तोष को जगाया और सबको संग लिये सूरज को ढूँढ़ने लगी। स्टेशन तक गई। सबको संग लिये अपने घर लौट आई। राजू पण्डित, सन्तोष, सीता-गौरी और गोपी माँ के बीच वह बैठी रही—भरी-भरी, आलोकित, स्नेह से छलकती हुई—जैसे रूपा-बहू माँ हो और चारों ओर उसके शिशु घिरे हों।

बिलकुल सुबह-ही-सुबह रजुआ और ताले स्टेशन से घर की ओर आ रहे थे। मुरादाबाद मुकदमे की पैरवी में गये थे। चोरी का 'केस' चल रहा था।

वे दोनों सिर झुकाए, बहुत ही धीरे-धीरे बात करते हुए पण्डित के तिराहे से बस्ती की ओर बढ़ रहे थे। 'साहब की पेंच' के पास कोयला बीनने वाले लड़कों की भीड़ लगी थी। उस भीड़ में दो लड़के आपस में बुरी तरह से गुँथकर लड़ रहे थे। शेष खड़े निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। और लड़ाई भी किस बात की थी!

छेदामल के अहाते में उन लड़कों को एक फेंका हुआ बक्स मिला था। बक्स में अनेक तरह के हार, गजरे और मालाएँ थीं—खादी के पुष्पों के हार, सुनहली पन्नियों के गजरे और रंग-बिरंगे सूत की मालाएँ। अभिनन्दन-पत्र, मान-पत्र, घोषणा-पत्र, चिट्ठियों का ढेर और

उनके बीच में एक पिस्तौल मिला था। भरा बक्स लड़कों के बीच खुला रखा था और वे दोनों सरदार लड़के इस बात पर लड़ रहे थे कि वह बक्स किसी चोर का फेंका हुआ है, और दूसरा कह रहा था कि नहीं, वह बक्स पुलिस का फेंका हुआ है, फँसाने के लिए।

रजुआ और ताले ने लड़कों को हड़हड़ाकर भगा दिया और बक्स की सारी चीजें बाँधकर वे चम्पत हो गए।

ताले ने रजुआ से कहा, "पिस्तौल नहीं बेचेंगे, अपने पास रखेंगे। काम आयेगा।"

"बड़ी फँसान होगी यार," रजुआ बोला। "सब बेच दो। रुपयों की ज़रूरत भी तो है।"

"कौन ख़रीदेगा यह सब ?"

"अमे सूरज की चीजें हैं ये सब, चन्दन गुरु के हाथ बेचेंगे। वह इससे ख़ूब बना लेगा।"

ताले ने फिर कहा, "हम ही क्यों न बना लें तब ?"

"अबे झट चोरी साबित हो जायगी हम पर।"

वे दोनों चन्दन गुरु के पास गये। पिस्तौल सहित सारा सामान पचास रुपये में बिका।

आधा-आधा लेकर वे दोनों घर की ओर मुड़े। रास्ते में जगनू मिला, चेयरमैन साहब के बच्चों को स्कूल तक पहुँचाने ले जा रहा था।

"सुबह-ही-सुबह कहाँ से भाई ?" जगनू ने पूछा।

"मुरादाबाद से आ रहे हैं, कल तारीख थी उसकी," ताले ने कहा।

"मैं कहता हूँ भाई, अब से ठेला गाड़ी खरीद लो। अब भी बहुत देर नहीं हुई है।"

"अब ज़रूर खरीद लेंगे यार! इस मुकदमे से छुट्टी तो मिल जाय।"

"मिल जायगी, ईमान जीतेगा।"

जगनू स्कूल की ओर मुड़ गया; तभी उसे ताले और रज्जू की बड़ी तेज़ हँसी सुनाई दी।

शाम तक वह पिस्तौल हाथों-हाथ रामपुर पहुँच गई। चन्दनगुरु ने उससे सौ रुपये बना लिए और शेष सामान लेकर वे मास्टर चन्दूलाल के यहाँ गये। बीस रुपये उसके भी मिल गए।

अगले दिन वह सामान सन्तोष के सामने पहुँचा और उससे पचास रुपये लेकर मास्टर चन्दूलाल भी अलग हो गया। महाभारत की पोथी में वह सामान यत्न से बाँधकर सन्तोष को ऐसा लगा जैसे उसने सूरज को छू लिया।

लेकिन सूरज गया कहाँ ? रूपाबहू ने सन्तोष को सब बता दिया था—वह सब जो बताया नहीं जा सकता था, वह भी।

फिर भी सन्तोष रूपाबहू से पूछती कि सूरज कहाँ गया, और रूपाबहू सन्तोष से पूछती कि कहाँ गया उसका सूरज।

पाँचवें दिन राजू पंडित सूरज की तलाश में निकले, और उसी रात बारह बजे के बाद, न जाने कहाँ-कहाँ से भटककर सूरज सन्तोष के घर आया—अजीब दयनीय हालत में, गन्दे कपड़े, बिखरे बाल, सूखा चेहरा, लेकिन आरक्त आँखें—दमकती हुई।

बिना किसी भूमिका के स्वर साधकर वह बोला, "मेरा सब लौटा दो।"

सन्तोष जादू की मारी सूरज को देखती रही।

"क्या तुम समझी नहीं ?" सूरज का स्वर भारी होने को था, पर उस अनिर्वचनीय को रौंदकर वह सैनिक की तरह बोला, "मैं जो कह रहा हूँ उसे करना है।"

सन्तोष हिरनी की तरह देखती रही। उसकी सजल आँखों में उभर आया—मैं कुछ नहीं समझी मेरे हिरन ! जो तुम कह रहे हो,

मुझे करना अवश्य है, पर वह है क्या ? देखो न, रुको, इतने आवेश में क्यों हो ? अभी तो मेंहदी भी नहीं रचाई मैंने। दीवा तो अभी घी से भरा है। ढोलक पर ताल दे-देकर मेरी सखियों ने अभी तो गाना ही शुरू किया है। ज़रा देखो न, मेरे बिछुए में सुहाग की साड़ी फँस गई है, इसे छुड़ा दो न ! मुझे जल्दी से घूँघट करना है जी ! मुझे सम्हालो, मैं थर-थर काँप रही हूँ। यह शहनाई कब बजी ? तुम डोला सजाकर कब आये ? पहले से बता देना था न ! यह जल्दी-जल्दी में कैसे होगा सब ? आँखों का काजल बिगड़ जायगा न ! सारे गहने उलटे पहन लूँगी, फिर न कहना, हाँ !

"इस तरह क्या देख रही हो ? मैं तुमसे कुछ कह रहा हूँ।"

सूरज ने सन्तोष का कन्धा पकड़कर झकझोर दिया। लग रहा था, वह खड़ी तो है, पर बेखबर किसी ऊँची अटारी पर सोती हुई स्वप्न देख रही है।

"सुनती हो कि नहीं ?" सूरज ने डाँटा। उसकी अजब-सी तन्द्रा को भंग करने के लिए वह कटु-से-कटुतर बनता रहा। फिर हारकर वह रो पड़ा।

उन आरक्त और दमकती हुई आँखों में इतने आँसू !

सन्तोष जाग गई।

"यह क्या है सब ? बोलो क्या चाहते हो तुम ?"

सूरज सम्हलने लगा।

"चलो आज्ञा दो न मुझे ! बताओ क्या करना है ?"

"मेरा सब लौटा दो !" सूरज का स्वर इस बार सधा न था, कहीं बेतरह भीगा था—सराबोर।

"लेकिन क्यों, महाजन, इसे ज़रा समझा तो दो," भोली-भाली चितवन से सन्तोष देखती रह गई।

"तो तुमसे वह सब कहना होगा !" सूरज पीला पड़ गया।

"नहीं-नहीं, मुझे वह सब पता है," सन्तोष ने कन्धा देकर

सम्हाल लिया।

"तब भी पूछती हो क्यों ? बेरहम...."

"ठीक कहते हो, हम बेरहम न होंगे तो और कौन होगा!" सन्तोष जैसे हँस देगी, "लेकिन रहम करके मुझे तो कोई यह समझाए कि मैं क्या और क्यों लौटा दूँ ?"

सूरज ने अजब कठोरता से कहा, "इसलिए कि मण्डी के ये लोग कल यही कहेंगे कि सूरज ने माँ का बदला लेने के लिए राजू पंडित की...."

खिंचकर एकाएक सूरज का स्वर ही नहीं टूटा, जैसे वह स्वयं यह अभिशप्त तथ्य कहते-कहते अणु-अणु में टूटकर बिखर गया।

उन दोनों में कुछ थम नहीं रहा था। हज़ारों फीट की ऊँचाई से जैसे बर्फ की नदियाँ टूट-टूटकर गिर रही हों, और उन नदियों की धार के नीचे दो गरीब शिशु खड़े कर दिये गए हों—यह आज्ञा देकर कि बाँध लो मुट्ठी में ये धार।

न जाने किस आत्मबल से बड़ी देर बाद सन्तोष बोली, "सूरज, तुमने एक दिन लिखकर कहा था कि एक दीवार वह है जिससे घर बनते हैं, पर एक दीवार हमारे भीतर है—मन में; इससे हम दिनों-दिन छोटे होते चलते हैं, और एक दिन पहुँचकर हम स्वयं दीवार बन जाते हैं—चलती-फिरती दीवार, जिनसे घर उजड़ते हैं, महल-अटारी और दुर्ग भी ध्वस्त हो जाते हैं। सत्तो, हममें ये दीवारें नहीं हैं, हम तो निरभ्र आकाश हैं!"

सूरज ने बहुत दबाया, पर यह कहते-कहते उसके मन का दर्द खिंचकर रह गया, "नहीं-नहीं, वह सब झूठ था। सच केवल यह है कि हम दीवार-ही-दीवार हैं; अतः छोटे हैं, नीच हैं, असानवीय हैं।"

सूरज कुछ आगे भी कहना चाहता था, पर सब घुट-घुटकर रह गया।

सन्तोष उठ खड़ी हुई। कमरे की उस घनीभूत पीड़ा को बेधकर, नहीं-नहीं, उस सबको पीड़ा के दर्शन से बेधकर वह आँगन में

चली आई।

पूरब में शुक्र उदित हो रहे थे। हवा ठंडी बह रही थी। ठेलों पर लद्-लदकर ब्लैक के सामान का आना-जाना थम चुका था। स्टेशन जाने वाली सड़क पर अब शायद गेहूँ के बोरों से भरी आख़िरी ट्रक गुज़र रही है; इसे भी गुज़र जाने दो! घी के कड़ाहे में डालडा का आख़िरी टिन उलटा जा रहा है; इसे भी हो जाने दो। ब्लैक के रुपयों, सोने की सिलों को कोई ज़मीन में बहुत गहरे गाड़ रहा है; इसे भी खूब गहरे गाड़ लेने दो! कोई औरत रो रही है; रो चुकने दो! किसीके पलंग से शिशु गिरकर इस तरह रो रहा है; माँ कहाँ है? कोई पुरुष रो रहा है, उसकी प्रिया कहाँ है? आ जाने दो सबको! सबको लौट आने दो। टेलीफोन पर कोई चीख़-चीख़कर दिल्ली से भाव पूछ रहा है; पूछ लेने दो। सट्टे की इतनी दबी हुई बोलियाँ आ रही हैं! खुला रहने दो सट्टे का टेलीफोन।

अजब मन से चलकर संतोष सूरज के पास आई। सारे पत्र, डायरी के एक-एक पन्ने, कटेली चम्पा, बड़ी चम्पा, सूरजमुखी के असंख्य पुष्प, चमेली, गुलाब, केतकी और बेला के न जाने कितने हार, गजरे और दस्ते, चूड़ियाँ, गले का वह सोने का आभूषण जिसे अभी पिछले दिनों रूपाबहू ने पहना दिया था, पुखराज की वह अंगूठी, महाभारत की पोथी, पत्र-पत्रिकाएँ और उपहार में मिली सभी पुस्तकें, खादी की रेशमी साड़ियाँ—सब एक-एक करके संतोष सूरज के सामने रखती गई।

सूरज चुप खड़ा था।

संतोष ने न जाने किस यत्न से सबको एक कपड़े में बाँध दिया।

बड़े साहस से बोली, "लो सब बाँध दिया।"

इस तरह कई बार कहा, "लो सब बाँध दिया।"

"सब लौटा दिया?" सूरज ने धीरे से पूछा।

"हाँ, सब लौटा दिया।" संतोष आँचल में मुँह छिपाकर

बोली, और उन खुले हुए बक्सों, बिखरी हुई आलमारियों, उजड़े हुए कमरे की हर सूनी दिशा में वह घूम-घूमकर देखने लगी। जो कुछ छूट रहा हो, जैसे उसे ढूँढ़ने लगी।

"जाओ, अब कुछ नहीं रहा।"

"सच!" न जाने कितना वज़न था उस 'सच' कहने वाले स्वर में, कि कमरे की सारी दिशाएँ झनझना उठीं, जैसे बंजारों की असंख्य टोलियाँ क्षणों में गुज़र गईं।

संतोष को जब होश हुआ, तब उसने देखा, सूरज बँधे हुए सामान का वह गट्ठर लेकर चला गया था। पर यह कमरे-भर में बिखर क्या गया?

क्षण! अतीत! भाव!

'नहीं-नहीं, अब कुछ नहीं रहा! सब लौटा दिया, लौटा दिया!' संतोष अपने अन्तस् में चीख़ती रह गई और कमरे से भाग निकली।

वह ठाकुरद्वारे में गई; झम्-झम् स्नान करने लगी। प्रभु की मूर्तियों का शृंगार किया। दीपक जले, आरती सजी। अकेली शंख भी फूँकने लगी। आज बज गया वह शंख, जो उससे कभी न बजता था।

एक हाथ में आरती का थाल, दूसरे में घंटी का नाद, जिसमें मृदंग, मंजीर, दंडताल, करताल, वीणा, पखावज के जैसे सम्मिलित स्वर उभर रहे थे। संतोष मंत्रमुग्ध-आलोकित मुख से आज गा रही थी। पता नहीं क्या बोल थे उसके! गीत तो पूजा ही का था, प्रभु की शरण में भक्ति का ही गीत था, पर अजब तरह से वह गाया जा रहा था।

परिक्रमा करती हुई संतोष अपने-आपमें जैसे बेसुध थी। आज आरती और प्रसाद लेने बच्चों की भीड़ नहीं आ रही है। कोई नहीं दीख रहा है।

वह कौन है बाहर चबूतरे पर माथा झुकाए? कौन है वह

नत-शिर ? पगला गुलज़ारीलाल तो नहीं आ गया ?···आरती लिये संतोष आगे बढ़ी।

"उठो, आरती लो !"

उठते-उठते उस नतशिर का मुख दिख आया और आरती का थाल संतोष के हाथ से छूट गया। थाल तो झनझनाकर चुप हो गया, आरती बिखर गई, लेकिन वह झनझनाहट, वह प्रतिध्वनि, वह सूरज था—नास्तिक पुरुष, ये सब भाव एक ही संगति में संतोष को बाँध ले गए।

८

मामा के संग सन्तोष काशीपुर जा रही थी। मुरादाबाद स्टेशन पर रात के ग्यारह बजे प्लेटफ़ार्म नं० एक की बैंच पर बैठी हुई वह चुपचाप अपने भीतर के कोलाहल को सुन रही थी। उस कोलाहल में बार-बार सूरज की वह बात उभर आती थी—'नहीं-नहीं, वह सब झूठ था, सच केवल यह है कि हम दीवार-ही-दीवार हैं, अतः छोटे हैं, नीच हैं, अमानवीय हैं।' अवश उस कोलाहल में सन्तोष को अपनी आवाज़ उठानी पड़ी—'सुनो····सुनो सूरज ! तुमने उस दीवार को सोचकर देखा है। पहली बार उसका स्पर्श किया है। वह अनुभूति···। तुमने अपमान झेला है—अपना ही नहीं, सबका, पूरी मंडी का। और उसका विरोध भी सोचा है। यह बहुत···बहुत महान् है। कर दिखाना महान् नहीं है, उसे अनुभूति में लाना महान् है। तुम एक नये, मौलिक भाव हो, परम्परा और सद्भावना हो। रुपये से बड़ी भी कोई चीज़ है, तुमने पहली बार उस मंडी में बैठकर सोचा है। सारे दर्द को पीकर तुमने अपने-आपको, रूपा माँ को स्वीकार कर लिया। तुम एक भयानक घृणा को जीत ले गए—इस प्रथम विवेक से वह मंडी महान् हो गई। सच,

वह मंडी बहुत ऊँची उठ गई अपनी नज़र में।'

प्लेटफ़ार्म की घंटी बज उठी। झनझनाकर कुछ थक गया, जैसे भारी आरती का थाल एकाएक छूट गया हो। कोई गाड़ी आने वाली है। क्या दो बज गए? उसकी गाड़ी तो दो बजे आएगी।

एक अजीब अंगड़ाई मथ गई उसमें और अनायास ही जब वह उठने लगी, उसकी आँखों में अंधेरा कौंध गया। इतनी कमज़ोर हो गई वह! नहीं, कभी नहीं। मुझे कभी नहीं मरना है! मुझे तो अब जीवन से मोह हो गया।

टहलते-टहलते एकाएक सन्तोष की दृष्टि एक जगह प्लेटफ़ार्म नम्बर दो पर बँध गई।

'वे कौन हैं?'

"बुआ!" निरी बच्ची की तरह चीखकर वह सीधी रेलवे लाइन में कूद पड़ी। ख़रगोश की तरह फाँदती-कूदती भागने लगी। गाड़ी बिलकुल पास आ चुकी थी। प्लेटफ़ार्म के सारे लोग उस दृश्य को भय से देखते रह गए, पर वह हँसती हुई प्रकाश-गति से उस पार पहुँच गई। मधू बुआ को झकझोरकर अंक से लिपट गई—"बुआ! बुआ! बुआ!"

मूर्तिवत् खड़ी बुआ के अंक में सन्तोष का सिर जैसे धँस गया था। और सिर पर बुआ का मुख टिका था—ऐसे, मानो वह सनातन का सत्य हो।

बैंच पर बैसाखी सम्हाले ईशरी फूफा बैठा देख रहा था और उपेक्षा से बड़बड़ा रहा था, "कितनी बेवक़ूफ़ होती हैं ये औरतें! बेअक्ल कहीं की। देखो न, प्लेटफ़ार्म पर क्या तमाशा बनाए खड़ी हैं। रेलवे लाइन्स फाँदकर यहाँ चली आई। अगर कट जाती तो! गाय-भैंस की अक्ल!"

तब तक सन्तोष के मामा भी आ पहुँचे।

"जी, आपकी तारीफ़?" अजीब तरह से आँख नचाकर ईशरी ने पूछा।

मामाजी घबड़ा गए, "मैं मामा हूँ सन्तोष का।"

"ओहो! मामा हैं आप! मामा क्या बला होती है जी? यह क्या रिश्ता है? आप बीड़ी पीते होंगे। ज़रा एकाध पिलाइए!"

"जी, मैं तो नहीं पीता।"

"लेकिन आप पिला तो सकते हैं।"

बुआ सन्तोष को संग लिये वहाँ से दूर हट गई।

"बुआ, कहाँ थीं तुम अब तक?"

"यह न पूछो बेटी! कुछ और बोलो।"

"एक बात पूछूँ?"

"नहीं, पूछो कुछ नहीं! बस, बता दो सब!"

"क्या-क्या बताऊँ बुआ! कैसे, कहाँ से शुरू करूँ! यह तो तुम्हें पता ही होगा कि लालाजी का स्वर्गवास हो गया!"

"भइया का स्वर्गवास?" बुआ हाहाकार करके रो पड़ी।

"तो यह भी तुम्हें नहीं पता था?"

सन्तोष बुआ को आश्वस्त करने लगी। उसे समझाती और मनाती जा रही थी। और आदि से अन्त तक उस सारी व्यथापूर्ण कहानी को वह सुनाने बैठ गई, जो उस स्थिति में किसी तरह कथा नहीं बन सकती थी। लेकिन वह व्यथा कथा बन ही गई, क्योंकि अजीब थे वे श्रोता-वक्ता। काग को एक बार इसी तरह गरुड़ भी तो मिले थे—'मिले गरुड़ मारग में मोही, केहि विधि मैं समझाऊँ तोहीं!'

लेकिन बुआ का गरुड़ यहाँ सब समझ गया।

बड़ी देर हो गई।

ईशरी क्रोध में बड़बड़ाता हुआ पास आया। बुआ को गाली दी और अपनी दाईं बैसाखी से मारने को हुआ। दौड़कर मामा ने पकड़ लिया।

"इनकी ज़िन्दगी में चौबीस घंटे रोना ही है कि और भी कुछ है! बदज़ात कहीं की!" ईशरी क्रोध से काँपने लगा।

सन्तोष फूफा और बुआ की आँखों को देखती रह गई ।

"अच्छा बेटी ! ...नमस्ते !" अजीब भारी स्वर में कहकर, और उतनी ही वज़नी नज़र से देखकर बुआ सन्तोष से अलग हो गई ।

सन्तोष मामा के संग इस बार ऊँचे पुल को पार करती हुई अपने प्लेटफ़ार्म पर गई ।

और बुआ खड़ी देख रही थी ।

सन्तोष को वह जड़ ट्रेन दूर ले जाने लगी । बुआ खड़ी तब भी देख रही थी सन्तोष को—उस खिड़की पर जैसे उसकी दृष्टि गड़ गई थी । और सन्तोष अपनी खिड़की से झाँक-झाँककर देख रही थी—वह मेरी बुआ है, वह फूफाजी इतनी भद्दी-भद्दी गाली दे रहे हैं, बैसाखी से मार रहे हैं । बुआ ऋषिकेश से दवा कराके, गंगोत्री में स्नान कराके लौटी है ।

सुबह आठ बजते-बजते पति के संग बुआ सूरज के घर पहुँची । बुआ को सब बदला हुआ मिला—दुकान, गद्दी, घर, आँगन और सब ।

पिछवाड़े का दरवाज़ा ईंटों से चुन दिया गया था—दरवाज़े से दीवार । रूपाभाभी जैसे निर्मल हो गई थी—विशुद्ध माँ । सूरज असमय प्रौढ़ लग रहा था—गम्भीर, उदास, पर द्रष्टा जैसी मुखाकृति ।

सीता और गौरी अपने घर वापस चली गई थीं ।

बुआ को वह सारा घर भरा-भरा लग रहा था । घर, आँगन, रसोई, सब साफ़-सुथरी । हर चीज़ अपनी-अपनी जगह सजी हुई, क़रीने से रखी हुई । आँगन में हरा-भरा तुलसी का बिरवा । रूपाभाभी के कमरे में चेतराम का चित्र—फूलों से पटा हुआ, दही-अक्षत, चंदन से अनुरंजित ।

सूरज का कमरा—रेडियो, किताबें, पत्र-पत्रिकाएँ, दैनिक अख़बार ।

पर यह दुकान !

यह गद्दी !

तीसरे दिन मधू बुआ सूरज को संग लिये हुए गद्दी के पास आ गई; बड़े अधिकार से बोली, बिलकुल चेतराम की तरह, "गद्दी पर क्यों नहीं बैठते ? गद्दी पर बैठना चाहिए न ! यह सारा काम-धाम तुम नहीं देखोगे तो कौन देखेगा ? चलो बैठो ! टेलीफोन अपने पास खींच लो। चिट्ठी-पत्री, कागज़-बही, आढ़तिये और दलाल, गाहक और सौदागर—इन्हें खुद देखो न ! यह गद्दी तो अब तुम्हारी ही है न ! अब तो कोई नहीं है तुम्हारे सिर पर !"

"हाँ बुआ !" सूरज ने गद्दी पर जाते हुए कहा, "मैं मुक्त हूँ, मेरे सिर पर अब कोई नहीं है—यही मेरी नैतिकता है।"

सूरज गद्दी पर बैठने लगा, और नित्य नियम से बैठने लगा।

एक दिन सरजू सुनार की पत्नी कुलवन्ती घर में आई। मधू बुआ से बोली, "बेटी, मेरी एक सलाह मानो तुम लोगों ने पहुना की बड़ी दवाइयाँ कीं, एक बात मेरी मानो। धीमरटोला में एक काछिन रहती है। उससे इनकी गाँठों में गोदना गुदवा लो। ऐसा गोदती है वह कि गठिया का पुराने-से-पुराना मर्ज़ अच्छा हो जाता है।"

बुआ प्रसन्नता से तैयार हो गई।

पर कुलवन्ती ने बताया कि वह काछिन किसीके घर नहीं जाती, उसीके घर जाकर गोदवाना होगा, इतवार-मंगल के दिन आधी रात के समय।

बुआ इस पर भी तैयार हो गई और आदमी भेजकर आने वाले इतवार के दिन की बात निश्चित कर ली गई।

सूरज ने बुआ से पूछा, "क्यों बुआ, अब तो फूफाजी की आदतें छूट गईं ?"

"हाँ, छूट गईं। केवल बीड़ी पीते हैं अब। और बस यही कि गुस्सा बहुत करने लगे हैं, पर मुझी पर, औरों पर नहीं।"

"पर इतनी गाली क्यों देते हैं ?" सूरज ने पूछा।

"मुझी को तो देते हैं, वह तो स्वभाव हो गया है।"

बुआ हँस पड़ी।

इतवार की उस आधी रात को ईशरी के संग कुलवन्ती, मधू बुआ, सूरज, सब गये। सूरज के संग उस रात जगनू भी था।

पचास साल की वह काली-कलूटी काछिन न जाने क्या जादू जैसा गा-गाकर फूफा की गाँठों में गोदना गोदने लगी। फूफा को दर्द का सवाल ही नहीं उठता था—एक तो उनका स्वभाव, दूसरे वे गाँठें बिलकुल सुन्न-निर्जीव पड़ गई थीं। ज़हर-मसाले में डूब-डूबकर इतनी सुइयाँ घण्टों तक चुभती रहीं, पर कहीं भी ख़ून न निकला, कहीं कम्पन तक न हुआ।

सब लोग घर लौट आए। सब सो गए, लेकिन ईशरी काछिन का लय-भरा गीत गुनगुनाता रहा :

'कइयाँ-कोइयाँ
कइयाँ-कोइयाँ
सैयाँ सोट्टा.....सैयाँ सोट्टा।
पर्वत ऊपर बिच्छी ब्यानी
बिच्छी के घर गइया भोली
भोली रोवै पात-पात
बिच्छी मारे घात-घात
रात-रात, आधी रात।
सैयाँ सोट्टा, सैयाँ सोट्टा......!

अगले दिन दुपहरी में ईशरी रूपाबहू के सामने गया। श्मशान के औघड़ बाबा वाली बात बताने लगा। रूपाबहू को बस हँसी आ रही थी और ईशरी बेवक़ूफ़ की तरह उसे देखता रह गया, जैसे वह सब रूपाबहू का संकल्पकृत छल था और उसमें एक नहीं, वैसे

असंख्य औघड़ न जाने कहाँ बह गए थे।

तब ईशरी ने ग़रीब स्वर में कहा, "मुझे कुछ रुपयों की ज़रूरत है।"

"ओहो! तभी तुम मुझे औघड़ बाबा का सही रहस्य बताकर डराना चाहते थे, और उसी आतंक से रुपये वसूलना चाहते थे। अब मैं नहीं दूँगी रुपये।"

यह कहते-कहते रूपाबहू हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं। और ईशरी का मुँह छोटे-से-छोटा होता चला गया, जैसे वह रो देगा; जैसे वह कहीं बेतरह गिरफ़्तार हो गया।

सूरज के कमरे में बैठा ईशरी चुप रह गया था। शाम के वक्त वह कमरे से निकलकर बाहर आने लगा। दरवाज़े पर सहसा उसकी दृष्टि ताले में लटकी हुई सूरज की चाबियों के गुच्छे पर पड़ी। उसे लेकर तत्काल उसने सूरज का बड़ा बक्सा खोला। ढूँढ़ते-उलटते एक छोटे-से बक्स में वही सोने का हार और पुखराज की अँगूठी उसे मिली। न जाने क्या सोचकर अँगूठी तो उसने रख दी, लेकिन हार लेकर वह बाहर निकल आया।

काछिन के घर पहुँचकर वह वही गीत गाने लगा—'कइयाँ कोइयाँ, सैयाँ सोट्टा।' काछिन ने और कई गीत सुनाए।

बहुत रात नहीं बीतने पाई, ईशरी घर लौट आया।

बुआ ने पूछा, "कहाँ गये थे इस तरह अकेले?"

"मैं किसी का ग़ुलाम हूँ क्या, जो इस तरह अकेले न आ-जा सकूँ!"

बुआ चुप रह गईं।

दूसरे दिन ईशरी फूफा फिर उसी समय से ग़ायब। और तीसरे-चौथे दिन भी।

उस रात बारह से ज़्यादा बज चुके थे; ईशरी फूफा घर न लौटे। बुआ बेतरह परेशान, सूरज मण्डी-भर में छान आया। चौक-स्टेशन की

तरफ़ आदमी दौड़ाये गए और सब निराश लौट आए।

क़रीब रात के दो बजे शराब के नशे में धुत्त ईशरी फूफा को कन्धे पर लादे हुए जगनू आया। सब देखते रह गए।

जगनू ने बताया कि फूफाजी काछिन के घर सोए थे। काछिन इन्हें घर से बाहर निकाल रही थी। वह भी शराब पिये थी और दोनों में मार-पीट, गाली-गलौज हो रही थी।

सब निरुत्तर रह गए।

अगले दिन सुबह दस बजे तक ईशरी फूफा सोते रहे। अपने-आप उठकर उन्होंने ख़ुमार-भरे स्वर में मधू बुआ को पुकारा। पलंग पर पड़े-पड़े उल्टी-सीधी न जाने क्या-क्या बकने लगे।

पर बुआ सामने न आईं। रूपाबहू गईं। कुछ क्षण बाद सूरज भी गया।

ईशरी फूफा कह रहे थे, "ये बेवक़ूफ़ औरतें पति को देवता क्यों समझ बैठती हैं? किसने कहा है उनसे ऐसा समझने के लिए? अच्छाई और महानता का ठेका मैंने नहीं लिया है। जिस स्वतंत्रता-संग्राम का व्रत मैंने लिया था, उसे पूरा कर दिखाया। उस दौरान में मैं अपनी सारी भूखों को कुचलता रहा। कितना-कितना त्याग किया मैंने! क्या क़ुरबानियाँ नहीं कीं मैंने?"

"तो इसे कौन नहीं स्वीकार करता?" सूरज बोला।

ईशरी फूफा का स्वर और तेज़ हो गया, जैसे दबी हुई भूख उमड़ आए, "उस स्वीकृति और अस्वीकृति से मेरा क्या होगा? मैं स्वतंत्रता-संग्राम लड़ा हूँ, अब भोगूँगा उसे। मैंने त्याग किया है, अब मैं स्वतंत्र हूँ, चाहे जो करूँ। जिसे जैसे भोगना चाहूँ भोगूँगा। क्यों न भोगूँ? मैं अभुक्त नहीं मरना चाहता।" फूफा का मुखमंडल दमक दमककर बुझ जाता था, जैसे चिराग़ में तेल बिलकुल कम हो, पर जलने वाली बत्ती बड़ी हो। मधू बुआ तेज़ी से सामने आ खड़ी हुईं, "तुमने अपनी बात से सबको निरुत्तर कर

दिया न ! यही तो सीखा था अपनी पार्टी में, उस संग्राम में—झूठ, दग़ा, जादू-भरा भाषण, निर्ममता और शुभ-सुन्दर की अवज्ञा, उपेक्षा !"

ईशरी फूफा कुछ कहने जा रहे थे—बड़े क्रोध में। पर बुआ ने जैसे रास्ता छेंक लिया, "त्याग तो सबने किया है; यहाँ जितने खड़े हैं सबने—एक-से-एक बढ़कर त्याग !"

"ये सब बेवक़ूफ़ हैं जो उसे भोगते नहीं। वह कैसा त्याग जिसमें भोग की इच्छा न हो !"

"ठीक कहते हो, यही तुम्हारी क्रांति है न ?" बुआ ने कहा।

"मैं नहीं जानता क्रांति-फ्रांति। मुझे नाश्ता कराओ ! रात वाला मेरा खाना लाओ। आज मैं मुर्ग़ का गोश्त खाऊँगा, सूरज !"

"ज़रूर खिलाऊँगा, फूफा !"

"मैं पागल हो जाऊँगी सूरज," बुआ ने अजब दर्द से कहा। "यह सामाजिक क्रांति, तुम्हारी यह राष्ट्र-स्वतंत्रता मेरी समझ में लुञ्ज है, बौनी है।"

यह कहती-कहती बुआ वहाँ से भागने लगी।

"ऐसा न सोचो बुआ, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए," सूरज ने बुआ को थाम लिया।

"मैं तो ज़रूर कहूँगी सूरज, बिलकुल साफ़-साफ़ कहूँगी। ऐसी क्रान्ति लाने में जब एक बार मनुष्य का सुन्दर और सत्य मर जायगा, तो उसे दुनिया की कोई शक्ति, कोई शासन, कोई हस्ती पुनर्जीवित नहीं कर सकती।"

सूरज की पकड़ ढीली हो गई। बुआ वहाँ से रसोईघर में जाकर जल्दी-जल्दी नाश्ता तैयार करने लगी।

तीसरे पहर, पंजाब होटल में ले जाकर सूरज ने ईशरी फूफा को मुर्ग़मुसल्लम खिलाया।

शाम को सूरज जब बुआ के सामने गया, तब बुआ ने कहा, "अब

हमें यहाँ से जाने दो बेटा !"

"लेकिन जाओगी कहाँ बुआ ?"

"यह तो सही है कि मैं कहाँ जाऊँगी, लेकिन जाना तो है ही !"

दोनों चुप रह गए।

बुआ ने दीप्त मुख से कहा, "लेकिन इस बार तुमसे आज्ञा लेकर जाऊँगी। उस बार चुपके से तुम्हें बिना बताए चली गई थी, इसीलिए इधर-उधर भटकना पड़ा था। इस बार नहीं भटकूँगी। सीधे खुरजा जाऊँगी—अपने सास-ससुर के घर। वे जिस तरह भी रखेंगे, मैं वहीं रहूँगी।"

"पर ऐसी भी क्या बात ? ऐसा निर्णय ही क्यों ? तुम यहीं रहो। यह घर भरा रह जायगा। तुम्हारी ममता से······!"

सूरज का कंठ भर आया। बुआ हँस पड़ी। सूरज को गुदगुदाकर बोली, "कैसी लड़कियों की तरह बात करते हो जी ! तुम तो इतने विवेकशील हो······।"

"मैं कुछ नहीं हूँ बुआ !"

"तभी तो हो मेरे प्राण !" बुआ ने सूरज को अंक से लिपटा लिया। धीरे से आकर वहाँ रूपाबहू खड़ी हो गई। माँ के स्वर में बोली, "प्यार और ममता के लिए तुम यहीं रह जाओ बेटी ! इस पुत्र की माँ तो तुम्हीं हो न ! जननी मैं हूँ तो क्या ?"

"नहीं भाभी, तुम सदा माँ हो और यह सबका सूरज है।"

"पर बुआ, मैं प्रकाशहीन सूरज हूँ।"

बुआ ने काँपकर सूरज के तप्त मुख पर हाथ रख दिया।

रूपा माँ चुप न रही, उसी दम बोली, "प्रकाश मैं चुरा ले गई। बोलो मैं ठीक कहती हूँ न ?"

रूपा माँ ने सूरज को अपने अंक में बाँध लिया।

"बोलो, प्रकाश मैं चुरा ले गई ? उत्तर दो मुझे !"

"नहीं माँ, नाना चुरा ले गया, वह गोरेमल !"

बुआ गद्‌गद् होकर हँस पड़ी, "वीर मेरे, तुमने गोरेमल से अब छीन लिया। यह विवेक ही तुम्हारा सूरज है—अतुल प्रकाशमय सूरज !"

फफकते स्वर में रूपा माँ बोल उठी, "तुममें इतना प्रकाश न होता तो तुम इतनी घृणा कहाँ से पी जाते ? तुम्हीं से तो मैं प्रकाशवती हो गई।"

यह कहते-कहते रूपा माँ बुआ के पैरों में गिर पड़ी।

अगले दिन बुआ, सूरज और रूपाभाभी से विदा लेकर फूफा को साथ लिये हुए खुरजा चली गई। जाने के दो दिन बाद सूरज को पता चला कि बुआ ने फूफा के नाम रामनाम बैंक से दस हज़ार का रामनाम ख़रीदा है।

६

तीन महीने बीत गए, सूरज दूकान का काम न देख सका। गद्दी पर बैठता, तो रोज़ उसकी किसी-न-किसी से लड़ाई हो जाती। आढ़तिये, दलाल, ग्राहक और सौदागर उसे ब्लैक के भयानक प्रतीक लगते। चिट्ठियों, बहीखातों से उसे जाली और नकली चित्रों के आभास मिलते। टेलीफोन और गद्दी पर जाते ही वह अपने-आप में अनायास ही देखने लगता : बी० टी० टेस्ट का जादू, एडलटरेशन, धर्म के काँटे—ख़रीदने के बाट और, बेचने के और। जैसे वह चारों ओर से अपने में सुनने लगता—बनिया मुकदमा नहीं करेगा, वह सब सह लेगा—ज़ुर्माना, नज़राना, घूस, चन्दे, अफ़सरों को बड़ी-बड़ी डालियाँ। 'इनफ़्लेशन' और आदमी, नियन्त्रण और आदमी की भूख, गुप्त रखने

की आदत, सब-कुछ ब्लैक में सोचने और करने का संस्कार; सूरज अपने-आपको पाता कि वह भी अभिन्न अंग हो गया है इस सत्य का।

उसे प्रिंसिपल मसुरियादीन की बात रह-रहकर याद आती, 'आज असली आदमी नहीं है, इसलिए असली चीज़ें नहीं मिलतीं। आज का आदमी तो ग़ुलामी, 'वार', कण्ट्रोल, राशनिंग, स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रतिफलन है; अपने पर बीते समय की देन है।'

दूकान-गद्दी और व्यापार के प्रति सूरज की वैराग्य-भावना का फल यह हुआ कि चेतराम की वह फ़र्म निर्जीव हो गई। वहाँ अब कोई नहीं आता-जाता। मुनीम कुरसी लगाकर बाहर बैठा रहता है; दिन-भर मूँगफली फोड़ता है या जाकर गद्दी पर सो जाता है। रूपाबहू अक्सर गद्दी के पास आती, मुनीम को सचेत करके, दूकान में जान डालने के लिए हर तरह से आग्रह करती रहती।

मुनीम रूपाबहू से बार-बार कहता, "भइयाजी गद्दी पर क्यों नहीं बैठते ?"

"उसका जी नहीं होता मुनीम," रूपाबहू उत्तर देती।

"अजी, जी किसको कहते हैं ? सेठ-साहूकार कहीं ऐसा सोचते हैं ? उनसे आप कहती क्यों नहीं कि वह दूकान देखें। आप तो कभी कहती ही नहीं।" मुनीम की समझ में कुछ नहीं आता, वह बस, छटपटा-कर रह जाता।

"क्या करूँ मुनीमजी, मेरा सूरज तो कहता है मैं चाहता हूँ कि गद्दी पर बैठूँ, पर कितना चाहकर भी असफल रह जाता हूँ।"

पिछले कई दिन से रूपाबहू दूकान पर नहीं दीख पड़ी। उस पर इतने दिन बाद, एकाएक फिर वही बेहोशी वाला दौरा पड़ गया। काशीपुर से सन्तोष का ख़त आया है। उसकी शादी होने जा रही है। शादी के दस ही दिन और शेष रह गए हैं।

पीड़ा में खोई हुई रूपा माँ का फिर वही पीला मुख देखकर सूरज काँप गया, "उठो माँ, ऐसी भी क्या बात ? मरने की बात तुम मत करो माँ !"

"मुझे तो बहुत पहले मर जाना चाहिए था ! अब मरकर क्या करूँगी ? लेकिन मेरी दारुण व्यथा यही है कि मैंने तुम्हारा सब छीन लिया; तुमसे तुम्हारी सन्तोष को भी छीन लिया। कितनी निर्मम और अपराधिनी माँ हूँ मैं ! तेरी ममतामयी सन्तोष, तेरी प्रिया···!"

रूपा माँ निःशब्द रोने लगी; ऐसे कि वह फफक-फफककर प्राण खो देगी।

"ऐसे न देखो माँ मुझे ! तुमने मुझे बहुत दिया है····बहुत····। सच, तुम्हें देखकर मैं गौरवान्वित होता हूँ, विश्वास करो माँ !" सूरज भरी आँखों से कहने लगा, "मेरी अपूर्व माँ ! तुम इस बस्ती की वह पहली माँ हो, जिसने चिन्तन किया है, जो पहली बार लड़ी है अपने अधम से, अपनी कुत्सा से। जो मथी गई है अपने-आप में ! जिसने जीवन को अनुभूत किया है।"

"लेकिन तुम्हें क्या मिला बेटा ?"

"तुम जो मिल गई माँ !"

कहते-कहते सूरज माँ के अंक में टूट गिरा। माँ हँसने लगी; ऐसी अनिर्वचनीय, नैसर्गिक हँसी, जो अनोखी थी, अद्भुत थी।

माँ की दशा सुधरने लगी। सुबह-शाम माँ को संग लिये सूरज बहुत दूर तक टहलने जाता। दिन में जो कुछ वह पढ़ चुका होता, उसी की चर्चा वह माँ से करता।

·

उस दिन शाम से ही बड़ी तेज़ वर्षा हो रही थी। सूरज माँ को कुछ पढ़कर सुना रहा था और सुनाते-सुनाते सो गया था। रूपा माँ अब भी सिरहाने बैठी सूरज के सिर को सहला रही थी।

बहुत रात नहीं बीती थी; यही ग्यारह-साढ़े-ग्यारह का समय रहा होगा। दरवाज़े की कुंडी खड़की। रूपाबहू गई, दरवाज़ा खोलकर देखती है, भीगे पिताजी खड़े हैं—सेठ गोरेमल !

"सूरज कहाँ है ? बैठक खोलो, मुझे एक बहुत ज़रूरी बात करनी है।"

बैठक खोलकर रूपाबहू ने कहा, "सूरज तो सो गया है इस समय, सुबह बात कर लीजिएगा। आप इस समय आराम कीजिए।"

"नहीं, नहीं, ज़रा ग़ौर करने की बात है। मुझे अभी वापस चला जाना है," गोरेमल उतावला हो रहा था। "वह सो गया है तो क्या जाग नहीं सकता ? लाट साहब हो गया है क्या ? तभी दूकान और गद्दी की यह हालत है। ज़रा ग़ौर करने की बात है। जाओ, उठाओ उसे जाकर, मेरे पास वक़्त नहीं है।"

"पिताजी, मैं उसकी नींद ख़राब करना नहीं चाहती।"

"नींद ! तो सेठ-साहूकार का लड़का क्लर्कों जैसी आदत का हो गया। नींद…नींद ! ज़रा ग़ौर करने की बात है !"

गोरेमल की आवाज़ से सूरज अपने-आप जागकर आ गया। देखते ही नमस्कार करते हुए बोला, "अरे आप अपने भीगे कपड़े तो बदल डालते नानाजी !"

"मुझ पर कोई असर नहीं इस पानी का," गोरेमल ने स्वर को ऐंठते हुए कहा। "मैं बहुत जल्दी में हूँ, और यहाँ एक ज़रूरी काम से आया हूँ।"

"आज्ञा दीजिए !"

भीतरी पॉकेट से निकालते हुए वह बोला, "यह लो मेरी 'विल', वसीयतनामा ! मैंने अपनी सारी सम्पत्ति तुझे दे दी।"

रूपा माँ चुप खड़ी थी—निर्विकार !

सूरज काँपती दृष्टि से 'विल' को देखता रह गया।

"मैंने तुम लोगों को माफ़ किया," गोरेमल चमकती आँखों से

कहने लगा। "देखो, मैंने सब दे दिया तुम्हें। इस 'वसीयतनामे' को अपने पास रखो।"

माँ पुत्र को देख रही थी और पुत्र कृतज्ञ भाव से 'वसीयतनामे' तथा गोरेमल को देख रहा था।

"और दूसरी बात सुनो मेरी," गोरेमल बड़े अधिकार से बोला। "छोड़ो इस मंडी को! दिल्ली चलकर रहो अब। किराये पर उठा दो यह घर। आखिर यहाँ से इतना सब काम-धाम कैसे देखोगे? दिल्ली दिल्ली है!"

"वह तो आप ठीक कह रहे हैं नानाजी, लेकिन मैं अपनी यह बस्ती नहीं छोड़ सकता, यह घर नहीं छोड़ सकता!"

यह कहते-कहते सूरज ने अपनी दृष्टि रूपा माँ पर गड़ा दी, जो सिर झुकाए खड़ी थी।

"माँ! तुम बोलो कुछ!"

"मैं बोलूँ बेटे!" रूपा ने सिर ऊँचा किया। "वापस कर दो यह वसीयत! दे दो इसे!" वसीयतनामे को छीनकर रूपाबहू ने गोरेमल के सामने फेंक दिया, "ले जाओ अपनी 'विल'। यह तुम्हीं को मुबारक हो। मेरे घर को किराये पर उठाने चले हैं। भावहीन! चले जाओ यहाँ से! हम तुम्हारे कुछ नहीं हैं। मेरा जो कुछ बचा है, मैं नहीं दे सकती किसी को। चले जाओ यहाँ से!"

यह कहती हुई सूरज को बाँह से पकड़कर रूपा माँ सिंहनी की तरह चली गई।

मूसलाधार बरसते हुए पानी में गोरेमल चल दिया।

थर-थर काँपती हुई रूपा माँ सूरज को अंक में बाँधे हुए दहलीज़ में खड़ी रही, खड़ी रही। फिर फफककर रो पड़ी। "लाल मेरे! तुम्हें मैंने कुछ नहीं पाने दिया।"

"तुमने तो मुझे बचा लिया माँ! इस तरह न रोओ! तुम्हें पाकर तो मैं विजयी हो गया। रोती क्यों हो?"

१०

ठीक दीवाली के दिन, सुबह-ही-सुबह स्टेशन वाली सड़क पर, पंडित के तिराहे के पास, छेदामल और चन्दनगुरु की एकाएक भेंट हो गई।

छेदामल चींटियों को आटा दे रहा था। उससे परिचित कुत्ते अब भी दो-चार की संख्या में उसके आगे-पीछे डोल रहे थे। पर अब वह कुत्तों की ओर ध्यान न देकर, झुका-झुका चींटियों के घर ढूँढ़ रहा था।

चन्दनगुरु अपने रेशमी शाल के नीचे चूहेदानी छिपाये हुए बोला, "राम-राम लालाजी! कभी-कभी कुत्तों का भी तो ख़याल कर लिया करो लाला!"

कमर पर हाथ रखकर छेदामल रुक गए। आँख पर चश्मा ठीक करते हुए बोले, "क्या करूँ गुरुजी! जे बदमाश कुत्ते तो अब चूहे खाने लगे!"

चन्दनगुरु घबरा गया, "ज़रा ठीक से बोला करो लाला!"

"ठीक ही तो कहता हूँ भाई! जब तुम उस पुलिया के पास चूहेदानी खोलकर उठ रहे थे न, वह बड़ा-सा चूहा मेरे सामने से भागा, यह जो काला कुत्ता खड़ा है न, इसी ने उसे दबोचकर खा लिया।"

"दबोचकर खा लिया!"

"हाँ गुरु! भला यह तुम क्यों करते हो! अच्छा नहीं लगता। अब तो मरने के दिन आये, भगवान् के दरबार की तैयारी करनी चाहिए न!"

"चाहिए तो लाला! जे बिलकुल सही है। लेकिन चूहे बहुत हैं मेरे घर में लाला! परेशान हूँ मैं भगवान् कसम!"

"तो क्या तुम ख़त्म कर सके चूहे, आज कितने वर्षों से तो तुम यह चूहेदानी लगा रहे हो! ...इतनी बड़ी मण्डी है, यहाँ चूहे न होंगे तो और कहाँ होंगे! और किसके घर में चूहे नहीं हैं! अरे एक रात तो एक चुहिया मेरी मूँछ कुतरकर भागी।" छेदामल बिना दाँत

के हँसने लगा।

"हाँ, वही तो लाला ! ये बड़े शैतान हैं चूहे," चन्दनगुरु बोला। "वह जो एक बार मिठाईलाल के पिता चिरौंजीलाल के गोदाम में आग लगी थी न, कंट्रोल के कपड़े जिसमें भरे थे…"

"हाँ जी, हाँ-हाँ !"

"उस फूँकने वाले ने इन्हीं चूहों का सहारा लिया होगा ! गोदाम तो लोहे की चद्दरों से बन्द था; खोलने-खोलाने की कोई गुञ्जायश न थी। चूहे की पूँछ में कपड़ा लपेटकर, उसे मिट्टी के तेल में डुबोकर, गोदाम के दरवाज़े के पास उस पूँछ में आग लगा दीजिए, चूहा भागकर उसी गोदाम में घुसेगा—फिर आग-ही-आग।"

"अय…हय…हय…च…च…च !" छेदामल घबरा गया। "वह ग़रीब चूहा तो जलकर ख़ाक हो जायगा। राम…राम…राम !"

"लाला ! तभी तो मैं चूहों को इस बस्ती से बाहर निकाल देना चाहता हूँ।"

यह कहता हुआ चन्दनगुरु आगे बढ़ गया। छेदामल दुखती कमर को साधे हुए 'हनूमान चालीसा' का जाप करने लगा।

चन्दनगुरु की बैठक में आज पिछले दो दिन से लगातार जुआ चल रहा था। जुए की हर पार्टी से बीस रुपये बैठकी और सात रुपये चिराग़ी के वह पहले ही वसूल कर लेता था।

रजुआ और तालमुहम्मद दोनों दिन लगातार हारते रहे थे। आज शाम को जुआ खेलने के लिए उनके पास कुछ नहीं था। आधी रात के बाद तो उन्हें रुपये मिल जायँगे, लेकिन उनकी यह दीवाली की शाम कैसे जगेगी ? वे दोनों चौक में इधर-उधर भटक रहे थे।

ठठेरी गली में उनकी दृष्टि पगले गुलज़ारीलाल पर पड़ी—गले में सिक्कों की वही लम्बी माला। एक नहीं, अब तो तीन-तीन मालाएँ—

एक-एक रुपये के नोटों की माला, रेज़गारियों की माला, चाँदी और नये रुपयों की माला।

समूची बस्ती की क़सम, गुलज़ारीलाल की उस सम्पत्ति को कोई नहीं छू सकता था। वह धर्म था, वह दया और सहानुभूति थी, उस पगले के प्रति।

गली के मोड़ पर एकाएक ताले ने गुलज़ारीलाल के मुँह को बड़ी बेरहमी से दबोच लिया। रजुआ ने क्षण-भर में वह सारी सम्पत्ति ले ली और चम्पत हो गए।

लोग दौड़े हुए आये तो देखा गुलज़ारीलाल बेहोश था।

अगले दिन अस्पताल में भी होश न हुआ।

बरेली और मुरादाबाद से डॉक्टर आये और ठीक पचास घण्टे के बाद गुलज़ारीलाल को होश हुआ। पर वह कुछ बोले नहीं, सबको पहचाना, करीब एक घड़ा पानी पिया, फिर सो गए।

ईश्वरी फूफा की एक बहुत ज़रूरी चिट्ठी पाकर सूरज खुरजा चला गया। वहाँ पहुँचकर सूरज ने पाया, बुआ और फूफा घर से अलग कर दिये गए हैं। बुआ के ससुर ने घर में पीछे की ओर एक कोठरी दे दी है। सामने छोटा-सा बरामदा भी है। लेकिन इस हिस्से में पानी का नल नहीं है। सेहन में बाहर एक कुआँ है। बुआ को उसी कुएँ से स्वयं पानी भरना पड़ता है।

इस हालत में बुआ ने जब सूरज को अपने दरवाज़े पर पाया तो वह सूरजमुखी की भाँति खिल गई, जैसे आज बुआ के अंक में कोई पुत्र आया हो, जैसे बुआ का कोई समर्थ बीरन आया हो, खूब कमाकर, माथे पर विजय लेकर।

"आज तुम मेरे घर आये सूरज," तख़्त पर चटाई बिछी थी, उसे आँचल से पोंछती हुई बुआ हँसती-हँसती बोली। "बैठो, गुड़

खिलाऊँगी तुझे आज। रुको, दही लाती हूँ।"

यह कहती हुई बुआ बड़ी तेज़ी से भागी। मौक़ा पाकर ईशरी ने सूरज से कहा, "देख लो मेरी हालत! मैं तो मधु से कह-कहकर हार गया कि हम लोग तुम्हारे यहाँ चलें। तुम्हारा इतना बड़ा घर है, कारोबार है, वहीं चलकर रहें, काम-धाम देखें। लेकिन इसकी अक्ल पर तो पत्थर पड़ा है। कहती है, यही मेरा घर है। जो मुझे मिला, वही मेरा घर है, शेष कुछ नहीं।""""तुम इसे समझाओ सूरज! जो तुम कहोगे, उसे यह टाल नहीं सकती। ले चलो हमें अपने घर। बड़ी तकलीफ़ है हमें यहाँ। बेचारी रात को भी कुएँ से पानी भरने जाती है।"

सूरज गूँगा बना बैठा था।

बुआ दही लेकर आ गई। गुड़ और दही अपने हाथ से बरबस सूरज को खिलाने लगी।

"अच्छा है न मेरा घर! अपने हाथ से मैंने इसे पोता है। यह खूँटियाँ मैंने लगाई हैं। शीशे में मढ़कर तुम्हारी सब तसवीरें यहाँ लगाऊँगी।"

"लेकिन खाओ-पहनोगी क्या, यह तो बताओ," ईशरी बोल पड़ा।

"चुप रहो जी!" बुआ ने अजब मान-भरे शब्दों में डाँटते हुए कहा, "तुम्हें खाने-पहनने को नहीं मिले तो कहना, हाँ!""""तो बेटा, एक बात सुनो, अच्छे तो हो न! रूपा भाभी अच्छी हैं न! सन्तोष की शादी हो गई, तुम्हें क्या-क्या लिखा उसने? वह मुझे बेटी की तरह याद आती है सूरज!"

सूरज को कुछ बोलने-कहने का मौक़ा ही न मिल रहा था, बुआ बस बुलबुल की तरह चहचहा रही थी, "इसी बरामदे में छोटे-छोटे बच्चों का स्कूल खोलूँगी। दो रुपये महीना फ़ीस लूँगी। दस बच्चे मिल गए हैं, पाँच और मिल जायँगे। सुनो, एक बात अभी से कहे

देती हूँ, हाँ, तुम्हारा बेटा यहीं आकर पढ़ेगा।"

सूरज हँस पड़ा। यह बुआ भी क्या है! अगले दिन सुबह आठ बजे सूरज बुआ से विदा लेकर घर आने लगा। डालची में बुआ ने पूरी-सब्ज़ी बाँध रखी थी। सूरज जब बुआ के चरण-स्पर्श कर आगे बढ़ने को हुआ, तब बुआ ने उसे थाम लिया, "यह पाँच आने पैसे रख लो, रास्ते में कुछ खा-पी लेना, और पहुँचते ही चिट्ठी लिखना, हाँ! भाभी माँ को मेरा प्रणाम कहना!"